

**DAMAGE BOOK**

**TEXT FLY  
WITHIN THE  
BOOK ONLY**

UNIVERSAL  
LIBRARY

**OU\_186557**

UNIVERSAL  
LIBRARY



OUP—556—13-7-71—4,000.

**OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY**

Call No. **H294.3**  
**D535** Accession No. **4, 7 H1996**

Author **धर्मरत्न मिश्र . अयु .**

Title **सुत्तानियात . 1951 .**

This book should be returned on or before the date last marked below.



# सुत्तानिपात

[ बुद्धवचनमृत ]

मूलपालि तथा हिन्दी अनुवाद

अनुवादक

भिक्षु धर्मरत्न एम० ए०

प्रकाशक  
भिक्षु संघरत्न  
मन्त्री, महाबोधि सभा  
तारनाथ, ( बनारस )

प्रथम संस्करण  
१०००

बुद्धाब्द २४९४  
ईस्वी सन् १९५१

मुद्रक—  
बालकृष्ण शास्त्री  
ज्योतिष प्रकाश प्रेस,  
विश्वेश्वरगंज, बनारस ।

तपोमूर्ति पूज्यपाद गुरुवर

**श्री देवानन्द महास्थविर**

के करकमलो

में सादर

भेंट



## प्राक्कथन

सुत्तनिपात खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत पन्द्रह ग्रन्थों में से एक है। इस में ५ वर्ग और ७२ सूत्र हैं। इनमें से रतन, मङ्गल, मेत्त खुद्दकपाठ में,—खग्गविसाण अपदान में,—सेल, वासेट्ट मज्झिम निकाय में,—सुन्दरिक भारद्वाज, आलवक, कसिभारद्वाज और सुभासित सुत्त संयुक्त निकाय में आये हैं। संयुक्त निकाय के अन्तर्गत पाँच सूत्र तथा कोकालिय सुत्त अङ्गुत्तर निकाय में भी आये हैं।

सारे त्रिपिटक से चुनकर महाराज अशोक ने सात ऐसे मुख्य सूत्रों के नाम अपने भब्रू शिलालेख में खुदवाये हैं, जिन्हें सभी को पढ़ने तथा आचरण करने की प्रेरणा दी है। इन सात मुख्य सूत्रों में दो 'मुनिगाथा' और 'उपति-सपसिने' हैं जो कि सुत्तनिपात के मुनिसुत्त और सारिपुत्त सुत्त हैं।

बुद्धवचन होने के नाते त्रिपिटिक के अन्तर्गत अन्य ग्रन्थों की तरह सुत्तनिपात का महत्व है ही। इसके अतिरिक्त फ़सबोल जैसे विद्वान् इसकी भाषा, भाव और शैली के अध्ययन से ग्रन्थ की प्राचीनता सम्बन्धी जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं उससे ग्रन्थ के महत्व पर और भी प्रकाश पड़ता है। इस विषय में फ़सबोल महोदय ने दिखाया है कि सुत्तनिपात की भाषा में विशेष रूप से वैदिक भाषा का प्रभाव मिलता है। उदाहरणार्थः—

| प्रयोग                         | गाथा संख्या |
|--------------------------------|-------------|
| समूहतासे                       | १४          |
| पच्चयासे                       | १५          |
| चरामसे                         | ३२          |
| आतुमान, सुवामि, सुवाना         | २०१         |
| अवीवदाता                       | ७८४         |
| तदा के स्थान पर तद             | ६४५         |
| 'जनेत्वा' के स्थान पर 'जनेत्व' | ६९५         |
| कुप्पटिच्चसन्ति                | ७८४         |

सुत्तनिपात की गाथाओं के छन्द भी प्राचीन वेद उपनिषद के छन्द के निकट हैं। गण विचार का बन्धन उनमें नहीं के बराबर है। वेद की भाँति, सुत्तनिपात की गाथाओं में भी आठ अक्षरोंवाला अनुष्टुभ, ग्यारह अक्षरोंवाला त्रिष्टुभ तथा बारह अक्षरोंवाला जगती छन्द बहुतायत से मिलते हैं। इसमें

अनुष्टुभ छन्द की कितनी गाथाएँ हैं जिनमें छः पाद हैं, जैसे—३०३, ३०६, ५४७, ७३६, ७५१, ७६२, ७६३, ६६१। त्रिष्टुभ छन्द की कितनी गाथाएँ हैं जिनमें पाँच या छः पाद हैं, जैसे—४६५, ४७८, ५०८, ८६३, ८७५। किन्हीं-किन्हीं त्रिष्टुभ छन्द की गाथाओं में तो सात-सात आठ-आठ पाद तक हैं, जैसे—२१३, २३१, १०७६, १०८१, १०८२। वेद को छोड़ पीछे कहीं भी छन्द की यह स्वतन्त्रता देखने को नहीं मिलती। इन जैसे उदाहरणों के आधार पर डा० बापट ने सुत्तनिपात की प्राचीनता सिद्ध की है।

सुत्तनिपात के विशेष महत्व की पुष्टि इस बात से भी हो जाती है कि इसके दो आखीरी वर्गों—अट्टक तथा पारायण—पर लिखी गई अट्टकथा—निददेस—त्रिपिटक के ही अन्तर्गत है।

यों तो तथागत के ये अमृत उपदेश सब प्रकार से मनुष्य को ऊँचे स्तर पर पहुँचानेवाले और परम शान्ति प्रदान करनेवाले हैं। साथ ही हम इन सूत्रों में कुछ विशेषताएँ भी पाते हैं। इनमें जहाँ एक ओर निर्वाण प्राप्ति में तत्पर एकान्तवासी भिक्षु के लिए स्वर्गाविसाण, धम्मचरिय, सम्मापरिब्बाजनिय, धम्मिक, सारिपुत्त जैसे सूत्रोपदेश हैं, वहाँ दूसरी ओर संसार में रहनेवाले गृहस्थ के लिये पराभव, मङ्गल, हिरि, धम्मिक इत्यादि उपदेश हैं।

पब्रज्जा, पधान, नालक तथा अत्तदण्ड सूत्रों से जन्म से लेकर सम्बोधि की प्राप्ति तक भगवान् की अनुपम जीवनी की कई महत्वपूर्ण घटनाओं पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है।

वसल तथा वासेट्ट सूत्रों में जाति-भेद पर और सुन्दरिक भारद्वाज आदि सूत्रों में याग-होम पर भगवान् के विचार स्पष्ट हैं।

ब्राह्मण धम्मिक सूत्र में उस समय तथा उससे पहले के ब्राह्मणों के दो विभिन्न चित्र मिलते हैं। इसमें यह दिखलाया गया है कि यज्ञ में पशु बलि का आरम्भ किस प्रकार हुआ था और पुरोहितों ने उसके समर्थन में किस प्रकार मन्त्र रच डाले। इसमें अत्यन्तोपयोगी गौ पर भगवान् के वचन महत्वपूर्ण हैं।

बहुत से सूत्रों में श्रमणों तथा ब्राह्मणों में विभक्त—आजीवक, परिव्राजक, जटिल, निगण्ट इत्यादि उस समय के तीर्थकों अर्थात् अन्य धार्मिक सम्प्रदायों का उल्लेख आया है।

पारायण वर्ग में कोशल नरेश के पुरोहित वावरी ब्राह्मण द्वारा कोशल देश से दक्षिणापथ में जाकर गोदावरी नदी के तटपर आश्रम बनाकर रहने की बात आई है। भगवान् के दर्शनार्थ उसके शिष्य जिस मार्ग से राजगृह आये थे

उसका भी 'पूरा वर्णन मिलता है। उस समय का प्रसिद्ध व्यापारी मार्ग भी वही रहा है। इससे उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ के सम्बन्ध के विषय में अच्छी जानकारी हो जाती है।

सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि सुत्तनिपात में हमें भगवान् बुद्ध के धर्म तथा दर्शन पर प्रचुर सामग्री मिलती है। दृष्टिवाद का जबरदस्त खण्डन भगवान् बुद्ध ने क्यों किया था, इसका उत्तर हमें अट्ठक तथा पारायण वर्गों में मिलता है। आगे जाकर शून्यवादियों ने और विशेष रूप से नागार्जुन ने दृष्टिवाद का जो खण्डन किया है उसके मूल-बीज हमें यहाँ मिलते हैं। उस समय कोरे मतवाद का बोलबाला था। पसूर सुत्त के शब्दों में राजभोजन से पुष्ट पहलवानों की तरह कुछ लोग दृष्टियों के खण्डन और मण्डन में तत्पर थे। इस प्रकार दृष्टिवाद के कोलाहल का जो दृश्य इन सूत्रों में अङ्कित है उससे हमें यूनान के सोफिस्टों अर्थात् वितण्डावादियों का स्मरण आता है। यही कारण है कि भगवान् ने मतवाद के भूलभुलैया में न पड़कर शील, समाधि तथा प्रज्ञा द्वारा शान्ति प्राप्त करने का मार्ग बताया है।

इस प्रकार धर्म, दर्शन तथा इतिहास की दृष्टि से सुत्तनिपात अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

×

×

×

×

सन् १९४३ में मैंने हिन्दी अनुवाद समाप्त किया था। लेकिन कागज के अभावके कारण केवल पहला भाग उस समय प्रकाशित कर सका। इतने समयके बाद भी पूरे सुत्तनिपात को हिन्दी पाठकों के सामने रखते मुझे आनन्द हो रहा है।

प्रस्तुत संस्करण में अनुवाद के साथ मूल पालि भी दी गई है। इससे पालि के विद्यार्थियों को विशेष लाभ होगा ही। साथ ही साधारण पाठक भी मूल का आनन्द ले सकेंगे।

मैं त्रिपिटकाचार्य पू० भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० की अमूल्य सम्मतियों के लिए उनका कृतज्ञ हूँ। मेरी अनुपस्थिति में त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मेन्द्र जी ने सारी पुस्तक का प्रूफ देखने की बड़ी कृपा की है। इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। अन्त में इस ग्रन्थ को इतनी शीघ्रता के साथ समाप्त करने के लिए महाबोधि समा के सहायक मंत्री भिक्षु संघरत्न जी तथा भाई धर्मालोक जी को सहृदय धन्यवाद देता हूँ।



# सुत्त-सूची

## १. उरग-वग्ग

| सुत्त-संख्या         |     | पृष्ठ-संख्या |
|----------------------|-----|--------------|
| १. उरग सुत्त         | ... | ३            |
| २. धनिय सुत्त        | ... | ५            |
| ३. खग्गविसाण सुत्त   | ... | ९            |
| ४. कसिभारद्वाज सुत्त | ... | १५           |
| ५. चुन्द सुत्त       | ... | १९           |
| ६. पराभव सुत्त       | ... | २१           |
| ७. वसल सुत्त         | ... | २५           |
| ८. भेत्त सुत्त       | ... | २९           |
| ९. हेमवत सुत्त       | ... | ३१           |
| १०. आलवक सुत्त       | ... | ३५           |
| ११. विजय सुत्त       | ... | ३९           |
| १२. मुनि सुत्त       | ... | ४१           |

## २. चूल-वग्ग

|                           |     |    |
|---------------------------|-----|----|
| १३. रतन सुत्त             | ... | ४५ |
| १४. आमगन्ध सुत्त          | ... | ४७ |
| १५. हिरि सुत्त            | ... | ५१ |
| १६. महामङ्गल सुत्त        | ... | ५१ |
| १७. सूचिलोम सुत्त         | ... | ५३ |
| १८. धम्मचरिय सुत्त        | ... | ५५ |
| १९. ब्राह्मण धम्मिक सुत्त | ... | ५७ |
| २०. नावा सुत्त            | ... | ६३ |
| २१. किंसील सुत्त          | ... | ६५ |
| २२. उट्ठान सुत्त          | ... | ६७ |
| २३. राहुल सुत्त           | ... | ६७ |
| २४. वङ्गीस सुत्त          | ... | ६९ |

|     |                        |     |     |    |
|-----|------------------------|-----|-----|----|
| २५. | सम्मापरिब्बाजनिय सुत्त | ... | ... | ७३ |
| २६. | धम्मिक सुत्त           | ... | ... | ७५ |

### ३. महा-वग्ग

|     |                         |     |     |     |
|-----|-------------------------|-----|-----|-----|
| २७. | पब्बज्जा सुत्त          | ... | ... | ८१  |
| २८. | पधान सुत्त              | ... | ... | ८३  |
| २९. | सुभासित सुत्त           | ... | ... | ८७  |
| ३०. | सुन्दरिक भारद्वाज सुत्त | ... | ... | ८९  |
| ३१. | माघ सुत्त               | ... | ... | ९७  |
| ३२. | सभिय सुत्त              | ... | ... | १०५ |
| ३३. | सेल सुत्त               | ... | ... | ११५ |
| ३४. | सल्ल सुत्त              | ... | ... | १२७ |
| ३५. | वासेट्ठ सुत्त           | ... | ... | १३१ |
| ३६. | कोकालिय सुत्त           | ... | ... | १४१ |
| ३७. | नालक सुत्त              | ... | ... | १४९ |
| ३८. | द्वयतानुपस्सना सुत्त    | ... | ... | १५७ |

### ४. अट्ठक-वग्ग

|     |                      |     |     |     |
|-----|----------------------|-----|-----|-----|
| ३९. | काम सुत्त            | ... | ... | १६६ |
| ४०. | गुहट्ठक सुत्त        | ... | ... | १६९ |
| ४१. | दुट्ठक सुत्त         | ... | ... | १७१ |
| ४२. | सुद्धट्ठक सुत्त      | ... | ... | १७३ |
| ४३. | परमट्ठक सुत्त        | ... | ... | १७५ |
| ४४. | जरा सुत्त            | ... | ... | १७७ |
| ४५. | तिस्समेत्तेय्य सुत्त | ... | ... | १७९ |
| ४६. | पसूर सुत्त           | ... | ... | १७९ |
| ४७. | मागन्दिय सुत्त       | ... | ... | १८३ |
| ४८. | पुराभेद सुत्त        | ... | ... | १८५ |
| ४९. | कलह विवाद सुत्त      | ... | ... | १८७ |
| ५०. | चूल वियूह सुत्त      | ... | ... | १९१ |
| ५१. | महा वियूह सुत्त      | ... | ... | १९५ |
| ५२. | तुवट्ठक सुत्त        | ... | ... | १९७ |

|                     |     |     |     |
|---------------------|-----|-----|-----|
| ५३. अत्तदण्ड सुत्त  | ... | ... | २०१ |
| ५४. सारिपुत्त सुत्त | ... | ... | २०३ |

### ५. पारायण-वग्ग

|                                |     |     |     |
|--------------------------------|-----|-----|-----|
| ५५. वत्थु गाथा                 | ... | ... | २०६ |
| ५६. अजित माणव पुच्छा           | ... | ... | २१७ |
| ५७. तिस्समेत्तेय्य माणव पुच्छा | ... | ... | २१९ |
| ५८. पुण्ण माणव पुच्छा          | ... | ... | २१९ |
| ५९. मेत्तगू माणव पुच्छा        | ... | ... | २२१ |
| ६०. धोतक माणव पुच्छा           | ... | ... | २२३ |
| ६१. उपसीव माणव पुच्छा          | ... | ... | २२५ |
| ६२. नन्द माणव पुच्छा           | ... | ... | २२७ |
| ६३. हेमक माणव पुच्छा           | ... | ... | २२९ |
| ६४. तोदेय्य माणव पुच्छा        | ... | ... | २३१ |
| ६५. कप्प माणव पुच्छा           | ... | ... | २३१ |
| ६६. जतुकण्णि माणव पुच्छा       | ... | ... | २३३ |
| ६७. भद्रावुध माणव पुच्छा       | ... | ... | २३३ |
| ६८. उदय माणव पुच्छा            | ... | ... | २३५ |
| ६९. पोसाल माणव पुच्छा          | ... | ... | २३५ |
| ७०. मोघराज माणव पुच्छा         | ... | ... | २३७ |
| ७१. पिंगिय माणव पुच्छा         | ... | ... | २३७ |
| ७२. पारायण सुत्त               | ... | ... | २३९ |





सुत्तनिपातो

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

## सुत्तनिपातो

### उरगवग्गो

#### १—उरग-सुत्तं

यो उप्पतितं विनेति कोधं विसतं सप्पविसंऽव ओसघेहि ।  
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ १ ॥

यो रागमुदच्छिदा असेसं भिसपुप्फंऽव सरोरुहं विगय्ह ।  
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ २ ॥

यो तण्हमुदच्छिदा असेसं सरितं सीघसरं विसोसयित्वा ।  
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ३ ॥

यो मानमुदब्बधी असेसं नळसेतुंऽव सुदुब्बलं महोघो ।  
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ४ ॥

यो नाज्झगमा भवेसु सारं विचिनं पुप्फमिव उदुंबरेसु ।  
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ५ ॥

यस्स-न्तरतो न सन्ति कोपा इति भवाभवतं च वीतिवत्तो ।  
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ६ ॥

यस्स वितक्का विधूपिता अज्झत्तं सुविकप्पिता असेसा ।  
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ७ ॥

यो नाच्चसारी न पच्चसारी सब्बं अच्चगमा इमं पपञ्चं ।  
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ८ ॥

यो नाच्चसारी न पच्चसारी सब्बं वितथमिदंऽति अत्वा लोके ।  
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ ९ ॥

यो नाच्चसारी न पच्चसारी सब्बं वितथमिदंऽति वीतलोभो ।  
सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥ १० ॥

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

## सुत्तनिपातो

### उरगवग्गो

#### १—उरग सुत्त

[ इस सूत्र में निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग बताया गया है ]

जो, फैलते सर्प-विष को औषधि की तरह, चढ़े क्रोध को शांत कर देता है वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥१॥

जो, तालाब में उतरकर कमल पुष्प तोड़ देने की तरह, निःशेष राग को नष्ट कर देता है वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ २ ॥

जो शीघ्रगामी तृष्णा रूपी सरिता को सुखा कर उसका नाश कर देता है वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥३॥

जो, सरकंडों का बना दुर्बल पुल को बहा ले जानेवाली बाढ़ की तरह, निःशेष मान का नाश करता है वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ ४ ॥

जो, गूलर में फूल खोजने की तरह, संसार में कुछ सार नहीं देखता, वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥५॥

जिसके अन्दर कोप नहीं है और जो पुण्य तथा पाप से परे है वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ ६ ॥

जिसके वितर्क नष्ट हो गये हैं और जिसका चित्त पूर्णतया संयत है वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥७॥

जो न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जिसने सभी प्रपञ्चों को पार कर लिया है; वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ ८ ॥

जो न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जिसने संसार की असारता को समझ लिया है; वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ ९ ॥

जो न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जो सबको असार जान कर लोभ-रहित हो गया है; वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ १० ॥

यो नाञ्चसारी न पञ्चसारी सञ्चं वितथमिदंति वीतरागो ।  
 सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥११॥

यो नाञ्चसारी न पञ्चसारी सञ्चं वितथमिदंति वीतदोसो ।  
 सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१२॥

यो नाञ्चसारी न पञ्चसारी सञ्चं वितथमिदंति वीतमोहो ।  
 सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१३॥

यस्सानुसया न सन्ति केचि मूला अकुसला समूहतासे ।  
 सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१४॥

यस्स दरथजा न सन्ति केचि ओरं आगमनाय पञ्चयासे ।  
 सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१५॥

यस्स वनथजा न सन्ति केचि विनिबन्धाय भवाय हेतुकप्पा ।  
 सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१६॥

यो नीवरणे पहाय पंच अनिघो तिण्णकथंकथो विसल्लो ।  
 सो भिक्खु जहाति ओरपारं उरगो जिण्णमिव तचं पुराणं ॥१७॥

उरगमुत्तं निट्ठितं ।



## २—धनिय-सुत्तं

पक्कोदनो दुद्धखीरोऽहमस्मि(इति धनियो गोपो।)अनुतीरे महिया समानवासो  
 छन्ना कुटि आहितो गिनि अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ १ ॥

अक्कोधनो विगतखिलोऽहमस्मि(इति भगवा।) अनुतीरे महियेकरत्तिवासो ।  
 विवटा कुटि निव्वुतो गिनि अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ २ ॥

अंधकमकसा न विज्जरे(इति धनियो गोपो।) कच्छेरूळ्हतिणे चरन्ति गावो ।  
 बुट्ठिंऽपि सहेय्युं आगतं अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ३ ॥

जो न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जो सबको असार जान कर राग-रहित हो गया है; वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ ११ ॥

जो न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, और जो सबको असार जानकर द्वेष-रहित हो गया है; वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ १२ ॥

जो न अति शीघ्रगामी है और न अति मन्दगामी, जो सब को असार जान कर मोह-रहित हो गया है वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ १३ ॥

जिसमें किसी प्रकार का बुरा संस्कार नहीं है, जिसकी बुराइयों की जड़ उखाड़ दी गई है वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ १४ ॥

जिसमें भवसागर में पड़ने की प्रत्ययभूत किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ १५ ॥

जिसमें भव बन्धन के हेतुभूत किसी प्रकार की तृष्णा नहीं है वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ १६ ॥

जो पाँच नीवर्णों को नष्ट कर निष्पाप, निःशङ्क और मुक्त हो गया है वह भिक्षु इस पार तथा उस पार को छोड़ता है, साँप जैसे अपनी पुरानी केंचुली को ॥ १७ ॥

### उरगसुत्त समाप्त

## २—धनिय सुत्त

[ स्त्री, बच्चा, घर, गौर्वें तथा गार्हस्थ्य के सौ उपकरणों के साथ धनिय गोप अत्यन्त सन्तुष्ट हो प्रीति के शब्द कह रहा है। यहीं मही नदी के तट पर खुले आकाश में सर्वत्यागी अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध अपनी अलौकिक मुक्ति तथा निर्वाण से प्रीति युक्त हो उदान के वाक्य कह रहे हैं। अन्त में धनिय गोप बुद्ध की महानता को समझ त्रिरत्न की शरण ग्रहण करता है।

धनिय गोपः—भात मेरा पक चुका। दूध दुह लिया। मही नदी के तीर पर स्वजनों के साथ वास करता हूँ। कुटी छा ली है, आग सुलगा ली है। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥ १ ॥

बुद्धः—मैं क्रोध और राग से रहित हूँ, एक रात के लिए मही नदी के तीर पर ठहरा हूँ, मेरी कुटी खुली है और (अन्दर की) आग बुझ चुकी है। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥ २ ॥

धनिय गोपः—मक्खी और मच्छड़ यहाँ पर नहीं हैं। कछार में उगी घास को गौर्वें चरती हैं। पानी भी पड़े तो उसे वे सह लें। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥ ३ ॥

बद्धा हि भिसी सुसंस्तता (इति भगवा ।) तिण्णो पारगतो विनेय्य ओघं ।  
अत्थो भिसिया न विज्जति अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ४ ॥

गोपी मम अस्सवा अलोला (इति धनियो गोपो ।) दीघरत्तं संवासिया मनापा ।  
तस्सा न सुणामि किंचि पापं अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ५ ॥

चित्तं मम अस्सवं विमुत्तं (इति भगवा ।) दीघरत्तं परिभावितं सुदन्तं ।  
पापं पन मे न विज्जति अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ६ ॥

अत्थेवतनभतोऽहमस्मि (इति धनियो गोपो ।) पुत्ता च मे समानिया अरोगा ।  
तेसं न सुणामि किंचि पापं अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ७ ॥

नाऽहं भतकोऽस्मि कस्सचि (इति भगवा ।) निब्बिट्ठेन चरामि सब्बलोके ।  
अत्थो भतिया न विज्जति अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ८ ॥ •

अत्थि वसा अत्थि धेनुपा (इति धनियो गोपो ।) गोधरणियो पवेणियोऽपि अत्थि ।  
उसभोऽपि गवंपती च अत्थि अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ९ ॥

नत्थि वसा नत्थि धेनुपा (इति भगवा ।) गोधरणियो पवेणियोऽपि नत्थि ।  
उसभोऽपि गवंपतीध नत्थि अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ १० ॥

खीलानिखाता असंपवेधी (इति धनियो गोपो ।) दामा मुंजमया नवा सुसंठाना ।  
न हि सक्खिन्ति धेनुपाऽपि छेत्तुं अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ ११ ॥

उसभोरिव छेत्व बंधनानि (इति भगवा ।) नागो पूतिलतंऽव दालयित्वा ।  
नाऽहं पुन उपेस्सं गब्भसेय्यं, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव ॥ १२ ॥

निन्नं च थलं च पूरयन्तो महामेघो पावस्सि तावदेव ।

सुत्वा देवस्स वस्सतो इममत्थं धनियो अभासथ ॥ १३ ॥

लाभा वत नो अनप्पका ये मयं भगवन्तं अहसाम ।

सरणं तमुपेम चक्खुम सत्था नो होहि तुवं महामुनि ॥ १४ ॥

गोपी च अहं च अस्सवा ब्रह्मचरियं सुगते चरामसे ।

जातिमरणस्स पारगा दुक्खस्सन्तकरा भवामसे ॥ १५ ॥

नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा (इति मारो पापिमा ।) गोमिको गोहि तथेव नन्दति ।

उपधी हि नरस्स नन्दना न हि सो नन्दति यो निरूपधि ॥ १६ ॥

सोचति पुत्तेहि पुत्तिमा (इति भगवा ।) गोमिको गोहि तथेव सोचति ।

उपधी हि नरस्स सोचना न हि सोचति यो निरूपधीति ॥ १७ ॥

धनियसुत्तं निद्धितं ।

बुद्धः—मैंने एक अच्छी तरणी बना ली है। भवसागर को तर कर पार चला आया। अब तरणी की आवश्यकता नहीं। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥४॥

धनिय गोपः—मेरी ग्वालिन आशाकारी और अलोला है। वह चिरकाल की प्रिय संगिनी है। उसके विषय में कोई पाप भी नहीं सुनता। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥ ५ ॥

बुद्धः—मेरा मन वशीभूत और विमुक्त है, चिरकाल से परिभावित और दान्त है। मुझ में कोई पाप नहीं। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥ ६ ॥

धनिय गोपः—मैं आप अपनी ही मजदूरी करता हूँ। मेरी सन्तान अनुकूल और नीरोग हैं। उनके विषय में कोई पाप भी नहीं सुनता। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥ ७ ॥

बुद्धः—मैं किसी का चाकर नहीं, स्वच्छन्द सारे संसार में विचरण करता हूँ। मुझे चाकरी से मतलब नहीं। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥ ८ ॥

धनिय गोपः—मेरे तरुण बैल हैं और बछड़े हैं, गाभिन गायें हैं और न तरुण गायें भी हैं, और सबके बीच वृषभराज भी हैं। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥९॥

बुद्धः—मेरे न तरुण बैल हैं और न बछड़े, न गाभिन गायें हैं और न तरुण गायें, और सबके बीच वृषभराज भी नहीं। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥१०॥

धनिय गोपः—खूँटे मजबूत गड़े हैं, मूँज के पगहे नये और अच्छी तरह बटे हैं, बैल भी उन्हें नहीं तोड़ सकते। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥ ११ ॥

बुद्धः—वृषभ जैसे बन्धनों को तोड़, हाथी जैसे पतिलत को छिन्न-भिन्न कर मैं फिर जन्म ग्रहण नहीं करूँगा। अब हे देव ! चाहो तो खूब बरसो ॥ १२ ॥

उसी समय ऊँची नीची भूमि को भरती हुई ज़ोरों की बारिस हुई। बरसते हुए बादलों के गर्जन को सुन धनिय ने यह कहा ॥ १३ ॥

हमारा बड़ा लाभ हुआ कि हम भगवान् के दर्शन पाये। हे चक्षुष्मान् ! हम आप की शरण आते हैं, महामुनि ! आप हमारे गुरु हों ॥ १४ ॥

गोपी और हम बुद्ध की आज्ञा में रह उनके धर्म का पालन करेंगे, फिर जन्म-मृत्यु को पार कर दुःख का अन्त करेंगे ॥ १५ ॥

मारः—पुत्रोंवाला पुत्रों से आनन्द मनाता है, उसी तरह गौवोंवाला गौवों से। विषय-भोग ही मनुष्य के आनन्दके कारण हैं। जिन्हें विषय-भोग नहीं उन्हें आनन्द भी नहीं ॥ १६ ॥

बुद्धः—पुत्रोंवाला पुत्रों के कारण चिन्तित रहता है। उसी तरह गौवाला गौवों के कारण। विषय-भोग मनुष्य की चिन्ता के कारण हैं। जो विषय-रहित हैं, वे चिन्तित भी नहीं ॥ १७ ॥

धनियसुत्त समाप्त



### ३—खग्गविसाण-सुत्तं

सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, अविहेठयं अब्बतरं पि तेसं ।  
न पुत्तमिच्छेय्य कुतो सहायं एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ १ ॥

संसग्गजातस्स भवन्ति स्नेह, स्नेहान्वयं दुक्खमिदं पहीति ।  
आदीनवं स्नेहजं पेक्खमानो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ २ ॥

मित्ते सुहज्जे अनुकंपमानो हापेति अत्थं पटिबद्धचित्तो ।  
एतं भयं सन्थवे पेक्खमानो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ ३ ॥

वंसो विसालोऽव यथा विसत्तो पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ।  
वंसाकळीरोऽव असज्जमानो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ ४ ॥

मिगो अरब्बम्हि यथा अबद्धो येनिच्छकं गच्छति गोचराय ।  
विब्बू नरो सेरितं पेक्खमानो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ ५ ॥

आमन्तना होति सहायमज्झे वासे ठाने गमने चारिकाय ।  
अनभिज्झितं सेरितं पेक्खमानो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ ६ ॥

खिड्डा रती होति सहायमज्झे पुत्तेसु च विपुलं होति पेमं ।  
पियाविप्पयोगं विजिगुच्छमानो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ ७ ॥

चातुद्दिसो अप्पटिघो च होति सन्तुस्समानो इतरीतरेन ।  
परिस्सयानं सहिता अछंभी एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ ८ ॥

दुस्संगहा पब्बजिताऽपि एके अथो गहट्ठा घरमावसन्ता ।  
अप्पोस्सुक्को परपुत्तेसु हुत्वा एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ ९ ॥

ओरोपयित्वा गिहिव्यञ्जनानि संसीनपत्तो यथा कोविळारो ।  
छेत्त्वान वीरो गिहिवंधनानि एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ १० ॥

सचे लभेथ निपकं सहायं सद्धिचरं साधुविहारि धीरं ।  
अभिभुज्य सब्बानि परिस्सयानि चरेय्य तेनत्तमनो सतीमा ॥ ११ ॥

नोचे लभेथ निपकं सहायं सद्धि चरं साधुविहारि धीरं ।  
राजाऽव रट्ठं विजितं पहाय एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥ १२ ॥

## ३—खगविषाण सुत्त

[ इस सूत्र में एकान्तवास का गुणगान है ]

सभी प्राणियों के प्रति दण्ड का त्याग कर, उनमें किसी को भी न सतावे । पुत्र की इच्छा न करे, साथी की बात तो दूर । अकेला विचरे, खड्गविषाण (= गैंडे ) की तरह ॥ १ ॥

संसर्ग में रहने वाले को स्नेह उत्पन्न होता है, और स्नेह से उत्पन्न होता है यह दुःख । स्नेह के दुष्परिणाम को देखते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २ ॥

मित्रों तथा सुहृदों पर अनुकम्पा करते हुए आसक्त-चित्त वाला अपने अर्थ को खो देता है मेल जोल में इस भय को देखते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३ ॥

उलझी हुई बांस की बड़ी झाड़ की तरह ( गहन ) वह आसक्ति है जो पुत्रदाराओं में लगी है । बांस के करीर की तरह बिना लगे बड़े अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ४ ॥

जिस प्रकार अरण्य में स्वच्छन्द मृग जिधर चाहे मनमाना चरता है, उसी प्रकार विज्ञानर स्वच्छन्दता की कामना करते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ५ ॥

कहीं रहते, टिकते, चलते या चारिका करते मित्रों के बीच तरह तरह की बात उठती है । इसलिए अनपेक्ष्य-भाव और स्वच्छन्दता की कामना करते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ६ ॥

मित्रों के बीच क्रीड़ा और रति होती है, तथा पुत्रों के प्रति विपुल प्रेम । प्रियों के वियोग की जुगुप्सा करते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ७ ॥

जिस किसी से भी सन्तुष्ट रहनेवाला चारों दिशाओं में द्वेष रहित होता है । बाधाओं का सामना करते और उनसे न डरते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ८ ॥

कोई कोई प्रव्रजित भी सुक्षिप्त से तृप्त होते हैं और वैसे ही घर में रहनेवाले कोई कोई गृहस्थ भी । दूसरों के पुत्रों में अनासक्त हो अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ९ ॥

गार्हस्थ्य लक्षणों को हटा कर पत्रहीन कोविलार वृक्ष की भाँति धीर गृह-बन्धनों को तोड़ अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १० ॥

यदि अनुकूल, धीर और बुद्धिमान साथी मिले तो सब बाधाओं को दूर कर सन्तुष्ट, स्मृतिमान उसके साथ विचरण करे ॥ ११ ॥

यदि अनुकूल, धीर और बुद्धिमान साथी न मिले तो विजित राष्ट्र को त्यागनेवाले राजा की तरह अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १२ ॥

अद्धा पसंसाम सहायसंपदं, सेट्ठा सभा सेवितब्बा सहाया ।  
 एते अलद्धा अनवज्जभोजी एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१३॥  
 दिस्वा सुवण्णस्स पभस्सरानि कम्मारपुत्तेन सुनिट्ठितानि ।  
 संघट्टमानानि दुवे भुजस्मि एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१४॥  
 एवं दुतित्येन सहा ममस्स वाचाभिलापो अभिसज्जना वा ।  
 एतं भयं आयतिं पेक्खमानो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१५॥  
 कामा हि चित्रा मधुरा मनोरमा विरूपरूपेन मथेन्ति चित्तं ।  
 आदीनवं कामगुणेषु दिस्वा एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१६॥  
 ईती च गण्डो च उपह्वो च रोगो च सल्लं च भयं च मेऽतं ।  
 एतं भयं कामगुणेषु दिस्वा एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१७॥  
 सीतं च उण्हं च खुदं पिपासं वातातपे ढंससिरिसपे च ।  
 सब्बानि पेतानि अभिसंभवित्वा एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१८॥  
 नागोऽव यूथानि विवज्जयित्वा संजातखन्धो पदुमी उज्जरो ।  
 यथाभिरन्तं विहरे अरब्बे एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥१९॥  
 अट्टान तं संगणिकारतस्स यं फस्सये सामयिकं विमुत्ति ।  
 आदिच्चबंधुस्स वचो निसम्म एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२०॥  
 दिट्ठिविसूकानि उपात्तिवत्तो पत्तो नियामं पटिलद्धमगो ।  
 उप्पन्नवानोऽस्मि अनब्बनेय्यो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२१॥  
 निल्लोलुपो निक्कुहो निप्पिपासो निम्मक्खो निद्धन्तकसावमोहो ।  
 निरासयो सब्बलोके भवित्वा एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२२॥  
 पापं सहायं परिवज्जेयथ अनत्थदरिंस विसमे निविट्ठं ।  
 सयं न सेवे पसुतं पमत्तं एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२३॥  
 बहुस्सुतं धम्मधरं भजेथ मित्तं उज्जरं पटिभानवन्तं ।  
 अब्बाय अत्थानि विनेय्य कंखं एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२४॥  
 खिड्डं रतिं कामसुखं च लोके अनलंकरित्वा अनपेक्खमानो ।  
 विभूसनट्ठाना विरतो सच्चवादी एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२५॥  
 पुत्तं च दारं पितरं च मातरं धनानि धब्बानि च बंधवानि ।  
 हित्वान कामानि यथोधिकानि एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२६॥

मित्र-लाभ की प्रशंसा हम अवश्य करते हैं। श्रेष्ठ और समान मित्रों की संगति करनी ही चाहिए। इनके न मिलने पर, निर्दोष अजीबिका वाला अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १३ ॥

सुवर्णकार से सुनिष्ठित, सुनहरी और चमकीली दो कंकणियों को एक हाथ में धरित होते देख अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १४ ॥

इस प्रकार दूसरे के साथ मेरे रहने से प्रलाप या आसक्ति होती है। इस भय को आगे भी देखते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १५ ॥

काम विचित्र, मधुर और मनोरम हैं। वे अनेक प्रकार से मन को विचलित करते हैं। कामगुणों के दुष्परिणाम को देखते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १६ ॥

यह विपत्ति है, फोड़ा है, उपद्रव है, रोग है, विष है और भय है—इस प्रकार काम गुणों में भय देख अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १७ ॥

सर्दी और गर्मी, भूख और प्यास, हवा और धूप, डँस-मक्खी और साँप, इन सब का सामना कर अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १८ ॥

जिस प्रकार अपने दल को छोड़ पदुमी जाति में उत्पन्न विशाल गजराज इच्छा-नुसार वन में विहरता है उसी प्रकार अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ १९ ॥

‘संगति में रत मनुष्य को सामयिक विमुक्ति भी असम्भव है’ आदित्यबन्धु के इस वचन का ख्याल कर अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २० ॥

मैं मिथ्या दृष्टियों से परे हूँ। सम्यक् मार्ग पर चल कर लक्ष्य पर पहुँचा हूँ। बिना दूसरे की सहायता के मैंने ज्ञान लाभ किया है। अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २१ ॥

लोलुपता, ढोंग, विषय-पिपास, डाह, चित्त-भल और मोह से रहित हो, संसार में किसी की आकांक्षा न करते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २२ ॥

अनर्थ को ग्रहण करनेवाले, विषमाचार में लग्न पाप-मित्र का परिवर्जन करे। आलसी और प्रमत्तों का साथ न देते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २३ ॥

उदार, प्रतिभाशील, बहुश्रुत तथा धर्मधर मित्र की संगति करे। फिर अर्थ को जान शंका का समाधान कर अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २४ ॥

संसार में क्रीड़ा, रति और कामसुख में आसक्त न हो, उनकी अपेक्षा न कर, शृंगार से विरत हो सत्यवादी बन अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २५ ॥

स्त्री, पुत्र, माता, पिता, धन, धान्य और बान्धव, इन सब का पूर्णतः त्याग कर अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २६ ॥

संगो एसो परित्तमेत्थ सोख्यं अप्पऽस्सादो दुक्खमेत्थ भिय्यो ।  
गळ एसो इति बत्वा मुतीमा एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२७॥

संदालयित्वा संयोजनानि जालंऽव भेत्वा सलिलम्बुचारी ।  
अग्गीव दड्ढं अनिवत्तमानो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२८॥

ओक्खित्तचक्खु न च पादलोलो गुत्तिन्द्रियो रक्खितमानसानो ।  
अनवस्सुतो अपरिड्य्हमानो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥२९॥

ओहारयित्वा गिहिव्यञ्जनानि संछिन्नपत्तो यथा पारिलत्तो ।  
कासायवत्थो अभिनिक्खमित्वा एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३०॥

रसेसु गोधं अकरं अलोलो अनञ्जपोसी सपदानचारी ।  
कुले कुले अप्पटिबद्धचित्तो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३१॥

पहाय पंचावरणानि चेतसो उपक्किलेसे व्यपनुज्ज सब्बे ।  
अनिस्सितो छेत्वा सिनेहदोसं एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३२॥

विपिट्टिकत्वान् सुखं दुखं च पुब्बेऽव च सोमनदोमनस्सं ।  
लद्धानुपेक्खं समथं विमुद्धं एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३३॥

आरद्धविरियो परमत्थपत्तिया अलीनचित्तो अकुसीतवुत्ति ।  
दळ्हनिक्कमो थामवत्पपन्नो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३४॥

पटिसल्लानं ज्ञानमरिञ्चम्मनो धम्मेषु निञ्चं अनुधम्मचारी ।  
आदीनवं सम्मसिता भवेसु एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३५॥

तण्हक्खयं पत्थयं अप्पमतो अनेलमूगो सुतवा सतीमा ।  
संखातधम्मो नियतो पधानवा एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३६॥

सीहोऽव सद्देषु असन्तसन्तो वातोऽव जालम्हि असज्जमानो ।  
पदुमंऽव तोयेनं अलिप्पमानो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३७॥

सीहो यथा दाठबली पसय्ह राजा मिगानं अभिभुज्यचारी ।  
सेवेथ पन्तानि सेनासनानि एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३८॥

मेत्तं उपेक्खं करुणं विमुत्तिं आसेवमानो मुदितं च काले ।  
सब्बेन लोकेन अविस्सज्जमानो एको चरे खग्गविसाणकप्पो ॥३९॥

यह बन्धन है, इसमें थोड़ा ही सुख है, स्वाद थोड़ा है, इसमें दुःख बहुत है और यह फोड़ा सा है। बुद्धिमान पुरुष इस प्रकार जान अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २७ ॥

जाल का भेदन करनेवाली मछली की भाँति, और जले स्थान को न लौटने वाली आग की भाँति, सभी बन्धनों को काट अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २८ ॥

आँखों को नीचे कर, घुमकड़ न हो, इन्द्रियों को काबू में रख मन को संयत कर और तृष्णा तथा काम दाह से रहित हो अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ २९ ॥

गृहस्थवेष का त्याग कर, पत्रहीन पारिछत्र वृक्ष की भाँति काषायवस्त्रधारी हो घर से निकल अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३० ॥

रस-तृष्णा न कर, लोलुपता से रहित हो, दूसरों को पोसने वाला न हो, घर-घर भिक्षाटन करते और किसी भी कुल में आसक्त न हो अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३१ ॥

पाँच प्रकार के मानसिक आवरणों को हटा कर, सब छोटे चित्तमलों को भी दूर कर, कहीं आसक्त न हो, स्नेह और द्वेष का छेदन कर अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३२ ॥

सुख और दुःख का त्याग कर, प्रसन्नता और अप्रसन्नता का प्रहाण कर, उपेक्षावाले विशुद्ध ध्यान का लाभ कर अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३३ ॥

परमार्थ की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील, जागरूक, आलस्य रहित, हो दृढ़ संकल्प, स्थैर्य और बल से युक्त हो अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३४ ॥

ध्येय में तल्लीन हो ध्यान में रत हो, धर्म के अनुकूल नित्य आचरण करते तथा भवके कुपरिणाम पर मनन करते अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३५ ॥

तृष्णा-क्षय की प्राप्ति के लिए अप्रमत्त, निपुण, श्रुतिमान और स्मृतिमान बन धर्म पर मनन करते हुए, संयमी तथा पराक्रमी हो अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३६ ॥

शब्द से कम्पित न होने वाले सिंह, जाल में न फँसनेवाली वायु तथा जलसे लिप्त न होनेवाले पद्म के समान बन अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार दाटावली मृगराज सिंह दूसरे जानवरों का दमन कर रहता है उसी प्रकार एकान्त स्थानों में रहते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३८ ॥

मैत्री, उपेक्षा, करुणा, विमुक्ति और मुदिता का समय-समय पर आसेवन करते हुए, सारे संसार में कहीं भी विरोध भाव न रख अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ३९ ॥

रागं च दोसं च पहाय मोहं संदालयित्वा संयोजनानि ।  
 असन्तसं जीवितसंख्यमिह एको चरे खगविसाणकप्पो ॥४०॥  
 भजन्ति सेवन्ति च कारणत्वा निष्कारणा दुल्लभा अज्ज मित्ता ।  
 वत्तद्वपुष्वा असुची मनुस्सा एको चरे खगविसाणकप्पो ॥४१॥

खगविसाणसुत्तं निवृत्तं

### ४-कसिभारद्वाज-सुत्तं

एवं मे सुत्तं । एकं समयं भगवा भगवेषु विहरति दक्खिणागिरिस्मिं  
 एकनाल्लयं ब्राह्मणगामे । तेन खो पन समयेन कसिभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स  
 पञ्चमत्तानि नङ्गलसतानि पयुत्तानि होन्ति वप्पकाले । अथ खो भगवा  
 पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन कसिभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स  
 कम्मन्तो तेनुपसंकमि । तेन खो पन समयेन कसिभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स  
 परिवेसना वत्तति । अथ खो भगवा येन परिवेसना तेनुपसंकमि, उपसंक-  
 मित्वा एकमन्तं अट्ठासि । अहसा खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं  
 पिण्डाय ठितं । दिस्वान भगवन्तं एतदवोच-अहं खो समण ! कसामि  
 च वपामि च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जामि; त्वंऽपि समण ! कसस्सु च  
 वपस्सु च, कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जस्सूति ।

अहंऽपि खो ब्राह्मण ! कसामि च वपामि च, कसित्वा च वपित्वा च  
 भुञ्जामीति ।

\* न खो पन मयं पस्साम भोतो गोतमस्स युगं वा नंगलं वा फालं वा  
 पाचनं वा बलिवद्दे वा अथ च पन भवं गोतमो एवं आह अहंऽपि खो  
 ब्राह्मण ! कसामि च वपामि च कसित्वा च वपित्वा च भुञ्जामीति ।

अथ खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

कस्सको पटिजानासि न च पस्साम ते कसिं ।

कसिं नो पुच्छितो ब्रूहि यथा जानेमु ते कसिं ॥ १ ॥

सद्धा बीजं तपो वुट्ठि पळ्ळा मे युगनंगलं ।

हिं गि ईसा मनो योत्तंसति मे फालपाचनं ॥ २ ॥

कायगुत्तो वचीगुत्तो आहारे उदरे यतो ।

सच्चं करोमि निदानं सोरच्चं मे पमोचनं ॥ ३ ॥

राग, द्वेष तथा मोह का प्रहाण कर, बन्धनों का भेदन कर, मृत्यु से भी न डरते हुए अकेला विचरे, खड्गविषाण की तरह ॥ ४० ॥

मित्र स्वार्थ ही के कारण साथ देते हैं। आज कल निःस्वार्थ मित्र दुर्लभ हैं। अनेक मनुष्य अपना स्वार्थ ही देखते हैं। अकेला विचरे खड्गविषाण की तरह ॥ ४१ ॥

### खगविषाण सुक्त समाप्त

## ४—कसीभारद्वाज सुक्त

ऐसा मैंने सुना:—

एक समय भगवान् मगध के दक्षिणागिरि में, एकनाला नामक ब्राह्मण-ग्राम में विहार करते थे। उस समय कसीभारद्वाज ब्राह्मण पाँच सौ हलों को ले जोताई के काम में लगा था। एक दिन भगवान् दोपहर के वक्त पहन पात्र च्चीवर लेकर कसीभारद्वाज ब्राह्मण के कर्मस्थान पर पहुँचे। उस समय ब्राह्मण भोजन परोस रहा था। भगवान् वहाँ गये, जाकर एक ओर खड़े हो गये। कसीभारद्वाज ब्राह्मण ने भिक्षा के लिए खड़े हुए भगवान् को देखा, देखकर भगवान् से यह कहा—“श्रमण ! मैं जोतता बोता हूँ, जोताई बोआई कर खाता हूँ। श्रमण ! तुम भी जोतो और बोओ। जोताई बोआई कर खाओ ।”

बुद्ध:—“ब्राह्मण मैं भी जोताई बोआई करता हूँ, जोताई बोआई कर खाता हूँ ।”

“मैं तो आप गौतम का युग, नङ्गल, फाल या छकुनी को नहीं देखता; फिर भी आप गौतम ने ऐसा कहा—“ब्राह्मण ! मैं भी जोताई बोआई करता हूँ, जोताई बोआई कर खाता हूँ ।”

तब फिर कसीभारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् से यह गाथा कही—

आप अपने को कृषक बताते हैं, लेकिन हम आपकी कृषि को नहीं देखते। हम पूछते हैं, ( कृपया ) बतावें जिससे हम आपकी कृषि को जान सकें ॥ १ ॥

बुद्ध:—श्रद्धा मेरा बीज है, तप वृष्टि है, प्रज्ञा मेरा युग और नङ्गल है, लज्जा नङ्गल-दण्ड है, मन जोत है, स्मृति मेरी फाल और छकुनी है ॥ २ ॥

काया से संयत हूँ, वचन से संयत हूँ, आहार के विषय में संयत हूँ, सत्य से निराई करता हूँ, निर्वाण-रति मेरा प्रमोचन है ॥ ३ ॥

विरियं मे धुरधोरय्ं योगक्खेमाधिवाहनं ।

गच्छति अनिवत्तन्तं यत्थ गन्त्वा न सोचति ॥ ४ ॥

एवमेसा कसी कट्ठा सा होति अमतप्फला ।

एतं कसिं कसित्वान सब्बदुक्खा पमुञ्चतीति ॥ ५ ॥

अथ खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो महत्तिया कंसपातिया पायासं  
बड्ढेत्वा भगवतो उपनामेसि—भुञ्जतु भवं गोतमो पायासं, कस्सको भवं,  
यं हि भवं गोतमो अमतफलं कसिं कसतीति—

गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं । संपस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो ।

गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा । धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरेसा ॥

अब्बेन च केवलिनं महेसिं । खीणासवं कुक्कुच्चूपसन्तं ।

अन्नेन पानेन उपट्ठहस्सु । खेत्तं हि तं पुब्बपेक्खस्स होतीति ॥

अथ कस्स चाहं भो गोतम ! इमं पायासं दम्मीति । न खोऽहं  
तं ब्राह्मण ! पस्सामि सदेवके लोके समारके सव्वहके सस्समण-  
ब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यस्स सो पायासो भुत्तो सम्मा परिणामं  
गच्छेय्य, अब्बत्र तथागतस्स वा तथागतसावकस्स वा; तेन हि त्वं  
ब्राह्मण तं पायासं अप्पहरिते वा छड्ढेहि, अप्पाणके वा उदके ओपिला-  
पेहीति । अथ खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो तं पायासं अप्पाण के उदके  
ओपिलापेसीति । अथ खो सो पायासो उदके पक्खित्तो चिच्चिंदायति  
चिट्ठिचिंदायति सन्धूपायति सम्पधूपायति । सेय्यथापि नाम फालो दिवस-  
सन्ततो उदके पक्खित्तो चिच्चिंदायति चिट्ठिचिंदायति सन्धूपायति सम्पधूपा-  
यति, एवमेव सो पायासो उदके पक्खित्तो चिच्चिंदायति सन्धूपायति  
सम्पधूपायति । अथ खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो संविग्गो लोमहट्ठजातो येन  
भगवा तेनुपसंकमि, उपसंकमित्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा  
भगवन्तं एतदवोच—अभिकन्तं भो गोतम, अभिकन्तं भो गोतम, सेय्य-  
थापि भो गोतम निककुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विबरेय्य,  
मूळ्हस्सवा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य चक्खु-  
मन्तो रूपानि दक्खिन्तीति, एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो  
पकासितो । एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसंगं  
च । लभेय्याहं भोतो गोतमस्स सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसंपदंति ।  
अलत्थ खो कसिभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ

निर्वाण की ओर ले जाने वाला वीर्य मेरे जोते हुए बैल हैं। वह निरन्तर उस ओर जा रहा है, जहाँ जाकर कोई शोक नहीं करता ॥ ४ ॥

यह मेरी खेती इस प्रकार की गई है। यह अमृत-फल देने वाली है; ऐसी खेती करके मनुष्य सब दुःख से मुक्त हो जाता है ॥ ५ ॥

तब कसीभारद्वाज ब्राह्मण ने एक स्वर्ण-थाली में खीर लाकर भगवान् के सामने रखते हुए कहा:—

आप गौतम ! खीर को खायें, अमृतफल देने वाली कृषि करने के कारण आप गौतम कृपक हैं।

बुद्ध:—धर्मोपदेश करने से प्राप्त भोजन मेरे योग्य नहीं। ब्राह्मण ! सम्यक् दर्शकों का यह धर्म नहीं है। धर्मोपदेश से प्राप्त भोजन को बुद्ध इनकार करते हैं। ब्राह्मण ! धर्म के विद्यमान रहते यही चाल रहती है ॥ ६ ॥

केदली, क्षीणाश्रव, चञ्चलता-रहित महर्षि की सेवा दूसरे अन्न और पान से करो; यह पुण्यापेक्षी का क्षेत्र है ॥ ७ ॥

ब्राह्मण:—“गौतम ! यह खीर मैं किसे दूँ ?”

बुद्ध:—“ब्राह्मण ! देव, ब्रह्म, श्रमण तथा ब्राह्मण, अन्तर्गत इस सारे लोक में, तथागत तथा तथागत-श्रावक को छोड़ कर किसी ऐसे प्राणी को मैं नहीं देखता जिसे इस भोजन से कोई कल्याण हो। इसलिए ब्राह्मण ! या तो इसे हरित तृण रहित स्थान पर छोड़ दो या प्राणी रहित जल में डाल दो।”

तब कसीभारद्वाज ब्राह्मण ने उस खीर को प्राणी रहित जल में डाल दिया। पानी में पड़ते ही वह खीर चिच्चिट, चिटिच्चिट की आवाज़ करने और भाप फेंकने लगी। जिस प्रकार दिन भर तप्त फाल पानी में डालते ही चिच्चिट, चिटिच्चिट की आवाज़ करता और भाप फेंकता है, उसी प्रकार वह खीर पानी में पड़ते ही चिच्चिट, चिटिच्चिट की आवाज़ करने तथा भाप फेंकने लगी।

तब कसीभारद्वाज ब्राह्मण संविग्न और रोमाञ्च हो जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर भगवान् के पादों में नतमस्त हो बोला—“आश्चर्य है ! गौतम !! आश्चर्य है ! गौतम !! जिस प्रकार कोई उलटे को पलट दे, ढँके को खोल दे, भूले भटकें को मार्ग बता दे, या अन्धकार में प्रदीप धारण करे जिससे कि आँखवाले रूप देख लें, इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश दिया। इसलिये मैं आप गौतम की शरण जाता हूँ। धर्म तथा भिक्षु-सङ्घ की भी। मैं आप गौतम के पास प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा पाऊँ।”

उपसंपदं । अचिरूपसम्पन्नो खो पनायस्मा भारद्वाजो एको वूपकट्टो अप्प-  
मत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो न चिरस्सेव यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्म-  
देव अगारस्मा अनगारियं पव्वजन्ति तदनुत्तरं ब्रह्मचरियपरियोसानं  
दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्जा सच्छिकत्वा उपसंपज्ज विहासि, खीणा जाति,  
वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्तायाति अब्भञ्जासि ।  
अब्बतरो च खो पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसीति ।

कसिभारद्वाजसुत्तं निवृत्तं ।

### ५—चुन्द-सुत्तं

पुच्छामि मुनिं पट्टतपञ्चं ( इति चुन्दो कम्मरपुत्तो ) बुद्धं धम्मस्सामि  
वीततण्हं ।

दिपदुत्तमं सारथीनं पवरं, कति लोके समणा तदिंघ ब्रूहि ॥ १ ॥

चतुरो समणा न पञ्चमत्थि ( चुन्दाति भगवा ) ते ते आविकरोमि  
सक्खिपुट्टो ।

मग्गजिनो मग्गदेसको च । मग्गे जीवति यो च मग्गदूसी ॥ २ ॥

कं मग्गजिनं वदन्ति बुद्धा ( इति चुन्दो कम्मरपुत्तो ) मग्गक्खायी  
कथं अतुल्यो होति ।

मग्गे जीवति मे ब्रूहि पुट्टो अथ मे आविकरोहि मग्गदूसिं ॥ ३ ॥

यो तिण्णकथं कथो विसल्लो निव्वाणाभिरतो अनानुगिट्ठो ।

लोकस्स सदेवकस्स नेता तदिं मग्गजिनं वदन्ति बुद्धा ॥ ४ ॥

परमं परमं ऽति यो ऽथ बत्वा अक्खाति विभजति इधेव धम्मं ।

त कंखच्छिदं मुनिं अनेजं दुतियं भिक्खुनमाहु मग्गदेसिं ॥ ५ ॥

यो धम्मपदे सुदेसिते मग्गे जीवति संयतो सतीमा ।

अनवज्जपदानि सेवमानो ततियं भिक्खुनमाहु मग्गजीविं ॥ ६ ॥

छदनं कत्वान सुब्बतानं पक्खन्दि कुलदूसको पगम्भो ।

मायावी असब्बतो पलापो पतिरूपेन चरं स मग्गदूसी ॥ ७ ॥

एते च पटिविज्झि यो गहट्ठो सुतवा अरियसावको सपञ्चो ।

सब्बे नेतादिसा ऽति बत्वा इति दिस्वा न हापेति तस्स सद्धा ।

कथं हि दट्ठेन असंपदुट्ठं सुद्धं असुद्धेन समं करेय्याति ॥ ८ ॥

चुन्दसुत्तं निवृत्तं ।

कसीभारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा पाई । कुछ ही दिनों के बाद आयुष्मान् भारद्वाज एकान्त में अप्रमत्त, उद्योगी तथा तत्पर हो, जिस अर्थ के लिए कुलपुत्र सम्यक् प्रकार से घर से बेघर हो विहरता है, उस अनुत्तर ब्रह्मचर्यावसान को इस जीवन में स्वयं जान कर, साक्षात् कर, प्राप्त कर विहरने लगा । उसने जान लिया—“जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्य पूर्ण हुआ, कृतकृत्य हो गया और पुनर्जन्म रुक गया ।” आयुष्मान् भारद्वाज अरहन्तों में से एक हुए ।

कसिभारद्वाजसुत्त समाप्त ।

## ५—चुन्द-सुत्त

[ यहाँ चुन्द भिन्न-भिन्न श्रमणों के विषय में पूछता है और भगवान् उसका उत्तर देते हैं ]

चुन्द :—बहु प्रज्ञमुनि, धर्मस्वामी, तृष्णा-रहित, द्विपदों में उत्तम और सारथियों में श्रेष्ठ बुद्ध से पूछता हूँ—संसार में कितने प्रकार के श्रमण हैं ? कृपया यह बतावें ॥ १ ॥

बुद्ध :—चुन्द ! चार प्रकार के श्रमण हैं, कोई पाँचवाँ प्रकार नहीं । मुझे पूछनेवाले तुम्हें मैं उनके विषय में बताता हूँ । वे हैं— १. मार्ग-जिन, २. मार्ग-देशक, ३. मार्ग-जीवी तथा, ४. मार्ग-दूषक ॥ २ ॥

चुन्द :—बुद्ध किसे मार्गजिन बताते हैं ? मार्ग-देशक किस प्रकार अतुल्य होता है ? मार्गजीवी कौन है ? फिर मुझे मार्ग-दूषक के विषय में बतावें ॥ ३ ॥

बुद्ध :—जो शङ्काओं से रहित, दुःख-मुक्त, निर्वाण में अभिरत, लालसा से रहित और देवों तथा मनुष्यों का नेता हो, बुद्ध उसे मार्गजिन बताते हैं ॥ ४ ॥

जो मुनि इस संसार में परमार्थ को परमार्थ जानकर यहाँ उस धर्म का उपदेश देता है और व्याख्या करता है; राग रहित, शङ्काओं को दूर करनेवाला वह दूसरा भिक्षु मार्ग-देशक कहा गया है ॥ ५ ॥

जो सुदेशित धर्मपद के अनुसार संयमित और स्मृतिमान हो मार्ग पर जीता है, अनवय पथ पर चलनेवाला वह तृतीय भिक्षु मार्गजीवी है ॥ ६ ॥

जो सुव्रतों का वेप धारण कर मौका की ताक में रहता है, जो कुल-दूषक प्रगल्भी, मायावी, असंयमी और प्रलापी हो साधुओं के भेष में विचरण करता है वह मार्ग-दूषक है ॥ ७ ॥

जो प्रज्ञावान् गृहस्थ आर्यश्रावक इन बातों को सुन कर जान गया है, उसकी श्रद्धा कम नहीं होती; क्योंकि वह जानता है कि सब वैसे नहीं होते । दुष्ट की समता किस प्रकार अदुष्ट से हो सकती है और शुद्ध की अशुद्ध से ॥ ८ ॥

चुन्दसुत्त समाप्त ।

## ६—पराभव-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथ-  
पिण्डिकस्स आरामे । अथ खो अञ्जतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया  
अभिक्कन्तवण्णा केवककप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसंकमि ।  
उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि । एकमन्तं  
ठिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अञ्जभासि—

पराभवन्तं पुरिसं मयं पुच्छाम गोतमं ।  
भगवन्तं पुट्टमागम्म किं पराभवतो मुखं ॥ १ ॥  
सुविजानो भवं होति सुविजानो पराभवो ।  
धम्मकामो भवं होति धम्मदेस्सी पराभवो ॥ २ ॥  
इति हेतं विजानाम पठमो सो पराभवो ।  
दुतियं भगवा ब्रूहि किं पराभवतो मुखं ॥ ३ ॥  
असन्तस्स पिया होन्ति सन्ते न कुरुते पियं ।  
असतं धम्मं रोचेति तं पराभवतो मुखं ॥ ४ ॥  
इति हेतं विजानाम दुतियो सो पराभवो ।  
ततियं भगवा ब्रूहि किं पराभवतो मुखं ॥ ५ ॥  
निद्दासीली सभासीली अनुट्ठाता च यो नरो ।  
अलसो कोधपञ्चाणो तं पराभवतो मुखं ॥ ६ ॥  
इति हेतं विजानाम ततियो सो पराभवो ।  
चतुत्थं भगवा ब्रूहि किं पराभवतो मुखं ॥ ७ ॥  
यो मातरं वा पितरं वा जिण्णकं गतयोब्बनं ।  
पटु सन्तो न भरति तं पराभवतो मुखं ॥ ८ ॥  
इति हेतं विजानाम चतुत्थो सो पराभवो ।  
पञ्चमं भगवा ब्रूहि किं पराभवतो मुखं ॥ ९ ॥  
यो ब्राह्मणं वा समणं वा अञ्जं वापि वनिब्बकं ।  
मुसावादेन वञ्चेति तं पराभवतो मुखं ॥ १० ॥  
इति हेतं विजानाम पञ्चमो सो पराभवो ।  
छट्ठमं भगवा ब्रूहि किं पराभवतो मुखं ॥ ११ ॥

## ६—पराभव-मुक्त

ऐसा मैंने सुना:—

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। उस समय एक देवता रात ब्रीतने पर उज्ज्वल प्रकाश से सारे जेतवन को आलोकित करते हुए जहाँ भगवान् थे वहाँ गया और भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हो उस देवता ने भगवान् से यह गाथा कही:—

भगवान् के पास आकर हम पतनोन्मुख पुरुष के विषय में पूछते हैं। पतन का कारण क्या है? ॥ १ ॥

बुद्ध:—उन्नत मनुष्य आसानी से जाना जा सकता है। पतनोन्मुख मनुष्य भी आसानी से जाना जा सकता है। धर्म-प्रेमी उन्नति को प्राप्त होता है और धर्म-द्वेषी अवनति को ॥ २ ॥

देवता:—अवनति के इस पहले कारण को हमने इस प्रकार जान लिया अब भगवान् अवनति के दूसरे कारण को बतावें ॥ ३ ॥

जिसे असत्पुरुष प्रिय हैं, सत्पुरुष प्रिय नहीं और जो असत्पुरुषों के धर्म को चाहता है, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ ४ ॥

देवता:—अवनति के इस दूसरे कारण को हमने इस प्रकार जान लिया। भगवान्! अवनति के तीसरे कारण को बतावें ॥ ५ ॥

बुद्ध:—जो नर निद्रालु, बहुतों से सम्पर्क रखनेवाला, अनुद्योगी, आलसी और क्रोधी है, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ ६ ॥

देवता:—अवनति के इस तीसरे कारण को हमने ऐसा ही जान लिया। भगवान्! अवनति के चौथे कारण को बतावें ॥ ७ ॥

बुद्ध:—जो समर्थ होने पर भी, दुबले और बूढ़े माता-पिता का पोषण नहीं करता है, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ ८ ॥

देवता:—अवनति के इस चौथे कारण को हमने ऐसा जान लिया भगवान्! अवनति के पाँचवें कारण को बतावें ॥ ९ ॥

बुद्ध:—जो, ब्राह्मण, श्रमण अथवा किसी दूसरे याचक को मिथ्या भाषण से धोखा देता है, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ १० ॥

देवता:—अवनति के इस पाँचवें कारण को हमने ऐसा जान लिया। भगवान्! अवनति के छठे कारण को बतावें ॥ ११ ॥

प॒हृतवि॒त्तो पु॒रिसो स॒हिरब्बो स॒भोजनो ।  
 ए॒को भु॒ञ्जति सा॒दूनि तं प॒राभव॑तो मुखं ॥ १२ ॥  
 इति हेतं वि॒जाना॑म छट्ठमो सो प॒राभवो ।  
 सत्त॑मं भग॒वा ब्रूहि॑ किं प॒राभव॑तो मुखं ॥ १३ ॥  
 जा॒ति॒त्थद्वो ध॒न॒त्थद्वो गो॒त्त॒त्थद्वो च यो न॑रो ।  
 सं व्वा॒तिं अ॒तिम॒ब्बेति॑ तं प॒राभव॑तो मुखं ॥ १४ ॥  
 इति हेतं वि॒जाना॑म सत्तमो सो प॒राभवो ।  
 अट्ठ॑मं भग॒वा ब्रूहि॑ किं प॒राभव॑तो मुखं ॥ १५ ॥  
 इ॒त्थिधु॒त्तो सु॒राधु॒त्तो अ॒क्खधु॒त्तो च यो न॑रो ।  
 ल॒द्धं ल॒द्धं वि॒नासे॑ति तं प॒राभव॑तो मुखं ॥ १६ ॥  
 इति हेतं वि॒जाना॑म अट्ठमो सो प॒राभवो ।  
 नव॑मं भग॒वा ब्रूहि॑ किं प॒राभव॑तो मुखं ॥ १७ ॥  
 सेहि॑ दा॒रेहि॒ऽसन्तुट्ठो वे॒सिया॑सु प॒दिस्स॑ति ।  
 दि॒स्सति॑ प॒रदा॑रेसु तं प॒राभव॑तो मुखं ॥ १८ ॥  
 इति हेतं वि॒जाना॑म नवमो सो प॒राभवो ।  
 द॒समं॑ भग॒वा ब्रूहि॑ किं प॒राभव॑तो मुखं ॥ १९ ॥  
 अती॑तयो॒ब्बनो पो॒सो आ॒नेति॑ ति॒वस्स॑त्थिनि ।  
 तस्सा॑ इस्सा न सु॒पति॑ तं प॒राभव॑तो मुखं ॥ २० ॥  
 इति हेतं वि॒जाना॑म दसमो सो प॒राभवो ।  
 ए॒काद॑समं भग॒वा ब्रूहि॑ किं प॒राभव॑तो मुखं ॥ २१ ॥  
 इ॒त्थिसो॑ण्ढि॒ वि॒कि॒रणि॑ पु॒रिसं वाऽपि॑ ता॒दिसं ।  
 इस्स॑रियस्मिं ठा॒पेति॑ तं प॒राभव॑तो मुखं ॥ २२ ॥  
 इति हेतं वि॒जाना॑म ए॒काद॑समो सो प॒राभवो ।  
 द्वा॒द॒समं॑ भग॒वा ब्रूहि॑ किं प॒राभव॑तो मुखं ॥ २३ ॥  
 अ॒प्पभो॑गो म॒हात॑ण्हो ख॒त्ति॒ये जा॒यते॑ कु॒ले ।  
 सोऽध॑ रज्जं प॒त्थय॑ति तं प॒राभव॑तो मुखं ॥ २४ ॥  
 एते॑ प॒राभ॒वे लो॒के प॒ण्डि॑तो स॒मवे॑स्सि॒ख्य ।  
 अ॒रियो द॑स्सनसंपन्नो स लो॒कं भ॑जते सि॒वंऽति ॥ २५ ॥  
 प॒राभ॒वसु॑त्तं नि॒द्धितं ।

बुद्ध :—सोना, भोजन इत्यादि बहु सम्पत्तिवाला पुरुष अकेला स्वादिष्ट भोजन करे तो वह उसकी अवनति का कारण होता है ॥ १२ ॥

देवता :—अवनति के इस छठे कारण को हमने ऐसा ही जान लिया । भगवान् ! अवनति के सातवें कारण को बतावें ॥ १३ ॥

बुद्ध :—जो नर जाति, धन तथा गोत्र का गर्व करता है और अपने बन्धुओं का अपमान करता है, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ १४ ॥

देवता :—अवनति के इस सातवें कारण को हमने ऐसा जान लिया । भगवान् ! अवनति के आठवें कारण को बतावें ॥ १५ ॥

बुद्ध :—जो स्त्रियों के पीछे पड़ा रहता है, जो शराबी और जुआरी है, जो अपनी कमाई को नष्ट कर देता है, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ १६ ॥

देवता :—अवनति के इस आठवें कारण को हमने ऐसा जान लिया । भगवान् ! अवनति के नवें कारण को बतावें ॥ १७ ॥

बुद्ध :—जो अपनी स्त्री से असन्तुष्ट हो वेश्याओं और पगलियों के साथ रहता है, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ १८ ॥

देवता :—अवनति के इस नवें कारण को हमने ऐसा ही जान लिया । भगवान् ! अवनति के दसवें कारण को बतावें ॥ १९ ॥

बुद्ध :—विगत यौवनवाला पुरुष किसी नई युवती को ब्याह लाये तो उसकी ईर्ष्या के कारण वह नहीं सो सकता, वह उसकी अवनति का कारण है ॥ २० ॥

देवता :—अवनति के इस दसवें कारण को हमने ऐसा ही जान लिया । भगवान् ! अवनति के ग्यारहवें कारण को बतावें ॥ २१ ॥

बुद्ध :—लालची या सम्पत्ति को बर्बाद करनेवाली किसी स्त्री या पुरुष को मुख्य स्थान पर नियुक्त किया जाय तो वह उसकी अवनति का कारण होता है ॥ २२ ॥

देवता :—अवनति के इस ग्यारहवें कारण को हमने ऐसा ही जान लिया । भगवान् ! अवनति के बारहवें कारण को बतावें ॥ २३ ॥

बुद्ध :—क्षत्रिय कुल में उत्पन्न अल्प सम्पत्तिवाला और महा लालची पुरुष राज्य की इच्छा करे तो वह उसकी अवनति का कारण होता है ॥ २४ ॥

दर्शन से युक्त, पण्डित, आर्य-पुंष अवनति के इन कारणों को अच्छी तरह जान सुखपूर्वक संसार में रहता है ॥ २५ ॥

पराभवसुत्त समाप्त ।

## ७—वसल-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे । अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थियं पिण्डाय पाविसि । तेन खो पन समयेन अग्गिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स निवेसने अग्गि पज्जलितो होति, आहुत-तग्गहिता । अथ खो भगवा सावत्थियं सपदानं पिण्डाय चरमानो येन अग्गिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसंकमि । अद्दसा खो अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं दूरतोऽव आगच्छन्तं । दिस्वान भगवन्तं एतद्वोच—तत्रेव मुण्डक, तत्रेव समणक, तत्रेव वसलक तिट्ठाहीति । एवं वुत्ते भगवा अग्गिकभारद्वाजं ब्राह्मणं एतद्वोच—जानासि पन त्वं ब्राह्मण वसलं वा वसलकरणे वा धम्मेऽति । न ख्वाहं भो गोतम जानामि वसलं वा वसलकरणे वा धम्मे । साधु मे भवं गोतमो तथा धम्मं देसेतु, यथाऽहं जानेय्यं वसलं वा वसलकरणे वा धम्मेऽति । तेन हि ब्राह्मण सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि, भासिस्सामीति । एवं भोऽति खो अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो पच्चस्सोसि । भगवा एतद्वोच—

- कोधनो उपनाही च पापमक्खी च यो नरो ।  
 विपन्नदिट्ठी मायावी तं जब्बा वसलो इति ॥ १ ॥
- एकजं वा द्विजं वाऽपि योऽध पाणं विहिंसति ।  
 यस्स पाणे दया नत्थि तं जब्बा वसलो इति ॥ २ ॥
- यो हन्ति परिरुन्धति गामानि निगमानि च ।  
 निग्गाहको समब्बातो तं जब्बा वसलो इति ॥ ३ ॥
- गामे वा यदि वा रब्बे यं परेसं ममायितं ।  
 थेय्या अदिन्नं आदियति तं जब्बा वसलो इति ॥ ४ ॥
- यो हवे इणमादाय चुज्जमानो पलायति ।  
 न हि ते इणमत्थीति तं जब्बा वसलो इति ॥ ५ ॥
- यो वे किञ्चिक्खकम्यता पन्थस्मिं वजतं जनं ।  
 हन्त्वा किञ्चिक्खमादेति तं जब्बा वसलो इति ॥ ६ ॥
- यो अत्तहेतु परहेतु धनहेतु च यो नरो ।  
 सक्खिपुट्ठो मुस्सा ब्रूति तं जब्बा वसलो इति ॥ ७ ॥

७—वसल-मुत्त

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। एक दिन वे पूर्वाह्न समय पहन पात्र-चीवर ले भिक्षा के लिए श्रावस्ती में निकले। उस समय अग्निकभारद्वाज ब्राह्मण के घर में आग जल रही थी और हवन सामग्री तैयार थी। भगवान् घर-घर भिक्षा माँगते जहाँ अग्निकभारद्वाज ब्राह्मण का घर था वहाँ पहुँचे। अग्निकभारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् को दूर से ही आते देखा, देखकर भगवान् से यह कहा—मुण्डक ! वहीं ठहर, श्रमण ! वहीं ठहर, वृषल ! वहीं ठहर।

ऐसा बोलने पर भगवान् ने अग्निकभारद्वाज ब्राह्मण से यह कहा—“ब्राह्मण ! वृषल या वृषलकारक धर्मों को तुम जानते हो ?”

ब्राह्मणः—“गौतम ! मैं वृषल या वृषलकारक धर्मों को नहीं जानता। अच्छा हो कि आप गौतम ! मुझे ऐसा धर्मोपदेश दें जिससे कि मैं वृषल और वृषलकारक धर्मों को जान सकूँ”

तुद्धः --“तो ब्राह्मण ! सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो, मैं कहूँगा।”  
“जी हाँ” कहकर ब्राह्मण ने भगवान् को उत्तर दिया। भगवान् बोलेः—

“जो नर क्रोधी तथा वैरी है, पापी तथा ईर्ष्यालु है, मिथ्यामतधारी तथा मायावी है, उसे वृषल जानो ॥ १ ॥

जो योनिज वा अण्डज प्राणियों की हिंसा करता है, जिसे प्राणिमात्र के प्रति दया नहीं, उसे वृषल जानो ॥ २ ॥

जो गाँवों और कस्बों को घेरता तथा नष्ट करता है, जो अत्याचारी के रूप में प्रसिद्ध है, उसे वृषल जानो ॥ ३ ॥

जो गाँव में या आरण्य में दूसरों की अपनाई हुई सम्पत्ति चोरी से ले लेता है, उसे वृषल जानो ॥ ४ ॥

जो ऋण लेकर माँगने पर ‘मैं तुम्हारे प्रति ऋणी नहीं हूँ’ कर भागता है, उसे वृषल जानो ॥ ५ ॥

जो किसी चीज की इच्छा से मार्ग में चलते हुए नर को मार कर कुछ ले लेता है, उसे वृषल जानो ॥ ६ ॥

जो आत्मार्थ या परार्थ धन की इच्छा से झूठी गवाही देता है, उसे वृषल जानो ॥ ७ ॥

यो आतीनं सखानं वा दारेसु पटिदिस्सति ।  
 सहसा संपियेन वा तं जब्बा वसलो इति ॥ ८ ॥  
 यो मातरं वा पितरं वा जिण्णकं गतयोब्बनं ।  
 पहु सन्तो न भरति तं जब्बा वसलो इति ॥ ९ ॥  
 यो मातरं वा पितरं वा भातरं भगिनिं ससुं ।  
 हन्ति रोसेति वाचाय तं जब्बा वसलो इति ॥ १० ॥  
 यो अत्थं पुच्छितो सन्तो अनत्थमनुसासति ।  
 पटिच्छन्नेन मन्तेति तं जब्बा वसलो इति ॥ ११ ॥  
 यो कत्वा पापकं कम्मं मा मं जब्बाऽति इच्छति ।  
 यो पटिच्छन्नकम्मन्तो तं जब्बा वसलो इति ॥ १२ ॥  
 यो वे परकुलं गन्त्वा भुत्वान सुचिभोजनं ।  
 आगतं न पटिपूजेति तं जब्बा वसलो इति ॥ १३ ॥  
 यो ब्राह्मणं वा समणं वा अज्जं वाऽपि वनिब्बकं ।  
 मुसावादेन वञ्चेति तं जब्बा वसलो इति ॥ १४ ॥  
 यो ब्राह्मणं वा समणं वा भत्तकाले उपट्ठिते ।  
 रोसेति वाचा न च देति तं जब्बा वसलो इति ॥ १५ ॥  
 असतं योऽध पन्नूति मोहेन पलिगुण्ठितो ।  
 किञ्चिक्खं निजिगिसानो तं जब्बा वसलो इति ॥ १६ ॥  
 यो चत्तानं समुक्कंसे परं चमवजानति ।  
 निहीनो सेन मानेन तं जब्बा वसलो इति ॥ १७ ॥  
 रोसको कदरियो च पापिच्छो मच्छरी सठो ।  
 अहिरिको अनोत्तप्पी तं जब्बा वसलो इति ॥ १८ ॥  
 यो बुद्धं परिभासति अथवा तस्स सावकं ।  
 परिब्बाजं गहट्ठं वा तं जब्बा वसलो इति ॥ १९ ॥  
 यो वे अनरहा सन्तो अरहं पटिजानति ।  
 चोरो सन्नद्धके लोके एस खो वसलाधमो ।  
 एते खो वसला वुत्ता मया वो ये पकासिता ॥ २० ॥  
 न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो ।  
 कम्मुना वसलो होति कम्मुना होति ब्राह्मणो ॥ २१ ॥  
 तदमिनाऽपि जानाथ यथा मेऽदं निदस्सनं ।  
 चण्डालपुत्तो सोपाको मातङ्गो इति विस्सुतो ॥ २२ ॥

जो जवर्दस्ती या प्रेम-भाव के साथ बन्धुओं या मित्रों की दाराओं के साथ रहता है, उसे वृषल जानो ॥ ८ ॥

जो समर्थ होने पर भी जीर्ण और विगत-यौवन माता-पिता का पोषण नहीं करता, उसे वृषल जानो ॥ ९ ॥

जो माता-पिता, भाई, बहन या सास को वचन से ताड़ता या सताता है, उसे वृषल जानो ॥ १० ॥

जो अर्थकारी बात पूछने पर अनर्थकारी बात बताता है और बात को घुमा-फिराकर बोलता है, उसे वृषल जानो ॥ ११ ॥

जो पाप कर्म करके यह इच्छा करता है कि दूसरे मुझे न जानें, जो प्रतिच्छन्न कर्मवाला है, उसे वृषल जानो ॥ १२ ॥

जो दूसरों के घर में जाकर स्वादिष्ट भोजन करके उसके आने पर खातिरदारी नहीं करता, उसे वृषल जानो ॥ १३ ॥

जो ब्राह्मण, श्रमण अथवा अन्य याचक को असत्य से धोखा देता है, उसे वृषल जानो ॥ १४ ॥

जो भोजन के समय आये हुए ब्राह्मण या श्रमण को धमकता है और कुछ नहीं देता, उसे वृषल जानो ॥ १५ ॥

जो मोह में उलझ कर, किसी चीज की इच्छा करके असत्य बोलता है, उसे वृषल जानो ॥ १६ ॥

जो अपनी बड़ाई करता है, दूसरे की अवहेलना करता है और उस कर्म से विहीन है, उसे वृषल जानो ॥ १७ ॥

जो रुष्ट और पेट्रू है, बुरी इच्छावाला, कंजूस और शठ है और जो बुरे कर्म करने में लजा-भय नहीं मानता, उसे वृषल जानो ॥ १८ ॥

जो बुद्ध, उनके श्रावक, परिव्राजक अथवा गृहस्थ की निन्दा करता है, उसे वृषल जानो ॥ १९ ॥

जो अर्हन्त न होते हुए अपने को अर्हन्त जनावे तो वह संसार में सबसे बड़ा चोर है । यह वृषलाधम है । मैंने तुम्हें ये वृषल बताये हैं ॥ २० ॥

कोई जाति से वृषल नहीं होता और न जाति से ब्राह्मण । कर्म से वृषल होता है और कर्म से ब्राह्मण ॥ २१ ॥

सोपाक नामक चण्डाल पुत्र मातंग नाम से प्रसिद्ध हुआ । मेरे इस निदर्शन से भी उस बात को जान लो ॥ २२ ॥

सो यसं परमं पत्तो मातङ्गो यं सुदुल्लभं ।  
 आगच्छं तस्सुपट्ठानं खत्तिया ब्राह्मणा बहू ॥ २३ ॥  
 सो देवयानमारुह्य विरजं सो महापथं ।  
 कामरागं विराजेत्वा ब्रह्मलोकूपगो अहु ।  
 न नं जाति निवारेसि ब्रह्मलोकूपपत्तिया ॥ २४ ॥  
 अज्झायककुले जाता ब्राह्मणा मन्तवन्धुनो ।  
 ते च पापेसु कम्मेसु अभिण्हमुपदिस्सरे ॥ २५ ॥  
 दिट्ठेव धम्मे गारुह्य संपराये च दुग्गतिं ।  
 न ते जाति निवारेति दुग्गच्चा गरहाय वा ॥ २६ ॥  
 न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो ।  
 कम्मुना वसलो होति कम्मुना होति ब्राह्मणोऽति ॥ २७ ॥  
 एवं वुत्ते अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—अभिक्कन्तं  
 भो गोतम...पे०...धम्मं च भिक्खुसंघं च । उपासकं मं भवं गोतमो  
 धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतंऽति ।

वसलसुत्तं निद्रितं ।

### ८—मेत्त-सुत्तं

करणीयमत्थकुसलेन यं तं सन्तं पदं अभिसमेच्च ।  
 सक्को उजू च सूजू च सुवचो चस्स मुदु अनतिमानी ॥ १ ॥  
 सन्तुस्सको च सुभरो च अप्पकिच्चो च सल्लहुकवुत्ति ।  
 सन्तिन्द्रियो च निपको च अप्पगम्भो कुलेसु अननुगिद्धो ॥ २ ॥  
 न च खुद्दं समाचरे किञ्चि येन विञ्जू परे उपवदेय्युं ।  
 सुखिनो वा खेमिनो होन्तु सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ॥ ३ ॥  
 ये केचि पाणभूतत्थि तसा वा थावरा वा अनवसेसा ।  
 दीघा वा ये महन्ता वा मज्झिमा रस्सकाऽणुकथूला ॥ ४ ॥  
 दिट्ठा वा येव अदिट्ठा ये च दूरे वसन्ति अविदूरे ।  
 भूता वा संभवेसी वा सब्बे सत्ता भवन्ति सुखितत्ता ॥ ५ ॥

जब वह मातंग दुर्लभ परम यश को प्राप्त हुआ तो बहुत से क्षत्रिय तथा ब्राह्मण उसकी सेवा में प्रस्तुत हुए ॥ २३ ॥

वह कामराग का दमनकर, शुद्ध महापथ में, दिव्ययान पर सवार हो ब्रह्मलोक को गया । जाति ने ब्रह्मलोक में जन्म लेने से उसे नहीं रोका ॥ २४ ॥

वैदिक कुल में उत्पन्न मन्त्र-बन्धु जा ब्राह्मण हैं, वे भी प्रायः पाप कर्म करते देखे जाते हैं ॥ २५ ॥

वे इस लोक में गर्हित होते हैं । दूसरे जन्म में उनकी दुर्गति होती है । जाति न तो उन्हें दुर्गति से बचाती है और न निन्दा से ॥ २६ ॥

कोई जाति से वृषल नहीं होता और न जाति से ब्राह्मण । कर्म से वृषल होता है और कर्म से ब्राह्मण” ॥ २७ ॥

इस प्रकार कहने पर अभिक्रमरत्नाज ब्राह्मण ने भगवान् से यह कहा—  
“आश्चर्य है ! गौतम ! आश्चर्य है ! गौतम ! जिस प्रकार कोई उलटे को पलट दे, ढके को खोल दे, भूले भटके को मार्ग दिखावे या अन्धकार में प्रकाश करे जिससे कि आँखवाले रूप देख सकें इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म का उपदेश दिया । इसलिए मैं आप गौतम, धर्म तथा संघ की शरण जाता हूँ । आप गौतम मुझे आज से जीवन पर्यन्त शरणागत उपासक ग्रहण करें ।

वसलसुत्त समाप्त ।



### ८—मेत्त-सुत्त

[ इस सूत्र में प्राणि मात्र के प्रति प्रेम करने का उपदेश है ]

शान्त पद की प्राप्ति चाहनेवाले कल्याण साधन में निपुण मनुष्य को चाहिए कि वह योग्य, ऋजु और अत्यन्त ऋजु बने । उसकी बात सुन्दर, मृदु और विनीत हो ॥ १ ॥

वह सन्तोषी हो, सहज ही पोष्य हो, अल्पकृत्य हो और सादा जीवन बितानेवाला हो । उसकी इन्द्रियाँ शान्त हों । वह चतुर हो, अप्रगल्भ हो और कुलों में अनासक्त हो ॥ २ ॥

ऐसा कोई छोटा से भी छोटा कार्य न करे जिसके लिए दूसरे विश्व लोग उसे दोष दें । सब प्राणी सुखी हों । सबका कल्याण हो । सभी अच्छी तरह रहें ॥ ३ ॥

जंगम या स्थावर, दीर्घ या महान, मध्यम या ह्रस्व, अणु या स्थूल, दृष्ट या अदृष्ट, दूरस्थ या निकटस्थ, उत्पन्न या उत्पत्त्यमान जितने भी प्राणी हैं वे सभी सुखपूर्वक रहें ॥ ४—५ ॥

न परो परं निकुब्जेथ नातिमञ्जयेथ कत्थचि नं कञ्चि ।  
 व्यारोसना पटिघसञ्जा नाञ्जमञ्जस्स दुक्खमिच्छेय्य ॥ ६ ॥  
 माता यथा नियं पुत्तं आयुसा एकपुत्तमनुरक्खे ।  
 एवंऽपि सब्बभूतेसु मानसं भावये अपरिमाणं ॥ ७ ॥  
 मेत्तं च सब्बलोकस्मि मानसं भावये अपरिमाणं ।  
 उद्धं अधो च तिरियं च असंबाधं अवेरं असपत्तं ॥ ८ ॥  
 तिट्ठं चरं निसिन्नो वा सयानो वा यावतस्स विगतमिद्धो ।  
 एतं सति अधिट्ठेय्य ब्रह्ममेतं विहारं इधमाहु ॥ ९ ॥  
 दिट्ठिं च अनुपगमम सीलवा दस्सनेन संपन्नो ।  
 कामेसु विनेय्य गोधं न हि जातु गम्भसेय्यं पुनरेतीति ॥ १० ॥  
 मेत्तमुत्तं निट्ठितं ।

## ९--हेमवत-सुत्तं

अज्ज पण्णरसो उपोसथो (इति सातागिरो यक्खो) दिव्या रत्ति उपट्ठिता ।  
 अनोमनामं सत्थारं हन्द पस्साप गोतमं ॥ १ ॥  
 कच्चि मनो सुपणिहितो (इति हेमवतो यक्खो) सब्बभूतेसु तादिनो ।  
 कच्चि इट्ठे अनिट्ठे च संकप्पस्स वसीकता ॥ २ ॥  
 मनो चस्स सुपणिहितो (इति सातागिरो यक्खो) सब्बभूतेसु तादिनो ।  
 अथो इट्ठे अनिट्ठे च संकप्पस्स वसीकता ॥ ३ ॥  
 कच्चि अदिन्नं नादियति (इति हेमवतो यक्खो) कच्चि पाणेसु सञ्जतो ।  
 कच्चि आरा पमादम्हा कच्चि झानं न रिञ्चति ॥ ४ ॥  
 न सो अदिन्नं आदियति (इति सातागिरो यक्खो) अथो पाणेसु सञ्जतो ।  
 अथो आरा पमादम्हा बुद्धो झानं न रिञ्चति ॥ ५ ॥  
 कच्चि मुसा न भणति (इति हेमवतो यक्खो) कच्चि न खीणव्यप्पथो ।  
 कच्चि वेभूतियं नाह कच्चि सम्फं न भासति ॥ ६ ॥  
 मुसा च सो न भणति (इति सातागिरो यक्खो) अथो न खीणव्यप्पथो  
 अथो वेभूतियं नाह मन्ता अत्थं सा भासति ॥ ७ ॥

एक दूसरे की वंचना न करे । कभी किसी का अवमान न करे । वैमनस्य या विरोध से एक दूसरे के दुःख की इच्छा न करे ॥६॥

माता जिस प्रकार जान की परवाह न कर, अपने एकलौते पुत्र की रक्षा करती है उसी प्रकार प्राणिमात्र के प्रति असीम प्रेम भाव बढ़ावे ॥७॥

बिना बाधा, वैर और शत्रुता के ऊपर, नीचे और तिरछे सारे संसार के प्रति असीम प्रेम बढ़ावे ॥८॥

खड़े रहते, चलते, बैठते या सोते, जब तक जाग्रत है तब तक इस प्रकार की स्मृति बनाये रखनी चाहिए । यही ब्रह्म विहार कहा गया है ॥९॥

ऐसा नर किसी मिथ्या दृष्टि में न पड़े, शीलवान हो, विशुद्ध दर्शन से युक्त हो, काम तृष्णा का नाश कर पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है ॥१०॥

मेत्तसुत्त समाप्त ।

## ९—हेमवत-सुत्त

[ दो यक्षों के बीच भगवान् के विषय में बातचीत चलती है । वे भगवान् के पास जाते हैं और उपदेश सुनने के बाद उनके अनुयायी बन जाते हैं ]

सातागिर यक्ष :—आज पंचदशी उपोसथ है । दिव्य रात्रि उपस्थित है । श्रेष्ठ नामवाले शास्ता गौतम को हम देखें ॥१॥

हेमवत यक्ष :—क्या उनका चित्त समाधिस्थ है ? क्या सब प्राणियों के प्रति वे समान हैं ? क्या इष्ट और अनिष्ट विषयक उनके संकल्प वश में हैं ॥२॥

सातागिर यक्ष :—उनका चित्त समाधिस्थ है । सभी प्राणियों के प्रति वे एक समान हैं । इष्ट और अनिष्ट विषयक उनके संकल्प वश में हैं ॥३॥

हेमवत यक्ष :—क्या वे चोरी नहीं करते ? क्या वे प्राणियों के प्रति संयमी हैं ? क्या वे प्रमाद से दूर हैं ? क्या उनका ध्यान रिक्त नहीं होता ? ॥४॥

सातागिर यक्ष :—वे चोरी नहीं करते । प्राणियों के प्रति वे संयमी हैं । वे प्रमाद से दूर हैं । बुद्ध ध्यान से रिक्त नहीं रहते ॥५॥

हेमवत यक्ष :—क्या वे झूठ नहीं बोलते ? क्या वे कटु वचन का प्रयोग नहीं करते ? क्या वे विपत्तिकारक बातें नहीं करते ? क्या वे व्यर्थ प्रलाप नहीं करते ? ॥६॥

सातागिर यक्ष :—वे झूठ भी नहीं बोलते । न वे कटु वचनों का प्रयोग करते हैं । वे विपत्तिकारक बातें भी नहीं करते । वे सार्थक तथा कल्याणकर बातें ही करते हैं ॥७॥

कश्चि न रज्जति कामेसु (इति हेमवतो यक्खो) कश्चि चित्तं अनाविलं ।  
कश्चि मोहं अतिकन्तो कश्चि धम्मेसु चक्खुमा ॥ ८ ॥

न सो रज्जति कामेसु (इति सातागिरो यक्खो) अथो चित्तं अनाविलं ।  
सब्बं मोहं अतिकन्तो बुद्धो धम्मेसु चक्खुमा ॥ ९ ॥

कश्चि विज्जाय संपन्नो (इति हेमवतो यक्खो) कश्चि संसुद्धचारणो ।  
कश्चिऽस्स आसवा खीणा कश्चि नत्थि पुनब्भवो ॥ १० ॥

विज्जाय चेव संपन्नो (इति सातागिरो यक्खो) अथो संसुद्धचारणो ।  
सब्बस्स आसवा खीणा नत्थि तस्स पुनब्भवो ॥ ११ ॥

संपन्नं मुनिनो चित्तं कम्मना व्यप्पथेन च ।  
विज्जाचरणसंपन्नं हन्द पस्साम गोतमं ॥ १२ ॥

एणिजंघं किसं धीरं अप्पाहारं अलोलुपं ।  
मुनिं वनस्मिं ज्ञायन्तं एहि पस्साम गोतमं ॥ १३ ॥

सीहंऽवेकचरं नागं कामेसु भनपेक्खिनं ।  
उपसंकम्म पुच्छाम मच्चुपासा पमोचनं ॥ १४ ॥

अक्खातारं पवत्तारं सब्बधम्माम पारगुं ।  
बुद्धं वेरभयातीतं मयं पुच्छाम गोतमं ॥ १५ ॥

किस्मिं लोको समुप्पन्नो (इति हेमवतो यक्खो) किस्मिं कुब्बति सन्थवं ।  
किस्स लोको उपादाय किस्मिं लोको विहब्बति ॥ १६ ॥

छस्सु लोको समुप्पन्नो (हेमवताति भगवा) छस्सु कुब्बति सन्थवं ।  
छन्नमेव उपादाय छस्सु लोको विहब्बति ॥ १७ ॥

कतमं तं उपादानं एत्थ लोको विहब्बति ।  
निय्यानं पुच्छितो ब्रूहि कथं दुक्खा पमुच्चति ॥ १८ ॥

पंच कामगुणा लोके मनोछट्ठा पमोदिता ।  
एत्थ छन्दं विराजेत्वा एवं दुक्खा पमुच्चति ॥ १९ ॥

एतं लोकस्म निय्यानं अक्खातं वो यथातथं ।  
एतं वो अहमक्खामि एवं दुक्खा पमुच्चति ॥ २० ॥

को सूध तरति ओघं कोऽध तरति अण्णवं ।  
अप्पतिट्ठे अनालम्बे को गंभीरे न सीदति ॥ २१ ॥

हेमवत यक्ष :—क्या वे काम में अनासक्त हैं ? क्या उनका चित्त शान्त है ? क्या वे मोह से परे हैं ? क्या धर्मों के विषय में वे चक्षुमान् हैं ? ॥८॥

सातागिर यक्ष :—वे काम में असक्त नहीं । उनका मन शान्त है । वे सब मोह से परे हैं । बुद्ध धर्म के विषय में चक्षुमान् हैं ॥९॥

हेमवत यक्ष :—क्या वे विद्या से युक्त हैं ? क्या उनका आचरण शुद्ध है ? क्या उनकी वासनायें क्षीण हो गई हैं ? क्या उनके लिए पुनर्भव नहीं है ? ॥१०॥

सातागिर यक्ष :—वे विद्या से ही युक्त हैं । उनका आचरण परिशुद्ध है । उनकी सब वासनायें क्षीण हैं । उनके लिए पुनर्भव नहीं है ॥११॥

हेमवत यक्ष :—मुनि का चित्त कर्म और वचन से सुसम्पन्न है । विद्या और आचरण से सुसम्पन्न गौतम का हम दर्शन करें ॥१२॥

मृग की सी कृश जंघावाले, धीर, अल्पाहारी, लोलुपता से रहित, जंगल में ध्यान करनेवाले मुनि का हम चल कर दर्शन करें ॥१३॥

सिंह की तरह एकचारी, काम की अपेक्षा न करनेवाले बुद्ध के पास जाकर मृत्यु-पाश से मोचन के विषय में पूछें ॥१४॥

दोनों यक्ष :—धर्म को बतानेवाले, उसका प्रवर्तन करनेवाले, सब धर्मों में पारंगत, वैर और भय से रहित गौतम बुद्ध से हम पूछते हैं ॥१५॥

हेमवत यक्ष :—लोक किससे उत्पन्न हुआ है ? इसका दृढ़ सम्बन्ध किससे है ? किस उपादान के कारण लोक पीड़ित रहता है ? ॥१६॥

बुद्ध—छः कारणों से लोक उत्पन्न हुआ है । छः कारणों से उसका दृढ़ सम्बन्ध है । छः उपादानों के कारण ही लोक पीड़ित रहता है । ॥१७॥

हेमवत यक्ष :—वह उपादान कौन-सा है जिसके कारण लोक पीड़ित रहता है ? उससे छुटकारा क्या है ? दुःख से मुक्ति कैसे हो सकती है ? ॥१८॥

बुद्ध—संसार के पाँच प्रकार के काम गुणों और मन का छन्द छोड़ने से दुःख से मुक्ति हो सकती । ॥१९॥

यही लोक की मुक्ति है । मैंने तुम्हें इसे ज्यों का त्यों बताया है । मैं तुम्हें यही बताता हूँ कि दुःख से मुक्ति इस प्रकार ही हो सकती है ॥२०॥

हेमवत यक्ष :—यहाँ संसार रूपी बाढ़ को कौन पार करता है ? भवसागर को कौन पार करता है ? विना प्रतिष्ठा और अवलम्ब के गम्भीर सागर में कौन नहीं डूबता ? ॥२१॥

सब्बदा सीलसंपन्नो, पब्बवा सुसमाहितो ।

अज्झत्तचिन्ती सतिमा, ओघं तरति दुत्तरं ॥२२॥

विरतो कामसब्बाय, सब्बसंयोजनातिगो ।

नन्दीभवपरिक्खीणो, सो गंभीरे न सीदति ॥२३॥

गंभीरपब्बं निपुणत्थदस्सिं, अकिञ्चनं कामभवे असत्तं ।

तं पस्सथ सब्बधि विप्पमुत्तं, दिब्बे पथे कममानं महेस्सिं ॥२४॥

अनोमनामं निपुणत्थदस्सिं, पब्बाददं कामालये असत्तं ।

तं पस्सथ सब्बविदुं सुमेधं, अरिये पथे कममानं महेस्सिं ॥२५॥

सुदिट्ठं वत नो अज्ज सुप्पभातं सुट्ठितं ।

यं अहसाम संबुद्धं, ओघतिण्णमनासवं ॥२६॥

इमे दससता यक्खा, इद्धिमन्तो यसस्सिनो ।

सब्बे तं सरणं यन्ति, त्वं नो सत्था अनुत्तरो ॥२७॥

ते मयं विचरिस्साम, गामा गामं नगा नगं ।

नमस्समाना संबुद्धं, धम्मस्स च सुधम्मतन्ति ॥२८॥

हेमवतमुत्तं निट्ठितं ।

## १०—आळवक सुत्तं

एवं मे सुत्तं । एकं समयं भगवा आळवियं विहरति आळवकस्स यक्खस्स भवने । अथ खो आळवको यक्खो येन भगवा तेनुपसंकमि, छपसंकमित्वा भगवन्तं एतदवोच—निक्खम समणाति । साधावुसोऽति भगवा निक्खमि । पविस समणाति । साधावुसो’ति भगवा पाविसि । दुतियंऽपि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच—निक्खम समणाति । साधावुसो’ति भगवा निक्खमि । पविस समणाति । साधावुसो’ति भगवा पाविसि । ततियं’पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच—निक्खम समणाति । साधावुसो’ति भगवा निक्खमि । पविस समणाति । साधावुसो’ति भगवा पाविसि । चतुत्थंऽपि खो आळवको यक्खो भगवन्तं

बुद्ध—सदा शील से युक्त, ज्ञानी, समाधि रहित, अध्यात्म चिन्तन में रत स्मृतिमान् दुस्तर बाढ़ को पार करता है ॥ २२ ॥

जो काम चेतनाओं से विरक्त है, जो सब बन्धनों से परे है और जिसमें भव-नृणा क्षीण हो गई है, वह संसाररूपी गम्भीर सागर में नहीं डूबता ॥ २३ ॥

हेमवत यक्षः—गम्भीर प्रज्ञा से युक्त, निपुणार्थदर्शी, अकिंचन, काम-भव में अनासक्त, सब वासनाओं से मुक्त, दिव्य-पथ पर चलनेवाले इस महर्षि को देखो ॥ २४ ॥

श्रेष्ठ नामवाले, परमार्थ दर्शन में निपुण, प्रज्ञा देनेवाले, काम में अनासक्त, सर्वज्ञ, पण्डित, आर्य पथ पर चलनेवाले इन महर्षि को देखो ॥ २५ ॥

आज हमने एक मांगलिक दृश्य देखा है और आज सुप्रभात का उदय हुआ है जिससे कि संसार सागर पार किए और वासना रहित सम्यक् सम्बुद्ध का हमने दर्शन किया ॥ २६ ॥

ये ऋद्धिमान् और यशस्वी एक हजार यक्ष सब आपकी शरण जाते हैं । आप हमारे श्रेष्ठ गुरु हैं ॥ २७ ॥

हम गाँव गाँव और पहाड़ पहाड़ सम्बुद्ध तथा उनके सुदेशित धर्म को नमस्कार करते हुए विचरण करेंगे ॥ २८ ॥

हेमवतसुत्त समाप्त ।

## १०—आलवक सुत्त

ऐसा मैंने सुनाः—

एक समय भगवान् आलवी में आलवक यक्ष के भवन में विहार करते थे । उस समय एक दिन आलवक यक्ष जहाँ भगवान् थे वहाँ गया और भगवान् से बोला, “श्रमण ! निकल जाओ ।” “अच्छा आयुष्मान्” कह भगवान् निकल गये । “भीतर आओ श्रमण !” “अच्छा आयुष्मान्” कह भगवान् भीतर आये ।

दूसरी बार भी आलवक यक्ष ने भगवान् से ऐसा कहा, “श्रमण ! निकल जाओ ।” “अच्छा आयुष्मान्” कह भगवान् निकल गये । “श्रमण ! भीतर आओ ।” “अच्छा आयुष्मान्” कह भगवान् भीतर आये ।

तीसरी बार भी आलवक यक्ष ने भगवान् से कहा, “श्रमण ! निकल जाओ ।” “अच्छा आयुष्मान्” कह भगवान् निकल गये । “श्रमण ! भीतर आओ ।” “अच्छा आयुष्मान्” कह भगवान् भीतर आये ।

चौथी बार भी आलवक यक्ष ने भगवान् से ऐसा कहा, “श्रमण !

एतद्वोच-निक्खम समणाति । न ख्वाहं तं आवुसो निक्खमिस्सामि, यं ते करणीयं तं करोहीति । पब्बहं तं समण पुच्छिस्सामि सचे मे न व्याकरिस्ससि चित्तं वा ते खिपिस्सामि, हृदयं वा ते फालेस्सामि, पादेसु वा गहेत्वा पारंगंगाय खिपिस्सामीति । न ख्वाहं तं आवुसो पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय्य, हृदयं वा फालेय्य, पादेसु वा गहेत्वा पारंगंगाय खिपेय्य, अपि च त्वं आवुसो पुच्छ यदाकंखसीति । अथ खो आळ्वको यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

किं सुध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, किं सु सुचिण्णं सुखमावहाति ।

किं सु हवे सादुतरं रसानं, कथं जीविं जीवितमाहु सेट्ठं ॥१॥

सद्धीध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, धम्मो सुचिण्णो सुखमावहाति ।

सच्चं हवे सादुतरं रसानं, पब्बाजीविं जीवितमाहु सेट्ठं ॥२॥

कथं सु तरती ओघं, कथं सु तरति अण्णवं ।

कथं सु दुक्खं अच्चेति, कथं सु परिसुज्झति ॥३॥

सद्धाय तरती ओघं, अप्पमादेन अण्णवं ।

विरियेन दुक्खं अच्चेति, पब्बाय परिसुज्झति ॥४॥

कथं सु लभते पब्बं, कथं सु विन्दते धनं ।

कथं सु किट्ठिं पप्पोति, कथं मित्तानि गन्थति ।

अस्मा लोका परं लोकं, कथं पेच्च न सोचति ॥५॥

सद्धानो अरहतं, धम्मं निब्बाणपत्तिया ।

सुस्सूसा लभते पब्बं, अप्पमत्तो विचक्खणो ॥६॥

पतिरूपकारी धुरवा, उट्ठाता विन्दते धनं ।

सच्चेन किट्ठिं पप्पोति, ददं मित्तानि गन्थति ॥७॥

यस्सेते चतुरो धम्मा, सद्धस्स घरमेसिनो ।

सच्चं धम्मो धिती चागो, स वे पेच्च न सोचति ।

अस्मा लोका परं लोकं, स वे पेच्च न सोचति ॥८॥

निकल जाओ।”

“आयुष्मान् ! मैं नहीं निकलूँगा, तुम्हें जो कुछ करना हो सो करो।”  
 “श्रमण ! मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा। यदि तुम उसका उत्तर न दोगे तो तुम्हारा चित्त विक्षिप्त कर दूँगा या हृदय को फाड़ दूँगा या पैरों को पकड़ कर गङ्गा के पार फेंक दूँगा।”

“आयुष्मान् ! देव, मार, ब्रह्म, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारी सत्त्व प्रजा में मैं किसी ऐसे प्राणी को नहीं देखता जो कि मेरा चित्त विक्षिप्त कर सके या हृदय को फाड़ सके या पैरों को पकड़ कर मुझे गङ्गा के पार फेंक सके; फिर भी आयुष्मान् ! जो चाहते हो सो पूछो।” तब आलवक यक्ष ने गाथा में भगवान् से कहा:—

आलवक यक्ष:—इस संसार में मनुष्य का श्रेष्ठ धन कौन सा है ? किसके अभ्यास से सुख पहुँचता है ? सब रसों में कौन सा रस उत्तम है ? किस प्रकार का जीवन श्रेष्ठ जीवन कहा गया है ? ॥ १ ॥

बुद्ध :—इस संसार में मनुष्य का श्रेष्ठ धन श्रद्धा है। धर्म के अभ्यास से सुख पहुँचता है। सब रसों में सत्य का रस ही उत्तम है। प्रज्ञामय जीवन ही श्रेष्ठ जीवन कहा गया है ॥ २ ॥

आलवक यक्ष :—मनुष्य पुनर्जन्म रूपी बाढ़ को किस प्रकार पार करता है ? संसार रूपी सागर को किस प्रकार तरता है ? किस प्रकार दुःख के परे हो जाता है ? किस प्रकार परिशुद्ध होता है ? ॥ ३ ॥

बुद्ध :—मनुष्य श्रद्धा से बाढ़ को पार करता है और अप्रमाद से सागर को। वह पराक्रम से दुःख के परे हो जाता है और प्रज्ञा से परिशुद्ध होता है ॥ ४ ॥

आलवक यक्ष :—मनुष्य किस प्रकार प्रज्ञा को प्राप्त करता है ? किस प्रकार धन को प्राप्त करता है ? किस प्रकार मित्रों को प्राप्त करता है ? इस लोक से दूसरे लोक में जाकर किस प्रकार पछतावा नहीं करता ? ॥ ५ ॥

बुद्ध :—निर्वाण की ओर ले जानेवाले अर्हतों के धर्म में श्रद्धा रखनेवाला, विनीत और अप्रमत्त विचक्षण पुरुष प्रज्ञा को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

उचित काम को करनेवाला, दृढ़ और प्रयत्नशील मनुष्य धन को प्राप्त करता है। वह सत्य से कीर्ति को प्राप्त करता है और दान देकर मित्रों को अपनाता है ॥ ७ ॥

जिस श्रद्धालु गृहस्थ में सत्य, धर्म, धृति और त्याग—ये चार धर्म हैं वह परलोक में पछतावा नहीं करता ॥ ८ ॥

इह् अञ्चेऽपि पुच्छस्सु, पुथु समणब्राह्मणे ।  
यदि सञ्चा दमा चागा, खन्त्या भिययोध विज्जति ॥९॥  
कथं नु दानि पुच्छेय्यं, पुथु समण ब्राह्मणे ।  
सोऽहं अज्ज पजानामि, यो चत्थो संपरायिको ॥१०॥  
अत्थाय वत मे बुद्धो, वासायाळविमागमा ।  
सोऽहं अज्ज पजानामि, यत्थ दिन्नं महप्फलं ॥११॥  
सो अहं विचरिस्सामि, गामा गामं पुरा पुरं ।  
नमस्समानो संबुद्धं, धम्मस्स च सुधम्मतन्ति ॥१२॥

एवं वुत्ते आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच-अभिकन्तं भो गोतम...  
पे०...भिक्षुसंघं च । उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं  
सरणं गतन्ति ।

आळवकसुत्तं निवृत्तं ।

## ११—विजय-सुत्तं

चरं वा यदि वा तिष्ठं, निसिन्नो उद वा सयं ।  
सम्मिञ्जेति पसारेति, एसा कायस्स इञ्जना ॥१॥  
अट्टिनहारसंयुत्तो, तचमंसावलेपनो ।  
छविया कायो पटिच्छन्नो, यथाभूतं न दिस्सति ॥२॥  
अन्तपूरो उदरपूरो, यकपेळस्स वत्थिनो ।  
हृदयस्स पप्फासस्स, वक्कम्स पिहकस्स च ॥३॥  
सिंघाणिकाय खेळस्स, सेदस्स च मेदस्स च ।  
लोहितस्स लसिकाय, पित्तस्स च वसाय च ॥४॥  
अथस्स नवहि सोत्तेहि, असुचि सवति सब्बदा ।  
अक्खिग्ग्हा अक्खिग्गूथको, कण्णग्ग्हा कण्णग्गूथको ॥५॥  
सिंघाणिका च नासातो, मुखेन वमतेकदा ।  
पित्तं सेहं च वमति, कायग्ग्हा सेदजल्लिका ॥६॥  
अथस्स सुसिरं सीसं, मत्थलुङ्गस्स पूरितं ।  
सुभतो नं मब्बति बालो, अविज्जाय पुरक्खतो ॥७॥  
यदा च सो मतो सेति, उद्धमातो विनीलको ।  
अपविद्धो सुसानस्मि, अनपेक्खा होन्ति वातयो ॥८॥

भिन्न-भिन्न और श्रमण-ब्राह्मणों से पूछो कि सत्य, इन्द्रिय-दमन, त्याग और क्षान्ति से बढ़कर कुछ और भी है कि नहीं ॥ ९ ॥

आलवक यक्ष :—अब मैं दूसरे श्रमण-ब्राह्मणों से क्या पूछूँ ? पारलौकिक अर्थ की बात को मैंने जान लिया ॥ १० ॥

मेरे कल्याणार्थ आज बुद्ध मेरे निवास आलवी में आ गये हैं । आज मैं जान गया कि किस को दिये गये दान का फल महान् होता है ॥ ११ ॥

अब मैं सम्बुद्ध और इनके सुदेशित धर्म को नमस्कार करते हुए ग्राम ग्राम और नगर नगर विचरण करूँगा ॥ १२ ॥

**आलवकसुत्त समाप्त ।**

## ११—विजय सुत्तं

[ यह उपदेश शरीर की अनित्यता के विषय में है । ]

चलते या ठहरते, बैठते या सोते जो कोई सिकोड़ता या फैलाता है, यह सब शरीर की गतियाँ हैं ॥ १ ॥

हड्डी और नस से संयुक्त, त्वचा और मांस का लेप चढ़ा तथा चाम से ढँका यह शरीर जैसा है वैसा दिखाई नहीं देता ॥ २ ॥

इस शरीर के भीतर हैं—आँत, उदर, यकृत, वस्ति, हृदय; पुष्फुस, वृक्क, तिल्ली, नासा-मल, लार, पसीना, मेद, लोहू, लसिका, पित्त और चर्बी ॥ ३-४ ॥

उनके नौ द्वारों से हमेशा गन्दगी निकलती रहती है । आँख से आँख की गन्दगी निकलती है और कान से कान की गन्दगी ॥ ५ ॥

नाक से नासिका-मल, मुख से पित्त और कफ़ शरीर से पसीना और मल निकलते हैं ॥ ६ ॥

इसके सर की खोपड़ी गुदा से भरी है । अविद्या के कारण मूर्ख इसे शुभ मानता है ॥ ७ ॥

मृत्यु के बाद जब यह शरीर सूज कर नीला हो श्मशान में पड़ा रहता है तो उसे बन्धु-बान्धव भी छोड़ देते हैं ॥ ८ ॥

खादन्ति नं सुवाना च, सिगाला च वक्का किमी ।  
 काका गिज्झा च खादन्ति, ये चञ्जे सन्ति पाणिनो ॥९॥  
 सुत्थान बुद्धवचनं, भिक्खु पञ्चाणवा इध ।  
 सो खो नं परिजानाति, यथाभूतं हि पस्सति ॥१०॥  
 यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं ।  
 अज्झतं च बहिद्धा च, काये छन्दं विराजये ॥११॥  
 छन्दरागविरत्तो सो, भिक्खु पञ्चाणवा इध ।  
 अज्झगा अमतं सन्ति, निग्वाणपदमच्चुतं ॥१२॥  
 द्विपादकोयं असुचि, दुग्गन्धो परिहीरति ।  
 नानाकुणपपरिपूरो, विस्सवन्तो ततो ततो ॥१३॥  
 एतादिसेन कायेन, यो मञ्जे उण्णमेतवे ।  
 परं वा अवजानेय्य, किमञ्जत्र अदस्सनाति ॥१४॥

विजयसुत्तं निट्ठितं ।

## १२—मुनि सुत्तं

सन्थवातो भयं जातं, निकेता जायते रजो ।  
 अनिकेतमसन्थवं, एतं वे मुनिदस्सनं ॥१॥  
 यो जातमुच्छिज्ज न रोपयेय्य, जायन्तमस्स नानुप्पवेच्छे ।  
 तमाहु एकं मुनिनं चरन्तं, अहक्खि सो सन्तिपदं महेसि ॥२॥  
 संखाय वत्थूनि पहाय बीजं, सिनेहमस्स नानुप्पवेच्छे ।  
 स वे मुनी जातिखयन्तदस्सी, तक्कं पहाय न उपेति संखं ॥३॥  
 अञ्जाय सञ्जानि निवेसनानि, अनिकामयं अञ्जतरम्मि तेसं ।  
 स वे मुनी वीतगेधो अगिद्धो, नायूहति पारगतो हि होति ॥४॥  
 सञ्जाभिभुं सञ्जविटुं सुमेधं, सञ्जेसु धम्मेषु अनूपलित्तं ।  
 सञ्जजहं तण्हक्खये विमुत्तं, तं वापि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥५॥  
 पञ्चाबलं सीलवतूपपन्नं, समाहितं ज्ञानरतं सतीमं ।  
 संगं पमुत्तं अखिलं अनासवं, तं वापि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥६॥

उसे कुत्ते, सियार, भेड़िये, कीड़े, कौवे, गिद्ध और अन्य जानवर खा जाते हैं ॥ ९ ॥

यहाँ बुद्धिमान् भिक्षु, बुद्ध के वचन को सुनकर, शरीर के स्वभाव को अच्छी तरह समझ लेता है और उसे ज्यों का त्यों देखता है ॥ १० ॥

यह शरीर जैसा है वह भी वैसा है । वह शरीर जैसा है यह भी वैसा है । इसलिए अपने या दूसरे के शरीर की आसक्ति को छोड़ देना चाहिए ॥ ११ ॥

जो प्रज्ञावान् भिक्षु छन्द और राग से रहित है वह अमृत शान्ति अर्थात् अच्युत निर्वाण पद को प्राप्त हो विहरता है ॥ १२ ॥

अपवित्र, नाना गन्दगियों से परिपूर्ण यह द्विपादक शरीर दुर्गन्ध छोड़ता है जो कि एक एक जगह से निकलती है ॥ १३ ॥

इस प्रकार के शरीर के कारण यदि कोई अपने को ऊँचा और दूसरे को नीचा दिखावे तो यह अविद्या के सिवाय और किस कारण हो सकता है ॥ १४ ॥

### विजयसुत्त समाप्त ।



### १२—मुनि सुत्त

[ इस सूत्र में मुनि का परिचय दिया गया है ]

संगति से भय उत्पन्न होता है और गृहस्थी से राग । इसलिए मुनि ने पसन्द किया एकान्त और गृहहीन जीवन को ॥ १ ॥

जो उत्पन्न हुए ( पाप ) को उच्छिन्न कर फिर उसे होने नहीं देता, जो उत्पन्न होते पाप को बढ़ने नहीं देता उस एकान्तचारी शान्ति पद द्रष्टा महर्षि को मुनि कहते हैं ॥ २ ॥

वस्तुस्थिति का बोध कर जिसने ( संसार के ) बीज को नष्ट कर दिया है, जो उसकी वृद्धि के लिए तरावट नहीं पहुँचाता, जो बुरे वितर्कों को त्याग अलौकिक हो गया है, आवागमन से मुक्त उस (महात्मा को) मुनि कहते हैं ॥ ३ ॥

मुनि सभी सांसारिक अवस्थाओं को जान कर उसमें से किसी एक की भी आशा नहीं करता । तृष्णा और लोलुपता से रहित वह मुनि पुण्य और पाप का संचय नहीं करता; क्योंकि वह संसार से परे हो गया है ॥ ४ ॥

जिसने सबको अभिभूत किया है, जान लिया है, जो बुद्धिमान हैं, जो सब बातों में अलिप्त रहता है, जिसने सब को त्यागा है और जो तृष्णा का क्षयकर मुक्त हुआ है, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ५ ॥

प्रज्ञा बल से युक्त, शीलवान्, व्रतधारी, समाधिस्थ, ध्यानरत, स्मृतिमान बन्धन-मुक्त, चैतसिक ऊसरता से रहित, वासना रहित उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ६ ॥

एकं चरन्तं मुनिं अप्पमत्तं, निन्दापसंसासु अवेधमानं ।  
सीहंव सहेसु असन्तसन्तं, वातंवजालम्हि असज्जमानं ।  
पदुमंऽव तोयेन अलिप्पमानं, नेतारमब्बेसमनब्बनेय्यं ।  
तं वापि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥७॥

यो ओगाहने थम्भोरिवाभिजायति, यस्मिं परे धाचा परियन्तं वदन्ति ।  
तं वीतरागं सुसमाहितिन्द्रियं, तं वापि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥८॥

यो वे ठित्तो तसंरव उज्जु, जिगुच्छति कम्मेहि पापकेहि ।  
वीमंसमानो विसमं समं च, तं वाऽपि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥९॥

यो सब्बतत्तो न करोति पापं, दहरो च मज्झो च मुनि यतत्तो ।  
अरोसनेय्यो सो न रोसेति कंचि, तं वापि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥१०॥

यदग्गतो मज्झतो सेसतो वा, पिण्डं लभेथ परदत्तूपजीवी ।  
नालं थुतुं नोपि निपच्चवादी, तं वापि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥११॥

मुनिं चरन्तं विरतं मेथुनस्मा, यो योब्बने नोपनिबज्जते क्वचि ।  
मदप्पमादा विरतं विप्पमुत्तं, तं वापि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥१२॥

अब्बाय लोकं परमत्थदस्सि, ओघं समुदं अतितरिय तादिं ।  
तं छिन्नगन्धं असितं अनासवं, तं वापि धीरा मुनिं वेदयन्ति ॥१३॥

असमा उभो दूरविहारवुत्तिनो,  
गिही दारपोसी अममो च सुब्बतो ।  
परपाणरोधाय गिही असब्बतो,  
निच्चं मुनी रक्खति पाणिनो यतो ॥१४॥

सिखी यथा नीलगीवो विहंगमो,  
हंसस्स नोपेति जवं कुदाचनं ।  
एवं गिही नानुकरोति भिक्खुनो,  
मुनिनो विवित्तस्स वनम्हि झायतो गति ॥१५॥

मुनिसुत्तं निद्धितं ।

एकचारी, अप्रमत्त, निन्दा-प्रशंसा से अविचलित, शब्द से त्रस्त न होने-वाले सिंह की तरह किसी से भी त्रस्त न होनेवाले, जाल में न बझनेवाले वायु की तरह कहीं भी न बझनेवाले, जल से अलस पद्म की तरह कहीं भी लस न होनेवाले, दूसरों को मार्ग दिखानेवाले और दूसरों का अनुयायी न बननेवाले उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ७ ॥

जो सन्तान स्थान के खम्भे की तरह स्थिर है, जिस पर औरों की निन्दा-प्रशंसा का असर नहीं पड़ता, जो वीतराग और संयत-इन्द्रियवाला है, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ८ ॥

जो तसर की तरह ऋजु स्थिर चित्तवाला है, जो पाप कर्मों से परहेज करता है और जो विषमता तथा समता का ख्याल रखता है, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ९ ॥

जो संयमी है और पाप नहीं करता, जो आरम्भ और मध्यम वय में संयत रहता है, जो न स्वयं चिढ़ता है और न दूसरों को चिढ़ाता है, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ १० ॥

जो अग्रभाग, मध्यम भाग या अवशेष भाग से शिक्षा लेता है, जिसकी जीविका दूसरों के दिये पर निर्भर है और जो दायक की निन्दा या प्रशंसा नहीं करता, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ ११ ॥

जो मैथुन से विरक्त हो अकेला विचरण करता है, जो यौवन में भी कहीं आसक्त नहीं होता और मद-प्रमाद से विरक्त और विप्रमुक्त है, उसे ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ १२ ॥

जिसने संसार को जान लिया है, जो परमार्थदर्शी है, जो संसाररूपी बाढ़ और समुद्र को पारकर स्थिर हो गया है, उस छिन्न ग्रन्थिवाले को ज्ञानी लोग मुनि कहते हैं ॥ १३ ॥

निरहङ्कार, सुव्रतधारी, एकान्तवासी, प्रव्रजित और दारपोषी गृही में समानता नहीं। असंयमी गृहस्थ दूसरे जीवों का वध करता है। मुनि नित्य दूसरे प्राणियों की रक्षा करता है ॥ १४ ॥

जिस प्रकार आकाशगामी नीलग्रीवावाला मयूर कभी भी वेग में हंस को नहीं पाता इसी प्रकार गृहस्थ अकेले वन में ध्यान करनेवाले भिक्षु का अनुकरण नहीं कर सकता ॥ १५ ॥

मुनिसुत्त समाप्त ।



## २—चूळवगो

### १३—रतन-सुचं

यानीध भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि व अन्तळिक्खे ।  
सब्बेव भूता सुमना भवन्तु, अथोपि सक्कच्च सुणन्तु भासितं ॥१॥

तस्मा हि भूता निसामेथ सब्बे, मेत्तं करोथ मानुसिया पजाय ।  
दिवा च रत्तो च हरन्ति ये बल्लिं, तस्मा हि ने रक्खथ अप्पमत्ता ॥२॥

यं किञ्चि वित्तं इध वा हुरं वा, सग्गेसु वा यं रतनं पणीतं ।  
न नो समं अत्थि तथागतेन, इदंऽपि बुद्धे रतनं पणीतं ।  
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥३॥

खयं विरागं अमत्तं पणीतं, यदज्झगा सक्क्यमुनी समाहितो ।  
न तेन धम्ममेन समत्थि किञ्चि, इदंऽपि धम्ममे रतनं पणीतं ।  
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥४॥

यं बुद्धसेट्ठो परिवण्णयी सुचिं, समाधिमानन्तरिकञ्जमाहु ।  
समाधिना तेन समो न विज्जति, इदंऽपि धम्ममे रतनं पणीतं ।  
एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥५॥

ये पुग्गला अट्टसत्तं पसत्था, चत्तारि एतानि युगानि होन्ति ।  
ते दक्खिण्येय्या सुगतस्स सावका, एतेसु दिन्नानि महप्फलानि ।  
इदंऽपि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥६॥

ये सुप्पयुत्ता मनसा दळ्हेन, निक्कामिनो गोतमसासनम्हि ।  
ते पत्तिपत्ता अमत्तं विगय्ह, लद्धा सुधा निब्बुतिं भुञ्जमाना ।  
इदंऽपि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥७॥

यथिन्दखिलो पठविं सितो सिया, चतुब्भि वातेहि असम्पक्कम्पियो ।  
तथूपमं सप्पुरिसं वदामि, यो अरियसञ्चानि अवेच्च पस्सति ।  
इदंऽपि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥८॥

अये रियसञ्चानि विभावयन्ति, गंभीरपब्बेन सुदेसितानि ।  
किञ्चापि ते होन्ति भुसप्पमत्ता, न ते भवं अट्टमं आदियन्ति ।  
इदंऽपि संघे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु ॥९॥

## २-चूल वर्ग

### १३-रतनसुत्त

[ जिस समय वेसाली के लोग दुर्मिक्ष-भय, रोग-भय तथा अमनुष्य-भय से पीड़ित थे, उस समय इस सूत्र का पाठ किया गया था । इस सूत्र में बुद्ध, धर्म तथा संघ-इन त्रिरत्नों का गुणानुवाद है । ]

इस समय इस पृथ्वी पर या अन्तरिक्ष में जितने भी भूत उपस्थित हैं वे सभी प्रसन्न हों और हमारे इस कथन को ध्यान से सुनें ॥ १ ॥

सब भूत दत्तदित्त हों और मनुष्य मात्र के प्रति, जिनसे कि वे दिन-रात बलि लेते हैं, मैत्री करें और अप्रमत्त हो उनकी रक्षा करें ॥ २ ॥

इस लोक में या दूसरे लोकों में जो भी सम्पत्ति है और स्वर्गों में जो अनर्घ रत्न हैं, उनमें कोई भी बुद्ध के समान श्रेष्ठ नहीं । बुद्ध में यह भी रत्नत्व है । इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ ३ ॥

( वासना ) क्षीण जिस प्रणीत अमृत ( = निर्वाण ) को शाक्य मुनि ने समाधिस्थ होकर प्राप्त किया था, उस धर्म के तुल्य दूसरा कुछ नहीं । इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ ४ ॥

परम श्रेष्ठ बुद्ध ने उस पवित्र मार्ग समाधि का उपदेश दिया है जिसके बाद ही अनायास फल समाधि की प्राप्ति होती है । उस समाधि के समान दूसरी कोई चीज नहीं । इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ ५ ॥

साधु जनों से प्रशंसित जो आठ...प्रकार के व्यक्ति हैं, उनके चार युग्म होते हैं<sup>१०</sup> । बुद्ध के ये शिष्य दक्षिणा के योग्य हैं । उनको दिये गये दान का फल महान् है । संघमें यह भी उत्तम रत्नत्व है । इस सत्य भाषणसे कल्याण हो ॥ ६ ॥

जो तृष्णारहित हो दृढ़ चित्त से गौतम ( = बुद्ध ) के धर्म में लग गये हैं, वे प्राप्ति को प्राप्त कर अमृत में पैठ अनायास ही विमुक्ति रस का आस्वाद लेते हैं । संघ में यह भी उत्तम रत्नत्व है । इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ ७ ॥

जैसे जमीन में गड़ा इन्द्रखील...चारों ओर की हवा में पड़ कर भी अचल रहता है, उसी तरह ( स्थिर ) रहनेवाले को मैं सत्पुरुष कहता हूँ, जिसने आर्य सत्त्यों...का ज्ञानपूर्वक दर्शन कर लिया है ॥ ८ ॥

गम्भीर-प्रज्ञ बुद्ध द्वारा उपदिष्ट आर्य सत्त्यों<sup>१३</sup> का जिन्होंने दर्शन कर लिया...वे आठवाँ जन्म ग्रहण नहीं करते, चाहे वे ( अभ्यास करने में ) उतने तत्पर भी न हों ॥ ९ ॥

सहावस्स दस्सनसम्पदाय, तयस्सु धम्मा जहिता भवन्ति ।  
 सक्कायदिट्ठि विचिकिच्छितं च, सीलब्धतं वापि यदत्थि किञ्चि ।  
 चतूहपायेहि च विप्पमुत्तो, छ चाभिठानानि अभब्बो कातुं ।  
 इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सञ्चेन सुवत्थि होतु ॥१०॥

किञ्चापि सो कम्मं करोति पापकं, कायेन वाचा उद चेतसा वा ।  
 अभब्बो सो तस्स पटिच्छादाय, अभब्बता दिट्ठपदस्स वुत्ता ।  
 इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सञ्चेन सुवत्थि होतु ॥११॥

वनप्पगुम्बे यथा फुस्सितग्गे, गिम्हान मासे पठमस्मिं गिम्हे ।  
 तथूपमं धम्मवरं अदेसयि, निब्बाणगामिं परमं हिताय ।  
 इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं, एतेन सञ्चेन सुवत्थि होतु ॥१२॥

वरो वरब्बू वरदो वराहरो, अनुत्तरो धम्मवरं अदेसयि ।  
 इदम्पि बुद्धे रतनं पणीतं, एतेन सञ्चेन सुवत्थि होतु ॥१३॥

खीणं पुराणं नवं नत्थि संभवं, विरत्तचित्ता आयतिके भवस्मिं ।  
 ते खीणबीजा अविरुळ्हिछन्दा, निव्वन्ति धीरा यथायं पदीपो ।  
 इदम्पि संघे रतनं पणीतं, एतेन सञ्चेन सुवत्थि होतु ॥१४॥

यानीध भूतानि समागतानि, भुम्मामि वा यानि व अन्तळिक्खे ।  
 तथागतं देवमनुस्सपूजितं, बुद्धं नमस्साम सुवत्थि होतु ॥१५॥

यानीध भूतानि समागतानि, भुम्मामि वा यानि व अन्तळिक्खे ।  
 तथागतं देवमनुस्सपूजितं, धम्मं नमस्साम सुवत्थि होतु ॥१६॥

यानीध भूतानि समागतानि, भुम्मामि वा यानि व अन्तळिक्खे ।  
 तथागतं देवमनुस्सपूजितं, संघं नमस्साम सुवत्थि होतु ॥१७॥

रतनमुत्तं निट्ठितं ।

### १४—आमगन्ध सुत्तं

सामाक्किंगूलक चीनकानि, पत्तप्फलं मूलप्फलं गविप्फलं ।  
 धम्मेन लद्धं सतमरुमाना, न कामकामा अलिकं भणन्ति ॥१॥

दर्शन प्राप्ति के साथ-साथ उसके तीन संयोजन (= बन्धन ) छूट जाते हैं:- सत्काय दृष्टि (= नित्य आत्माका विश्वास), विचिकित्सा (= संशय), शीलव्रत परामर्श (= नाना प्रकार के व्रतों के कर्मकाण्ड से चित्त-शुद्धि की प्राप्ति में विश्वास) । वह चार दुर्गतियों<sup>१५</sup> से मुक्त हो जाता है और छः घोर पापों<sup>१६</sup> का आचरण कभी नहीं कर सकता । यह भी संघ में उत्तम रत्नत्व है । इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ १० ॥

यदि शरीर, वचन अथवा मन द्वारा उससे कोई पाप कर्म हो भी जाय तो वह परमपद द्रष्टा (उसे) नहीं छिपाता । (बुद्ध ने) यह बताया है कि निर्वाणदर्शी को कुछ रहस्य नहीं रहता । संघ में यह भी उत्तम रत्नत्व है । इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ ११ ॥

वसन्त ऋतु के आरम्भ में वन-प्रगुल्म प्रफुल्लित हो ( जैसा सुन्दर हांता है ) वैसा ही ( सुन्दर ) श्रेष्ठ धर्म का उपदेश ( बुद्ध ने ) दिया । यह निर्वाण को प्राप्त कराता है और परम हितकारी है ॥ १२ ॥

श्रेष्ठ निर्वाण के दाता, श्रेष्ठ धर्म के दाता, श्रेष्ठ मार्ग के निर्देशक, श्रेष्ठ लोकोत्तर बुद्ध ने उत्तम उपदेश दिया है । बुद्ध में यह भी उत्तम रत्नत्व है । इस सत्य भाषण से कल्याण हो १३

सारा पुराण कर्म क्षीण हो गया । नया कर्म संचय नहीं होता । उनका (= अर्हत् का) चित्त पुनर्जन्म से विरक्त हो गया है । क्षीण बीज, तृष्णा से सर्वथा मुक्त वे, इस प्रतीप की तरह, निर्वाण को प्राप्त होते हैं । यह भी संघ में उत्तम रत्नत्व है । इस सत्य भाषण से कल्याण हो ॥ १४ ॥

यहाँ हम जितने भी जीव उपस्थित हैं, पृथ्वी पर रहनेवाले अथवा अन्तरिक्ष में देव-मनुष्य वन्धु बुद्ध को नमस्कार करते हैं । कल्याण हो ॥ १५ ॥

यहाँ हम जितने भी जीव उपस्थित हैं, पृथ्वी पर रहनेवाले अथवा अन्तरिक्ष में, देव-मनुष्य वन्धु तथागत बुद्ध के धर्म का नमस्कार करते हैं । कल्याण हो ॥ १६ ॥

यहाँ हम जितने भी जीव उपस्थित हैं, पृथ्वी पर रहनेवाले अथवा अन्तरिक्ष में, देव-मनुष्य वन्धु तथागत बुद्ध के संघ को नमस्कार करते हैं । कल्याण हो ॥ १७ ॥

**रत्नसुत्त समाप्त ।**

### १४—आमगन्ध सुत्त

[ यह उपदेश आमगन्ध नामक ब्राह्मण को दिया गया था । इस सूत्र में 'आमगन्ध' का प्रयोग मछली मांस तथा पाप के अर्थों में हुआ है । यहाँ इस बात पर जोर दिया गया है कि मछली-मांस के वर्जन मात्र से 'आमगन्ध' का वर्जन नहीं होता अपितु इस के लिए सभी पापों को त्यागना चाहिए । इस सम्बन्ध में कश्यप बुद्ध द्वारा तिष्य तपस्वी को दीशित उपदेश भगवान् ने आमगन्ध ब्राह्मण का सुनाये हैं—]

**तिष्य तपस्वी:-**

धर्म पूर्वक प्राप्त साँवा, चिंगुलक (= एक धान्य विशेष), चीनक (= चीना), साग-सब्जी, कन्द-मूल तथा लता-फल (= सिंघाड़ा जैसा फल) को खाने वाले, संत पुरुष कामनाओं के निमित्त असत्य नहीं बोलते ॥ १ ॥

यदहमनो सुकतं सुनिवृत्तं, परेहि दिन्नं पयतं पणीतं ।  
 सालीनमन्नं परिभुञ्जमानो, सो भुञ्जति कस्सप आमगन्धं ॥२॥  
 न आमगन्धो मम कप्पतीति, इच्चैव त्वं भाससि ब्रह्मबन्धु ।  
 सालीनमन्नं परिभुञ्जमानो, सकुन्तमंसेहि सुसंखतेहि ।

पुच्छामि तं कस्सप एतमत्थं, कथप्पकारो तव आमगन्धो ॥३॥  
 पाणातिपातो वध-छेद-बन्धनं, थेय्यं मुसावादो निकतिवच्चनानि च ।  
 अञ्जेनकुत्तं परदारसेवना, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥४॥

ये इध कामेसु असञ्जता जना, रसेसु गिद्धा असुचीक मिसिस्ता ।  
 नत्थीकदिट्ठि विसमा दुरन्नया, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥५॥

ये लूखसा दारुणा पिट्ठिमंसिका, मित्तहुनो निक्करुणातिमानिनो ।  
 अदानसीला न च देन्ति कस्सचि, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥६॥

कोधो मदो थम्भो पञ्चुट्ठापना च, माया ङसूया भस्ससमुस्सयो च ।  
 मानातिमानो च असब्धि सन्थवो, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥७॥

ये पापसीला इणघातसूचका, वोहारकूटा इध पाटिरूपिका ।  
 नराधमा येध करोन्ति किब्बिसं, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥८॥

ये इध पाणेसु असञ्जता जना, परेसमादाय विहेसमुय्युता ।  
 दुस्सीललुद्धा फरुसा अनादरा, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥९॥

एतेसु गिद्धा विरुद्धातिपातिनो, निञ्चुय्युता पेच्च तमं वजन्ति ये ।  
 पतन्ति सत्ता निरयं अवंसिरा, एसामगन्धो न हि मंसभोजनं ॥१०॥

न मच्छमंसाननासकत्तं, न नगियं (मुण्डियंजटा) जल्लं खराजिनानि वा ।  
 नागिहुत्तस्सुपसेवना वा, ये वापि लोके अमरा बहू तपा ।

मन्ताहुती यञ्जमुतूपसेवना, सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकल्लं ॥११॥  
 सोतेसु गुत्तो विदितिन्द्रियो चरे, धम्मे ठितो अज्जवमहवे रतो ।

संगातिगो सब्बदुक्खप्पहीनो, न लिप्पती दिट्ठसुतेसु धीरो ॥१२॥  
 इच्चैतमत्थं भगवा पुनप्पुनं, अक्खासि तं वेदयि मन्तपारगू ।

चित्राहि गाथाहि मुनिप्पकासयि, निरामगन्धो असितो दुरन्नयो ॥१३॥  
 सुत्वान बुद्धस्स सुभासितं पदं, निरामगन्धं सब्बदुक्खप्पनूदनं ।  
 नीचमनो वन्दि तथागतस्स, तत्थेव पब्बज्जमरोचयित्थाति ॥१४॥

आमगन्धसुत्तं निवृत्तं ।



कश्यप ! दूसरों द्वारा दिया गया उत्तम चावल का स्वादिष्ट भोजन ग्रहण करनेवाला 'आमगन्ध' का सेवन करता है ॥ २ ॥

ब्रह्मबन्धु ! आप पक्षिमांस सहित उत्तम चावल का अन्न लेते हैं । फिर भी आप कहते हैं कि 'आमगन्ध' आप से त्याज्य है । कश्यप ! मैं आप से पूछता हूँ कि भला, आप का 'आमगन्ध' क्या है ॥ ३ ॥

**कश्यप बुद्धः—**

जीव हिंसा, वध, बन्धन, चोरी, असत्य, घोखाबाजी, ठगी, निरर्थक अध्ययन तथा परस्त्री-गमन—यह सब है आमगन्ध न कि मांसाहार ॥ ४ ॥

जो लोग विषय भोग में संयम नहीं रखते, रसास्वादन में लिप्त हैं, पापी हैं और विषम, टेढ़ी नास्तिक दृष्टिवाले हैं—यह है आमगन्ध न कि मांसाहार ॥ ५ ॥

जो कठोर, दारुण, चुगलखोर, द्रोही, निर्दयी, अतिमानी तथा अदानशील हैं और किसी को कुछ नहीं देते—यह है आमगन्ध न कि मांसाहार ॥ ६ ॥

क्रोध, मद, द्विर्द्वैत, विरोध, माया, ईर्ष्या, आत्म-प्रशंसा, मानातिमान और बुरों की संगति—यह है आमगन्ध न कि मांसाहार ॥ ७ ॥

जो पापी, ऋण आदा न करनेवाले, चुगलखोर, कपट, ढोंगी नराधम बुरे कर्म करते हैं—यह है आमगन्ध न कि मांसाहार ॥ ८ ॥

जो लोग प्राणियों के प्रति संयम नहीं रखते, दूसरों की वस्तु लेकर उन्हें परेशान करने पर तुले हुए हैं और दुराचारी, क्रूर, कठोर तथा अदानशील हैं—यह है आमगन्ध न कि मांस भोजन ॥ ९ ॥

जो लोग लालच या विरोध-भाव से जीव हिंसा पर तुले हुए हैं, वे परलोक में अन्धकार को प्राप्त होते हैं और उलटे सिर नरक में पड़ते हैं—यह है आमगन्ध न कि मांसाहार ॥ १० ॥

न तो मछली-मांस न खाना, न नंगा रहना, न मुंडन करना, न जटा धारण करना, न धूल पोतना, न कर्कश मृग-चर्म पहनना, न अग्नि-परिचर्या, न अमरत्व की आकांक्षा से अनेक प्रकार के और तप करना, न मंत्र पाठ करना, न हवन करना, न यज्ञ करना और न ऋतुओं का उपसेवन करना ही संशय युक्त मनुष्य को शुद्ध कर सकते हैं ॥ ११ ॥

जो इन्द्रियों को वश में कर विजितेन्द्रिय हो गया है और जिस ने, धर्म में स्थित हो, ऋजुता और मृदुता में रत हो, तृष्णा से परे हो, सब दुःख का नाश किया है वह रूपों तथा शब्दों में आसक्त नहीं होता ॥ १२ ॥

इस बात को भगवान् ने बारम्बार कहा और वेदपारङ्गत ब्राह्मण ने इसे समझ लिया । तृष्णा रहित, अनासक्त और अनुसरण करने में दुष्कर मुनि ने सुन्दर गाथाओं में यह बात प्रकट की ॥ १३ ॥

तृष्णा रहित, सर्व दुःख निवारक बुद्ध के सदुपदेश को सुनकर ब्राह्मण ने नष्ट भाव से उनकी वन्दना की और वहीं पर प्रव्रज्या की याचना की ॥ १४ ॥

## १५--हिरि-सुत्तं

हिरिं तरन्तं विजिगुच्छमानं, सखाहमस्मि इति भासमानं ।  
सय्हानि कम्मनि अनादियन्तं, नेसो ममन्ति इति नं विजब्बा ॥१॥

अनन्वयं पियं वाचं, यो मित्तेसु पकुब्बति ।  
अकरोन्तं भासमानं, परिजानन्ति पण्डिता ॥२॥

न सो मित्तो यो सदा अप्पमत्तो, भेदासंकी रंधमेवानुपस्सी ।  
यस्मिं च सेति उरसीव पुत्तो, स वे मित्तो यो परेहि अभेज्जो ॥३॥

पामुज्जकरणं ठानं, पसंसावहनं सुखं ।  
फलानिसंसो भावेति, वहन्तो पोरिसं धुरं ॥४॥

पविवेकरसं पीत्वा, रसं उपसमस्स च ।  
निहरो होति निग्गपो, धम्मपीतिरसं पिवं'ति ॥५॥

हिरिसुत्तं निवृत्तं ।

## १६--मशमङ्गल-सुत्तं

एवं मे सुत्तं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथ-  
पिण्डिकस्स आरामे । अथ खो अब्बतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया  
अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि,  
उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्टासि । एकमन्तं ठिता खो  
सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

बहू देवा मनुस्सा च, मङ्गलानि अचिन्तयुं ।  
आक्कम्माना सोत्थानं, ब्रूहि मङ्गलमुत्तमं ॥१॥

असेवना च बालानं, पण्डितानं च सेवना ।  
पूजा च पूजनीयानं, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ २ ॥

पतिरूपदेसवासो च, पुब्बे च कतपुब्बता ।  
अत्तसम्भापणिधि च, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ३ ॥

### १५—हरि सुत्त

( इस सूत्र में ये तीन बातें दिखाई गई हैं: किस प्रकार के मित्र की संगति करनी चाहिए, मनुष्य का क्या उद्देश्य होना चाहिए और सब रसों में कौन सा रस उत्तम है—)

निर्लज्ज व्यवहार करनेवाला, ( भीतर ही भीतर ) घृणा का भाव रखनेवाला, सामर्थ्य की बात भी न करने वाला जो अपने को मित्र बताता है उसके विषय में समझना चाहिए कि 'यह मेरा ( मित्र ) नहीं है' ॥ १ ॥

जो मित्रों से बेकार मीठी मीठी बातें बोलता है और अपनी बात को नहीं करता पण्डित लोग उसकी निन्दा करते हैं ॥ २ ॥

जो ऊपर से मित्रता दिखाने की चेष्टा करता है ( किन्तु ) अनवन की सदा शंका करता है और छिद्रान्वेषी है वह मित्र नहीं । मित्र तो वह है जो (माता की) गोद में सोये पुत्र की तरह ( विश्वास और प्रेम करनेवाला ) हो और जिससे कोई फूट न डाल सके ॥ ३ ॥

मनुष्योचित कार्य का वहन करनेवाला शुभ परिणाम की इच्छा करके पराक्रम से वृद्धि करता है जो कि प्रसन्नता, प्रशंसा और सुख देनेवाला है ॥ ४ ॥

एकान्तवास, चित्तशान्ति और धर्म-प्रीति का रस पान कर मनुष्य निडर और निष्पाप हो जाता है ॥ ५ ॥ हरिसुत्त समाप्त ।

### १६—महामङ्गल सुत्त

( इस सूत्र में मांगलिक बातें बताई गई हैं—)

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् श्रावस्तो में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे । उस समय एक देवता रातके भिनसारे अपनी दीप्ति से समस्त जेतवन को आलोकित कर जहाँ भगवान् थे वहाँ आया । आकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़ा हो वह गाथा में भगवान् से बोला:—

कल्याण की आकांक्षा करते हुए बहुत देवताओं और मनुष्यों ने मंगल के दिव्य में विचार किया है । आप बतावें उत्तम मङ्गल क्या है ? ॥ १ ॥

बुद्ध :—

मूर्खों की संगति न करना, पण्डितों की संगति करना और पूज्यों की पूजा करना—यह उत्तम मङ्गल है ॥ २ ॥

अनुकूल स्थानों में निवास करना, पूर्व जन्म के संचित पुण्य का होना और अपने को सन्मार्ग पर लगाना—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ३ ॥

बाहुसङ्घं च सिप्यं च, विनयो च सुसिक्खितो ।  
 सुभासिता च या वाचा, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ४ ॥  
 मातापितु उपट्ठानं, पुत्तदारस्स सङ्गहो ।  
 अनाकुला च कम्मन्ता, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ५ ॥  
 दानं च धम्मचरिया च, व्यातकानं च सङ्गहो ।  
 अनवज्जानि कम्मनि, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ६ ॥  
 आरति विरति पापा, मज्जपाना च संयमो ।  
 अप्पमादो च धम्मेसु, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ७ ॥  
 गारवो च निवातो च, सन्तुट्ठि च कतब्बुता ।  
 कालेन धम्मसवणं, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ८ ॥  
 खन्ति च सोवचस्सता, समणानं च दस्सनं ।  
 कालेन धम्मसाकच्छा, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ९ ॥  
 तपो च ब्रह्मचरियं च, अरियसञ्चान दस्सनं ।  
 निब्बाणसच्छिकिरिया च, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ १० ॥  
 फुट्ठस्स लोकधम्मेहि, चित्तं यस्स न कम्पति ।  
 असोकं विरजं खेमं, एतं मङ्गलमुत्तमं ॥ ११ ॥  
 एतादिसानि कत्वान, सब्बत्थमपराजिता ।  
 सब्बत्थ सोत्थि गच्छन्ति, तं तेसं मङ्गलमुत्तमन्ति ॥ १२ ॥  
 महामङ्गलमुत्तं निट्ठितं ।

### १७—सूचिलोम-सुत्तं

एवं मे सुत्तं । एकं समयं भगवा गयायं विहरति टंकितमब्बे  
 सूचिलोमस्स यक्खस्स भवने । तेन खो पन समयेन खरो च यक्खो  
 सूचिलोमो च यक्खो भगवतो अविदूरे अतिक्कमन्ति । अथ खो खरो च  
 यक्खो सूचिलोमं यक्खं एतदवोच—एसो समणोति । नेसो समणो,  
 समणको एसो; याव जानामि यदि वा सो समणो, यदि वा समणकोति ।  
 अथ खो सूचिलोमो यक्खो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा  
 भगवतो कायं उपनामेसि । अथ खो भगवा कायं अपनामेसि । अथ  
 खो सूचिलोमो यक्खो भगवन्तं एतदवोच—भायसि मं समणाति ? न

बहुश्रुत होना, शिल्प सीखना, शिष्ट होना, सुशिक्षित होना और सुभाषण करना—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ४ ॥

माता पिता की सेवा करना, पुत्र-स्त्री का पालन करना और गड़बड़ का काम न करना—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ५ ॥

दान देना, धर्माचरण करना, बन्धु-बान्धवों का आदर-सत्कार करना और निर्दोष कार्य करना—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ६ ॥

मन, शरीर तथा वचन से पापों की त्यागना, मद्यपान न करना और धार्मिक कार्यों में तत्पर रहना—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ७ ॥

गौरव करना, नम्र होना, सन्तुष्ट रहना, कृतज्ञ होना और उचित समय पर धर्म-श्रवण करना—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ८ ॥

क्षमाशील होना, आज्ञाकारी होना, श्रमणों का दर्शन करना और उचित समय पर धार्मिक चर्चा करना—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ९ ॥

तप, ब्रह्मचर्य का पालन, आर्य-सत्त्वों का दर्शन और निर्वाण का साक्षात्कार—यह उत्तम मङ्गल है ॥ १० ॥

जिसका चित्त <sup>१०</sup>लोकधर्म से विचलित नहीं होता वह निःशोक, निर्मल तथा निर्भय रहता है—यह उत्तम मङ्गल है ॥ ११ ॥

इस प्रकार के कर्म करके सर्वत्र अपराजित हो (लोक) कल्याण को प्राप्त करते हैं—यह उनके लिए (देवताओं और मनुष्यों के लिए) उत्तम मङ्गल है ॥ १२ ॥

महामङ्गलसुत्त समाप्त ।



### १७—शूचिलोम सुत्त

(तृष्णा ही सभी वासनाओं का मूल है—)

ऐसा मैंने सुना:—

एक समय भगवान् गया में, टंकितमञ्च में, शूचिलोम यक्ष के भवन में विहार करते थे। उस समय खर यक्ष तथा शूचिलोम यक्ष थोड़ी ही दूर पर जा रहे थे। तब खर यक्ष ने शूचिलोम यक्ष से यह कहा—“यह कोई साधु है।”

शूचिलोम—“यह साधु नहीं, नकली साधु है। अच्छा, तो देखें कि वह कौन है।”

तब शूचिलोम यक्ष जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान् के शरीर से टकराने की कोशिश की। भगवान् हट गये। तब शूचिलोम यक्ष ने भगवान् से कहा—“क्या श्रमण तुम मुझसे डरते हो?”

ख्याहं तं आवुसो भायामि, अपि च ते सम्फस्सो पापकोति । पब्बं तं समण पुच्छिस्सामि, सचे मे न व्याकरिस्ससि, चित्तं वा ते खिपिस्सामि, हृदयं वा ते फालेस्सामि, पादेसु वा गहेत्वा पारगङ्गाय खिपिस्सामीति । न ख्याहं तं आवुसो पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समण-ब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय्य, हृदयं वा फालेय्य, पादेसु वा गहेत्वा पारगङ्गाय खिपेय्य । अपि च त्वं आवुसो पुच्छ यदाकङ्कसीति । अथ खो सूचिलोमो यक्खो भगवन्तं गाथाय अङ्गभासि—

रागो च दोसो च कुतो निदाना ? अरती रती लोमहंसो कुतोजा ?  
कुतो समुट्ठाय मनोवितक्का, कुमारका धंकमिवोस्सजन्ति ॥ १ ॥  
रागो च दोसो च इतो निदाना, अरती रती लोमहंसो इतोजा ।  
इतो समुट्ठाय मनोवितक्का, कुमारका धंकमिवोस्सजन्ति ॥ २ ॥

स्नेहजा अत्तसम्भूता, निग्रोधस्सेव खन्धजा ।  
पुथु विसत्ता कामेसु, मालुवा वितता वने ॥ ३ ॥

ये नं पजानन्ति यतो निदानं, ते नं विनोदेन्ति सुणोहि यक्ख !  
ते दुत्तरं ओघमिमं तरन्ति, अतिण्णपुब्बं अपुनब्भवायाति ॥ ४ ॥

सूचिलोमसुत्तं निद्वितं ।

### १८—धम्मचरिय-सुत्तं

धम्मचरियं ब्रह्मचरियं, एतदाहु वसुत्तमं ।  
पब्बजितोपि चे होति, अगारस्मानगारियं ॥ १ ॥  
सो चे मुखरजातिको, विहेसाभिरतो मगो ।  
जीवितं तस्स पापियो, रजं वड्ढेति अत्तनो ॥ २ ॥  
कलहाभिरतो भिक्खु, मोहधस्मेन आवटो ।  
अक्खातम्पि न जानाति, धम्मं बुद्धेन देसितं ॥ ३ ॥

बुद्ध—“आयुष्मान् ! मैं तुम से डरता नहीं, बल्कि तुम्हारा स्पर्श बुरा है ।”

शूचिलोम—“श्रमण ! मैं तुम से प्रश्न करूँगा । यदि तुम उसका उत्तर न दे सके, तो मैं तुम्हारे चित्त को विक्षिप्त कर दूँगा, हृदय को चीर दूँगा या पैरों से लेकर गंगा के उस पार फेंक दूँगा ।”

बुद्ध—“आयुष्मान् ! देव, मार, ब्रह्मा और श्रमण-ब्राह्मण सहित लोक में, देव-मनुष्य सहित प्रजा में मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखता जो कि मेरे चित्त को विक्षेप कर सके, मेरे हृदय को चीर सके या पैरों से लेकर गंगा के उस पार फेंक सके । फिर भी आयुष्मान् ! जो चाहो सो पूछो ।”

तब शूचिलोम यक्ष ने गथाओं में भगवान् से कहा:—

राग और द्वेष का उद्गम क्या है ? ( पापों में ) रति, ( पुण्य में ) अरति और भय कैसे उत्पन्न होते हैं ? वे ( पाप ) वितर्क कहाँ से उत्पन्न होते हैं जो कि चित्त को वैसे ही सताते हैं जैसे कौवे को ( पैर में रस्सी बाँध कर ) लड़के ॥ १ ॥

बुद्ध :—

राग और द्वेष यहीं (= अपने भीतर ही ) उत्पन्न होते हैं । रति, अरति और भय यहीं उत्पन्न होते हैं । और यहीं वितर्क भी उत्पन्न होते हैं जो चित्त को उसी तरह सताते हैं जिस तरह कौवे को ( पैर में रस्सी बाँध कर ) लड़के ॥ २ ॥

जिस प्रकार वट वृक्ष के तने से प्ररोह निकल आते हैं उसी प्रकार तृष्णा और आत्म-दृष्टि से वे ( पाप ) उत्पन्न होते हैं । जंगल में फैलनेवाली मालुवा लता की तरह वे विषयों में आसक्त रहते हैं ॥ ३ ॥

यक्ष ! सुनो । जो लोग इस उद्गम को जानते हैं वे उस का अन्त कर देते हैं । वे अतीर्णपूर्व, दुस्तर प्रवाह को पार कर जाते हैं । उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ४ ॥

शूचिलोमसुत्त समाप्त ।

## १८—धम्मचरिय सुत्त

( इस सूत्र में भिक्षुओं के लिए उपदेश हैं । इसमें यह आदेश है कि बुरे भिक्षुओं को संघ से निकाल कर अच्छे भिक्षुओं को निर्वाण के लिए प्रयत्न करना चाहिए—)

धार्मिक तथा श्रेष्ठ आचरण ही उत्तम है । जो घर से बेघर हो प्रव्रजित हो कर भी मुँहफट और, पशु की तरह, दूसरों को सतानेवाला है उसका जीवन पापो है । वह अपने मल को बढ़ाता है ॥ १-२ ॥

जो भिक्षु झगड़ालु है और मोह से भरा है, वह बुद्ध के बताये धर्म को समझाने पर भी नहीं समझता ॥ ३ ॥

विहेसं भावित्तानं, अविज्जाय पुरस्खतो ।  
सङ्किलेसं न जानाति, मगं निरयगामिनं ॥ ४ ॥

विनिपातं समापन्नो, गब्भा गब्भं तमा तमं ।  
स वे तादिसको भिक्खु, पेच्च दुक्खं निगच्छति ॥ ५ ॥

गूथकूपो यथा अस्स, सम्पुण्णो गणवस्सिको ।  
यो एवरूपो अस्स, दुब्बिसोधो हि सङ्गणो ॥ ६ ॥

यं एवरूपं जानाथ, भिक्खवो गेहनिस्सितं ।  
पापिच्छं पापसङ्कप्पं, पापचारगोचरं ॥ ७ ॥

सब्बे समग्गा हुत्वान, अभिनिब्बिज्जयाथ नं ।  
कारण्डवं निद्धमथ, कसम्बुं अपकस्सथ ॥ ८ ॥

ततो पलापे वाहेथ, अस्समणे समणमानिने ।  
निद्धमित्वान पापिच्छे, पापचारगोचरे ॥ ९ ॥

सुद्धा सुद्धेहि संवासं, कप्पयब्धो पतिस्सता ।  
ततो समग्गा निपका, दुक्खस्सन्तं करिस्सथाति ॥ १० ॥

धम्मचरियसुत्तं निद्वितं ।



### १९—ब्राह्मणधम्मिक-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथ-  
पिण्डिकस्स आरामे । अथ खो संबहुला कोसलका ब्राह्मणमहासाला  
जिण्णा बुद्धा महल्लका अद्धगता वयो अनुप्पत्ता येन भगवा तनुपसङ्कमिसु,  
उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोर्दिसु सम्मोदनीयं कथं साराणीयं  
वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिसुं । एकमन्तं निसिन्ना खो ते ब्राह्मण-  
महासाला भगवन्तं एतदवोचुं—संदिस्सन्ति नु खो भो गोतम एतरहि  
ब्राह्मणा पोराणानं ब्राह्मणधम्मेति । न खो ब्राह्मणा सन्दिस्सन्ति एतरहि  
ब्राह्मणा पोराणानं ब्राह्मणानं ब्राह्मणधम्मेति । साधु नो भवं गोतमो

जो अविद्या के वशीभूत हो सन्तों को सताता है, वह नहीं जानता कि यह पाप नरक को ले जानेवाला मार्ग है ॥ ४ ॥

ऐसा भिक्षु मृत्यु के बाद नरक में पड़ता है और वह एक जन्म से दूसरे जन्म को और अन्धकार से अन्धकार को प्राप्त हो परलोक में दुःख भोगता है ॥ ५ ॥

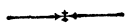
ऐसे पापी मनुष्य को शुद्ध करना वैसा ही कठिन है जैसा कि भरे हुए कई वर्ष पुराने गूथ-कूप (= सड़ास ) को ॥ ६ ॥

भिक्षुओ ! पापी इच्छा, पापी विचार, पापी आचार और पापी संगतिवाले किसी को जानो तो सब मिल कर उसे निकाल दो । कचरे की तरह उसे दूर कर दो । कूड़े की तरह उसे हटा दो ॥ ७-८ ॥

पापी इच्छा, पापी आचार और पापी संगति वाले को निकालने के बाद उन तुच्छों को बाहर कर दो जो अश्रमण हो श्रमण-वेष धारण करते हैं ॥ ९ ॥

जागरूक हो शुद्ध पुरुष शुद्ध पुरुषों की संगति करें । इस प्रकार बुद्धिमान् मेल से रह कर दुःख का अन्त कर सकेंगे ॥ १० ॥

**धम्मचरियसुत्त समाप्त ।**



### १९—ब्राह्मणधम्मिक सुत्त

( बहुत से धनीमानी ब्राह्मण भगवान् के पास जाकर पुराने ब्राह्मणों की चर्या के विषय में पूछते हैं । भगवान् इस का सुन्दर वर्णन करते हैं और यह दिखाते हैं कि लोभ में पड़कर ब्राह्मणों ने किस प्रकार मंत्र रच डाले और यज्ञों में हिंसा किस प्रकार आरम्भ हुई । मनुष्य की अत्यन्तोपयोगी गौ की उपमा माता से दी गई है । उपदेश के अन्त में सभी ब्राह्मण भगवान् के अनुयायी बन जाते हैं—)

**ऐसा मैंने सुना:—**

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे । उस समय कोशलवासी धनी, जीर्ण, वृद्ध अवस्थावाले, बीती जिन्दगीवाले, वयस्क बहुत से ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जा कर भगवान् से कुशल मंगल पूछे । कुशल मंगल पूछ कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे उन धनी ब्राह्मणों ने भगवान् से यह कहा:—

“हे गौतम ! पुराने ब्राह्मणों की चर्या के अनुसार चलनेवाले ब्राह्मण इस समय दिखाई देते हैं ?”

बुद्ध:—“ब्राह्मणो ! पुराने ब्राह्मणों की चर्या के अनुसार चलनेवाले ब्राह्मण इस समय दिखाई नहीं देते ।”

पोराणानं ब्राह्मणधम्मं भासतु, सचे भो गोतमस्स अगरुति । तेन हि ब्राह्मणा सुणाथ, साधुकं मानसि करोथ, भासिस्सामीति । एवं भो'ति खो ते ब्राह्मणमहासाला भगवतो पञ्चस्सोसुं । भगवा एतदवोच—

इसयो पुब्बका आसुं, सञ्जतत्ता तपस्सिनो ।  
 पञ्चकामगुणे हित्वा, अत्तदत्थमचारिसुं ॥ १ ॥  
 न पसू ब्राह्मणानासुं, न हिरव्वं न धानियं ।  
 सज्झायधनधञ्जासुं, ब्रह्मं निधिमपालयुं ॥ २ ॥  
 यं नेसं भतकं आसि, द्वारभत्तं उपट्ठितं ।  
 सद्वापकतमेसानं, दातवे तदमञ्जिसुं ॥ ३ ॥  
 नानारत्तेहि वत्थेहि, सयनेहावसथेहि च ।  
 फीता जनपदा रट्ठा, ते नमस्सिसु ब्राह्मणे ॥ ४ ॥  
 अवज्झा ब्राह्मणा आसुं, अजेय्या धम्मरक्खिता ।  
 न ते कोचि निवारेसि, कुलद्वारेसु सञ्जसो ॥ ५ ॥  
 अट्ठचत्तारीसं वस्सानि, ( कोमार ) ब्रह्मचरियं चरिसु ते ।  
 विज्जाचरणपरियेट्ठिं, अचरुं ब्राह्मणा पुरे ॥ ६ ॥  
 न ब्राह्मणा अब्बमगसु, नपि भरियं किणिसुं ते ।  
 संपियेनेव संवासं, संगन्त्वा समरोचयुं ॥ ७ ॥  
 अब्बत्र तम्हा समया, उत्तवेरमणिं पति ।  
 अन्तरा मेथुनं धम्मं, नास्सु गच्छन्ति ब्राह्मणा ॥ ८ ॥  
 ब्रह्मचरियं च सीलं च, अज्जवं मह्वं तपं ।  
 सोरच्चं अविहिसं च, खन्ति चापि अवण्णयुं ॥ ९ ॥  
 यो नेसं परमो आसि, ब्रह्मा दल्हपरक्कमो ।  
 स वापि मेथुनं धम्मं, सुपिनन्तेन नागमा ॥ १० ॥  
 तस्स वत्तमनुसिक्खन्ता, इधेके विञ्जुजातिका ।  
 ब्रह्मचरियं च सीलं च, खन्ति चापि अवण्णयुं ॥ ११ ॥  
 तण्डुलं सयनं वत्थं, सप्पितेलं च याचिय ।  
 धम्मेन समुदानेत्वा, ततो यब्बमकप्पयुं ।  
 उपट्ठितस्मिं यब्बस्मिं, नास्सु गावो हनिसु ते ॥ १२ ॥  
 यथा माता पिता माता, अञ्जे वापि च वातका ।  
 गावो नो परमा मित्ता, यासु जायन्ति ओसधा ॥ १३ ॥

ब्राह्मणः—“अच्छा हो कि आप गौतम हमें पुराने ब्राह्मणों की चर्या को बतावें, यदि आप गौतम को कष्ट न हो ।”

बुद्धः—“ तो ब्राह्मणो ! सुनो, अच्छी तरह मन में धारण करो, कहूँगा ।”

“अच्छा जी,” ( कह ) उन धनी ब्राह्मणों ने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् ने कहाः—

पुराने ऋषि संयमी और तपस्वी थे । वे पाँच प्रकार के विषय-भोगों को छोड़ कर आत्मोन्नति के लिए आचरण करते थे ॥ १ ॥

ब्राह्मणों के पास न पशु होते थे, न हिरण्य तथा धान्य । स्वाध्याय ही उनका धन-धान्य था और वे ( इस ) श्रेष्ठ निधि की रक्षा करते थे ॥ २ ॥

उनके लिए जो भोजन श्रद्धा से तैयार कर द्वार पर रखा जाता था, खोजने पर उसे ( उन को ) देने योग्य समझते थे ॥ ३ ॥

समृद्ध जनपदों तथा राष्ट्रों के लोग अपने प्रकार के विचित्र वस्त्रों, शयनों और निवासस्थानों से उनकी पूजा करते थे ॥ ४ ॥

ब्राह्मण निर्दोषी, अजेय और धर्म से रक्षित थे । कुल-द्वारों पर कभी कोई उनको रोकता नहीं था ॥ ५ ॥

पुराने ब्राह्मण अड़तालीस वर्ष तक बाल ब्रह्मचारी रहते थे और विद्या तथा आचरण की गवेषणा में विचरण करते थे ॥ ६ ॥

ब्रह्मण न पर स्त्रियों के पास जाते थे और न स्त्रियों को खरीदते ही थे । वे परस्पर प्रेमवाली से सहवास करना पसन्द करते थे ॥ ७ ॥

ऋतु समय को छोड़ बीच के निषिद्ध किसी समय में वे मैथुन-धर्म नहीं करते थे ॥ ८ ॥

वे ब्रह्मचर्य, शील, ऋजुता, मृदुता, तप, सौजन्य, अहिंसा तथा क्षमा की प्रशंसा करते थे ॥ ९ ॥

उनमें श्रेष्ठ, दृढ़, और पराक्रमी ब्राह्मण ( जो ब्रह्मा कहलाता था ) स्वप्न में भी मैथुन नहीं करता था ॥ १० ॥

उसके आचरण का अनुसरण करनेवाले कुछ विश लोग ब्रह्मचर्य, शील और क्षमा की प्रशंसा करते थे ॥ ११ ॥

धार्मिक रीति से वे चावल, शयन, वस्त्र, घी, तथा तेल माँग लाकर यज्ञ करते थे । यज्ञ के उपस्थित होने पर वे गौवों का वध नहीं करते थे ॥ १२ ॥

माता, पिता, भाई या दूसरे बन्धुओं की तरह गौवें भी हमारी परम मित्र हैं जिनसे कि औषधियाँ उत्पन्न होती हैं ॥ १३ ॥

अन्नदा बलदा चेता, वण्णदा सुखदा तथा ।  
 एतमत्थवसं वत्वा, नास्सु गावो हर्निस्सु ते ॥ १४ ॥  
 सुखुमाला महाकाया, वण्णवन्तो यसस्सिनो ।  
 ब्राह्मणा सेहि धम्मोहि, किञ्चाकिञ्चेसु उस्सुका ।  
 याव लोके अवत्तिस्सु, सुखमेधित्थऽयं पजा ॥ १५ ॥  
 तेसं आसि विपल्लासो, दिस्वान अणुतो अणुं ।  
 राजिनो च विद्याकारं, नारियो समलंकता ॥ १६ ॥  
 रथे चाजब्बसंयुत्ते, सुकते चित्तसिब्बने ।  
 निवेसने निवेसे च, विभत्ते भागसो मिते ॥ १७ ॥  
 गोमण्डलपरिब्बूळ्हं; नारीवरगणायुतं ।  
 उळारं मानुसं भोगं, अभिज्झायिस्सु ब्राह्मणा ॥ १८ ॥  
 ते तत्थ मन्ते गन्थेत्वा, ओक्काकं तदुपागमुं ।  
 पट्टतधनधब्बोसि, ( यजस्सु बहु ते वित्तं ) यजस्सु बहु ते धनं ॥ १९ ॥  
 ततो च राजा सब्बत्तो, ब्राह्मणेहि रथेसभो ।  
 अस्समेधं पुरिसमेधं, ( सम्मापासं ) वाजपेय्यं निरग्गळं ।  
 एते यागे यजित्वान, ब्राह्मणानं अदा धनं ॥ २० ॥  
 गावो सयनं च वत्थं च, नारियो समलङ्कता ।  
 रथे चाजब्बसंयुत्ते, सुकते चित्तसिब्बने ॥ २१ ॥  
 निवेसनानि रम्मानी, सुविभत्तानि भागसो ।  
 नानाधब्बस्स पूरेत्वा, ब्राह्मणानं अदा धनं ॥ २२ ॥  
 ते च तत्थ धनं लद्धा, सन्निधिं समरोचयुं ।  
 तेसं इच्छावतिण्णानं, भिय्यो तण्हा पवड्ढथ ।  
 ते तत्थ मन्ते गन्थेत्वा, ओक्काकं पुनुमुपागमुं ॥ २३ ॥  
 यथा आपो च पठवी, हिरब्बं धनधानियं ।  
 एवं गावो मनुस्सानं, परिक्खारो सो हि पाणिनं ।  
 यजस्सु बहु ते वित्तं, यजस्सु बहु ते धनं ॥ २४ ॥  
 ततो च राजा सब्बत्तो, ब्राह्मणेहि रथेसभो ।  
 नेकसतसहस्सियो गावो, अब्बे अघातयि ॥ २५ ॥  
 न पादा न विसाणेन, नास्सु हिंसन्ति केनचि ।  
 गावो एळकसमाना, सोरता कुम्भदूहना ।  
 ता विसाणे गहेत्वान, राजा सत्थेन घातयि ॥ २६ ॥  
 ततो च देवा पितरो, इन्दो असुररक्खसा ।  
 अधम्मो इति पक्कन्दुं, यं सत्थं निपती गवे ॥ २७ ॥

ये अन्न, बल, वर्ण, तथा सुख देने वाली हैं । इस बात को जानकर वे गौवों का वध नहीं करते थे ॥ १४ ॥

कोमल, विशालकाय, सुन्दर तथा यशस्वी ब्राह्मण इन धर्मों से युक्त हो कर्तव्याकर्तव्य में जब तक तत्पर रहते थे (तब तक) यह प्रजा सुखी रही ॥ १५ ॥

धीरे धीरे राजा की सम्पत्ति, समलंकृत स्त्रियों, अच्छे अच्छे घोड़े जुते सुन्दर बेल-बूटेदार रथों और कमरेवाली कोठियों तथा भवनों को देखकर उनका मन विचलित हुआ ॥ १६-१७ ॥

वे ब्राह्मण गौ-मण्डली से घिरे और सुन्दर नारियों से युक्त, विपुल, मानुषिक सम्पत्ति का लोभ करने लगे ॥ १८ ॥

तब वे मन्त्र रचकर इक्ष्वाकु के पास जाकर बोले—“तू बहुत धन-धान्य वाला है, यज्ञ कर । तेरे पास बहुत सम्पत्ति तथा धन है, यज्ञ कर” ॥ १९ ॥

ब्राह्मणों की बातों में आकर रथपति राजा ने अश्वमेध, पुरुषमेध, सम्मापास, वाजपेय, निर्गल—इन यज्ञों को कर ब्राह्मणों को धन दिया ॥ २० ॥

गौवों, शय्या, वस्त्र, समलंकृत स्त्रियाँ, उत्तम घोड़े जुते सुसजित बेलबूटेदार रथ और धन-धान्य भरे हुए भव्य-भवन उन ब्राह्मणों को धन के रूप में दे दिये ॥ २१-२२ ॥

धन मिलने पर उन्होंने उसे संग्रह करना पसन्द किया । इस प्रकार लोभ में पड़े उनकी तृष्णा बहुत ही बढ़ गई । तब वे मन्त्र रचकर फिर इक्ष्वाकु के पास गये ॥ २३ ॥

जिस प्रकार पानी, पृथ्वी, हिरण्य, धन-धान्य हैं, उसी प्रकार मनुष्यों के लिए गायें हैं । वे प्राणियों की उपभोग वस्तु हैं । तेरे पास बहुत सम्पत्ति है, यज्ञ कर । तेरे पास बहुत धन है, यज्ञ कर ॥ २४ ॥

उन ब्राह्मणों की बातों में आकर रथपति राजा ने यज्ञ में लाखों गौवों का वध किया ॥ २५ ॥

न पाद से, न सींग से, न किसी (दूसरे अंग) से गायें हिंसा करती हैं । भेड़ जैसी प्रिय गायें घड़े-भर दूध देनेवाली हैं । सींग से पकड़कर राजा ने शस्त्र से उनका वध किया ॥ २६ ॥

देव, पितर, इन्द्र असुर और राक्षस चिल्ला उठे, “हाय ! अधर्म हुआ । जो गौ पर शस्त्र पड़ा ॥ २७ ॥

तयो रोगा पुरे आसुं, इच्छा अनसन जरा ।  
 पसूनं च समारम्भा, अट्टानवुतिमागसुं ॥ २८ ॥  
 एसो अधम्मो दण्डानं, ओक्कन्तो पुराणो अहु ।  
 अदूसिकायो हव्वन्ति, धम्मा धंसेन्ति याजका ॥ २९ ॥  
 एवमेसो अनुधम्मो, पोराणो विब्बुगरहितो ।  
 यत्थ एदिसकं पस्सति, याजकं गरहती जनो ॥ ३० ॥  
 एवं धम्मे वियापन्ने, विभिन्ना सुहवेस्सिका ।  
 पुथु विभिन्ना खत्तिया, पतिं भरिया अवमब्बथ ॥ ३१ ॥  
 खत्तिया ब्रह्मबन्धू च, ये चब्बे गोत्तरक्खिता ।  
 जातिवादं निरङ्कत्वा, कामानं वसमागमुन्ति ॥ ३२ ॥

एवं वुत्ते ते ब्राह्मणमहासाला भगवन्तं एतद्वोचुं—अभिक्कन्तं भो गोतम...  
 पे०...धम्मो पकासितो, एते मयं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छाम, धम्मं च भिक्खु-  
 संधञ्च । उपासके नो भवं गोतमो धारेतु अज्जतम्मे पाणुपेते सरणं गतेति ।

ब्राह्मणधम्मिकसुत्तं निद्वितं ।

## २०—नागा-सुत्त

यस्मा हि धम्मं पुरिसो विजब्बा, इन्दवं नं देवता पूजयेय्य ।  
 सो पूजितो तस्मिं पसन्नचित्तो, बहुस्सुतो पातुकरोति धम्मं ॥ १ ॥  
 तदट्ठि कत्वान निसम्म धीरो, धम्मानुधमं पटिपज्जमानो ।  
 विब्बू विभावी निपुणो च होति, यो तादिसं भजति अप्पमत्तो ॥ २ ॥  
 खुदं च बालं उपसेवमानो, अनागतत्थं च उसूयकं च ।  
 इधेव धम्मं अविभावयित्वा, अवितिण्णकद्धो मरणं उपेति ॥ ३ ॥  
 यथा नरो आपगं ओतरित्वा, महोदिकं सलिलं सीघसोतं ।  
 सो वुट्ठमानो अनुसोतगामी, किं सो परे सक्खति तारयेतुं ॥ ४ ॥  
 तथेव धम्मं अविभावयित्वा, बहुस्सुतानं अनिसामयत्थं ।  
 सयं अजानं अवितिण्णकद्धो, किं सो परे सक्खति निज्झपेतुं ॥ ५ ॥

पहले केवल तीन रोग थे—इच्छा, भूख और जरा । पशु-वध से अट्टानबे ( रोग ) हो गये ॥ २८ ॥

यह हिंसा रूपी अधर्म पुराने समय से चला आ रहा है । पुरोहित लोग निर्दोषी गायों का वध करते हैं और धर्म से गिरते हैं ॥ २९ ॥

विज्ञों से निन्दित यह नीच कर्म पुराना है । जहाँ लोग इस प्रकार के पुरोहित को देखते हैं ( वहाँ ) उसकी निन्दा करते हैं ॥ ३० ॥

इस प्रकार धर्म से पतित होने पर शूद्रों और वैश्यों में फूट हो गई । क्षत्रिय भी अलग अलग हो गये । स्त्री पति का अपमान करने लगी ॥ ३१ ॥

क्षत्रिय, ब्राह्मण और दूसरे गोत्र रक्षक जातिवाद का नाश कर विषयों के वशीभूत हो गये ॥ ३२ ॥

ऐसा कहने पर उन धनी ब्राह्मणों ने भगवान् से यह कहा—

“आश्चर्य है, हे गौतम ! आश्चर्य है, हे गौतम ! हे गौतम ! जिस प्रकार कोई औंधे को सीधा कर दे, ढँके को खोल दे, भटके को राह बता दे या अन्धकार में तेल-प्रदीप जलावे जिससे कि आँखवाले रूप देख सकें इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया । हम आप गौतम की शरण जाते हैं, धर्म तथा भिक्षु-संघ की भी । आप गौतम हमें आज से जन्मपर्यन्त शरणागत उपासक धारण करें ।”

**ब्राह्मणधम्मिकसुत्त समाप्त ।**

## २०—नावा सुत्त

( इस सूत्र में अच्छे गुरु का परिचय है । उसकी उपमा उस चतुर नाविक से दी गई है जो स्वयं नदी को पार कर दूसरों को भी पार कर देता है । )

मनुष्य जिनसे धर्म सीखता है, उनकी पूजा वैसी ही करनी चाहिए जैसी कि देवता इन्द्र की ( करते हैं ) । ( इस प्रकार ) पूजित वह बहुश्रुत उससे प्रसन्न चित्त हो धर्म को प्रकाशित करते हैं ॥ १ ॥

जो बुद्धिमान् धर्म को ध्यान से सुनकर उसके अनुसार चलते हुए तत्परता के साथ वैसे गुरु की संगति करता है वह विज्ञ, समझदार और निपुण होता है ॥ २ ॥

जो अनुदार, मूर्ख, अर्थ को न जाननेवाले और ईर्ष्यालु गुरु की संगति करता है, वह यहीं धर्म को बिना समझे ही शंकाओं को बिना दूर किये ही मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

जो मनुष्य तेज बहनेवाली विशाल नदी में उतर कर धारा के साथ बह रहा है, वह दूसरों को किस प्रकार उतार सकता है ? ॥ ४ ॥

इसी प्रकार जिसने धर्म को नहीं समझा है और बहुश्रुतों से अर्थ को नहीं सुना है, बिना स्वयं समझे और शंकाओं को दूर किये दूसरों को क्या सिखा सकता है ? ॥ ५ ॥

यथापि नावं दब्धमारुहित्वा, पियेनरित्तेन समङ्गिभूतो ।  
 सो तारये तत्थ बहूपि अब्बे, तत्रूपयब्बू कुसलो मुतीमा ॥ ६ ॥  
 एवम्पि यो वेदगु भावितत्तो, बहुस्सुतो होति अवेधधम्मो ।  
 सो खो परे निज्झपये पजानं, सोतावधानूपनिसूपपन्नो ॥ ७ ॥  
 तस्मा हवे सप्पुरिसं भजेथ, मेधाविनं चेव बहुस्सुतं च ।  
 अब्ब्याय अत्थं पटिपज्जमानो, विब्बातधम्मो सो सुखं लभेथाति ॥ ८ ॥  
 नावासुत्तं निट्ठितं ।

## २१—किंसील-मुत्तं

किंसीलो किं समाचारो, कानि कम्मानी ब्रूह्यं ।  
 नरो सम्मा निविट्ठस्स, उत्तमत्थं च पापुणे ॥ १ ॥  
 वद्धापचायी अनुसुय्यको सिया, कालब्बू चस्स गरूनं दस्सनाय ।  
 धम्मि कथं एरयितं खणब्बू, सुणेय्य सक्कच्च सुभासितानि ॥ २ ॥  
 कालेन गच्छे गरूनं सकासं, थम्भं निरङ्कत्वा निवातवुत्ति ।  
 अत्थं धम्मं संयमं ब्रह्मचरियं, अनुस्सरे चेव समाचरे च ॥ ३ ॥  
 धम्मारामो धम्मरतो, धम्मे ठितो धम्मविनिच्छयब्बू ।  
 नेवाचरे धम्मसन्दोसवादं, तच्छेहि नीयेथ सुभासितेहि ॥ ४ ॥  
 हस्सं जप्पं परिदेवं पदोसं, मायाकतं कुहनं गिद्धिमानं ।  
 सारम्भकक्कसकसावमुच्छं, हित्वा चरे वीतमदो ठितत्तो ॥ ५ ॥  
 विब्बातसारानि सुभासितानि, सुतं च विब्बातं समाधिसारं ।  
 न तस्स पब्बा च सुतं च वड्ढति, यो सालसो होति नरो पमत्तो ॥ ६ ॥  
 धम्मे च ये अरियपवेदिते रता, अनुत्तरा ते वचसा मनसा कम्मना च ।  
 ते सन्ति-सोरच्च-समाधि-सण्ठिता, सुतस्स पब्बाय च सारमज्झगूति ॥ ७ ॥  
 किंसीलमुत्तं निट्ठितं ।

जिस प्रकार पतवार और डोंडों से युक्त मजबूत नाव पर चढ़ कर चतुर, बुद्धिमान् नाविक उससे और लोगों को भी पार करता है उसी प्रकार ज्ञानी, संयमी बहुश्रुत सांसारिक बातों से अविचलित रहता है। वह सुनने के लिए इच्छुक योग्य लोगों को धर्म सिखाता है ॥ ६-७ ॥

इसलिए बुद्धिमान्, बहुश्रुत साधु पुरुष की संगति करनी चाहिए जो अर्थ को समझ कर धर्म के अनुसार चलता है। ऐसा वह धर्म को जान कर सुख को प्राप्त करता है ॥ ८ ॥

नावासुत्त समाप्त ।

## २१—किंसील-सुत्त

[ इस सूत्र में दिखाया गया है कि मुक्ति गवेषक को कौन से दुर्गुण दूर करने चाहिए और कौन से सदगुण अपने में लाने चाहिए— ]

कौन शील, कौन आचरण और कौन से कर्म करके ( धर्म में ) सुप्रतिष्ठित मनुष्य उत्तमार्थ को प्राप्त करता है ? ॥ १ ॥

**बुद्धः—**

वह बड़ों का आदर करे, ईर्ष्यालु न हो, उचित समय पर गुरु के दर्शन करे, धर्म-कथा सुनने का उचित क्षण जाने और सम्मान के साथ सदुपदेशों को सुने ॥ २ ॥

धृष्टता को दूर कर विनीत भाव से उचित समय पर गुरुजनों के पास जाये और अर्थ, धर्म, संयम तथा ब्रह्मचर्य का स्मरण कर उनका आचरण करे ॥ ३ ॥

वह धर्म में रमते हुए, धर्म में रत हो, धर्म में स्थित हो, धार्मिक विनिश्चय को जानते हुए, धर्म को दूषित करने वाली चर्चा में न लगे। सत्य सदुपदेशों से समय बितावे ॥ ४ ॥

अट्टहास, गम्प, विलाप, द्वेष, कपट, ढोंग, लोलुपता, अभिमान, स्पर्धा, मल और मोह को छोड़ कर मद रहित और स्थिर चित्त हो विचरण करे ॥ ५ ॥

ज्ञान सदुपदेशों का सार है। समाधि विद्या और ज्ञान का सार है। जो मनुष्य असावधान और प्रमत्त है, उसके ज्ञान और श्रुति की वृद्धि नहीं होती ॥ ६ ॥

जो आर्यों के देशित धर्म में रत हैं वे मन, वचन तथा शरीर से उत्तम हैं। शान्ति, शिष्टता तथा समाधि में स्थित हो श्रुति और प्रज्ञा के सार को प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

किंसीलसुत्त समाप्त ।

## २२—उट्टान-सुत्तं

उट्टहथ निसीदथ, को अत्थो सुपिनेन वो ।

आतुरानं हि का निदा, सल्लविट्ठान रूपतं ॥ १ ॥

उट्टहथ निसीदथ, दळ्हं सिक्खथ सन्तिया ।

मा वो पमत्ते विज्जाय, ( मञ्चुराजा ) अमोहयित्थ वसानुगे ॥ २ ॥

याय देवा मनुस्सा च, सिता तिट्ठन्ति अत्थिका ।

तरथेतं विसत्तिकं, खणो वे मा उपञ्चगा ।

खणातीता हि सोचन्ति, निरयग्धि समप्पिता ॥ ३ ॥

पमादो रजो पमादो, पमादानुपतितो रजो ।

अपमादेन विज्जाय, अब्बहे सल्लमत्तनोति ॥ ४ ॥

उट्टानसुत्तं निट्ठतं ।



## २३—राहुल-सुत्तं

कच्चि अभिण्हसंवासा, नावजानासि पण्डितं ।

उक्काधारो मनुस्सानं, कच्चि अपचितो तथा ॥ १ ॥

नाहं अभिण्हसंवासा, अवजानामि पण्डितं ।

उक्काधारो मनुस्सानं, निच्चं अपचितो मया ॥ २ ॥

वत्थुगाथा

पञ्चकामगुणे हित्वा, पियरूपे, मनोरमे ।

सद्भाय घरा निक्खम्म, दुक्खस्सन्तकरो भव ॥ ३ ॥

मित्ते भजस्सु कल्याणे, पन्तं च सयनासनं ।

विवित्तं अप्पनिग्घोसं, मत्तञ्जू होहि भोजने ॥ ४ ॥

चीवरे पिण्डपाते च, पञ्चये सयनासने ।

एतेसु तण्हं माकासि, मा लोकं पुनरागमि ॥ ५ ॥

संवुतो पातिमोक्खस्मि, इन्द्रियेसु च पञ्चसु ।

सति कायगता त्यत्थु, निब्बिदाबहुलो भव ॥ ६ ॥

## २२—उद्घान सुत्त

[ इस सूत्र में उद्योगी हो दुःख का अन्त करने का उपदेश है— ]

जागो ! बैठो ! सोने से तुम्हें क्या लाभ ? ( दुःख रूपी ) तीर लगे रोगियों को नींद कैसी ? ॥ १ ॥

जागो ! बैठो ! दृढ़ता के साथ शान्ति के लिये शिक्षित हो जाओ । प्रमत्त जान मृत्युराज तुम्हें मोहित न कर ले, वश में न कर ले ॥ २ ॥

इस तृष्णा को पार करो, जिस पर अवलम्बित और स्थित हो देव और मनुष्य विषय-भोग के पीछे पड़ते हैं । अवसर को मत जाने दो । अवसर को खोने वाले नरक में पड़ कर पछताते हैं ॥ ३ ॥

प्रमाद, ही रज है । प्रमाद के कारण ही रज उत्पन्न होता है । अप्रमाद और विद्या से अपने ( दुःख रूपी ) तीर को निकाल दो ॥ ४ ॥

उद्घानसुत्त समाप्त ।



## २३ राहुल—सुत्त

[ इस सूत्र में सांसारिक कामनाओं को दूर कर निर्वाण प्राप्त करने का उपदेश है । यह उपदेश भगवान् नित्यप्रति अपने पुत्र राहुल को दिया करते थे— ]

बुद्धः—

क्या अति परिचय के कारण पण्डित का अपमान तो नहीं करते ? क्वा मनुष्यों में प्रदीप धारण करनेवाले तुम से पूजित हैं ? ॥ १ ॥

राहुलः—

अति परिचय के कारण मैं पण्डित का अपमान नहीं करता । मनुष्यों में प्रदीप धारण करने वाले नित्य मुझसे पूजित हैं ॥ २ ॥

बुद्धः—

पाँच प्रकार के प्रिय और मनोरम विषय भोगों को त्याग कर श्रद्धा पूर्वक बेघर हो दुःख का अन्त करो ॥ ३ ॥

कल्याण मित्रों की संगति करो । ग्राम से दूर एकान्त-शान्त स्थान में रहो । भोजन में उचित मात्रा को जानो ॥ ४ ॥

चीवर, भिक्षा तथा निवासस्थान—इन वस्तुओं में तृष्णा न करो । इस संसार में फिर न आओ ॥ ५ ॥

प्रतिमोक्ष<sup>१८</sup> के अनुसार संयम रखो । पाँच इन्द्रियों को वश में करो । शारीरिक गन्दगी का स्मरण करो । वैराग्य-भाव को बढ़ाओ ॥ ६ ॥

निमित्तं परिवज्जेहि, सुभं रागूपसंहितं ।

असुभाय चित्तं भावेहि, एकगं सुसमाहितं ॥७॥

अनिमित्तं च भावेहि, मानानुसयमुज्जह ।

ततो मानाभिसमया, उपसन्तो चरिस्ससीति ॥८॥

इत्थं सुदं भगवा आयस्मन्तं राहुलं इमाहि गाथाहि अभिण्हं ओवदतीति ।

राहुलसुतं निद्वितं ।

## २४—वङ्गीस-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा आळवियं विहरति अग्गाळवे चेतिथे । तेन खो पन समयेन आयस्मतो वङ्गीसस्स उपज्झायो निग्रोधकप्पो नाम थेरो अग्गाळवे चेतिथे अचिरपरिनिब्बुतो होति । अथ खो आयस्मतो वङ्गीसस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—परिनिब्बुतो नु खो मे उपज्झायो उदाहु नो परिनिब्बुतोति । अथ खो आयस्मा वङ्गीसो सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा वङ्गीसो भगवन्तं एतदवोच—इध मय्हं भन्ते रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—परिनिब्बुतो नु खो मे उपज्झायो, उदाहु नो परिनिब्बुतोति । अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्ठायासना एकंसं चीवरं कत्वा येन भगवा तेनञ्जुलिं पणामेत्वा भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

पुच्छाम सत्थारं अनोमपब्बं, दिट्ठेव धम्मे यो विचिकिच्छानं छेत्ता ।

अग्गाळावे कालमकासि भिक्खु, जातो यसस्सी अभिनिब्बुतत्तो ॥१॥

निग्रोधकप्पो इति तस्स नामं, तथा कतं भगवा ब्राह्मणस्स ।

सो तं नमस्सं अचरी मुत्थपेक्खो, आरद्धविरियो दळ्ह्धम्मदस्सी ॥२॥

तं सावकं सक्क मयम्पि सब्बे, अब्बातुमिच्छाम समन्तचक्खु ।

समवट्ठिता नो सवणाय सोता, तुवं नो सत्था त्वमनुत्तरोसि ॥३॥

छिन्देव नो विचिकिच्छं ब्रूहि मेतं, परिनिब्बुतं वेदय भूरिपब्ब ।

मज्झेव नो भास समन्तचक्खु, सक्कोव देवानं सहस्सनेत्तो ॥४॥

लुभानेवाले रागयुक्त निमित्तों को त्यागो । एकाग्र और समाधिस्थ हो मन में अशुभ की भावना करो ॥ ७ ॥

अनिमित्त ( = निर्वाण ) की भावना करो । अभिमान-प्रवृत्ति को दूर करो । अभिमान का अन्त कर शान्त चित्त हो विचरण करोगे ॥ ८ ॥

इस प्रकार नित्यप्रति भगवान् आयुष्मान् राहुल को इन गाथाओं से उपदेश देते थे ।

राहुलसुत्त समाप्त ।

### २४-वज्जीस-सुत्त

[ वज्जीस निधन-प्राप्त अपने उपाध्याय निग्रोधकप्प की गति के विषय में भगवान् से पूछते हैं । भगवान् बताते हैं कि तृष्णा का नाश कर वह-निर्वाण को प्राप्त हुए हैं—]

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् आलवी में, अग्गालव चैत्य में विहार करते थे । उस समय आयुष्मान् वज्जीस के उपाध्याय निग्रोधकप्प स्थविर अग्गालव चैत्य में अभी तुरन्त निर्वाण को प्राप्त हुए थे । तब एकान्त में ध्यानावस्थित आयुष्मान् वज्जीस के मन में यह वितर्क उठा—“क्या मेरे उपाध्याय निर्वाण को प्राप्त हुए या नहीं ?” तब आयुष्मान् वज्जीस सायंकाल ध्यान से उठकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान् को अभिनन्दन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् वज्जीस ने भगवान् से यह कहा—“भन्ते ! एकान्त में ध्यानावस्थित मेरे मन में यह वितर्क उठा—“क्या मेरे उपाध्याय निर्वाण को प्राप्त हुए या नहीं ?” तब आयुष्मान् वज्जीस ने आसन से उठ कर एक कन्धे पर चीवर को डाल भगवान् को प्रणाम कर गाथाओं में कहा :—

इसी जन्म में शंकाओं को दूर करनेवाले महाप्रज्ञ शास्ता से उन नामी, यशस्वी और शान्त भिक्षु के विषय में पूछते हैं जिनका देहान्त अग्गालव चैत्य में हुआ था ॥ १ ॥

आप ने उस ब्राह्मणका नाम निग्रोधकप्प रखा था । मुक्ति के अपेक्षक दृढ़ पराक्रमी ( वे ) निर्वाणदर्शी आपको नमस्कार करते हुए विचरण करते थे ॥ २ ॥

सर्वदर्शी शाक्य ! आपके उस शिष्य के विषय में हम सब जानना चाहते हैं हमारे कान सुनने को तैयार हैं । आप हमारे शास्ता हैं, आप सर्वोत्तम हैं ॥ ३ ॥

महाप्रज्ञ ! हमारी शंका दूर करें । मुझे बतावें कि वे निर्वाण को प्राप्त हुए या नहीं । देवताओं के सहस्र नेत्र शक्र ( = इन्द्र ) की तरह सर्वदर्शी आप हमारे बीच बोलें ॥ ४ ॥

ये केचि गन्था इध मोहमग्गा, अब्बाणपक्खा विचिकिच्छद्वाना ।  
तथागतं पत्वा न ते भवन्ति, चक्खुं हि एतं परमं नरानं ॥५॥

नो चे हि जातु पुरिसो किलेसे, वातो यथा अब्भघनं विहाने ।  
तमोवस्स निवुतो सब्बलोको, न जोतिमन्तोपि नरा तपेय्युं ॥६॥

धीरा च पज्जोतकरा भवन्ति, तं तं अहं धीर तथेव मब्बे ।  
विपस्सिनं जानमुपागमम्ह, परिसासु नो आविकरोहि कप्पं ॥७॥

खिप्पं गिरं एरय वग्गु वग्गुं, हंसोव पग्गय्ह सणिं निकूज ।  
विन्दुस्सरेन सुविकप्पितेन, सब्बेव ते उज्जुगता सुणोम ॥८॥

पहीनजातिमरणं असेसं, निग्गय्हधोतं वदेस्सामि धम्मं ।  
न कामकारो हि पुथुज्जनानं, संखेय्यकारो च तथागतानं ॥९॥

संपन्नवेय्याकरणं तवेदं, समुज्जुपब्बस्स समुग्गहीतं ।  
अयमञ्जलि पच्छिमो सुप्पणामितो, मा मोहयी जानमनोमपब्ब ॥१०॥

परोवरं अरियधम्मं विदित्वा, मा मोहयी जानमनोमविरिय ।  
वारिं यथा घम्मनि घम्मतत्तो, वाचाभिकङ्खामि सुतं पवस्स ॥११॥

यदत्थिकं ब्रह्मचरियं अचारि, कप्पायनो कच्चिस्स तं अमोघं ।  
निब्बायि सो अनुपादिसेसो, यथा विमुत्तो अहु तं सुणोम ॥१२॥

अच्छेच्छि तण्हं इध नामरूपे (इति भगवा), कण्हस्स सोतं दीघरत्तानु-  
सयित्तं  
अतारि जातिमरणं असेसं, इच्चब्रवी भगवा पब्बसेट्टो ॥१३॥

एस सुत्वा पसीदामि वचो, ते इतिससत्तम ।  
अमोघं किर मे पुट्ठं, न मं वञ्चेसि ब्राह्मणो ॥१४॥

यथावादी तथाकारी, अहु बुद्धस्स सावको ।  
अच्छिद्वा मच्चुनो जालं, ततं मायाविनो दळ्हं ॥१५॥

अहस भगवा आदिं, उपादानस्स कप्पियो ।  
अच्चगां वत कप्पायनो, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरन्ति ॥१६॥

वज्जीसमुत्तं निट्ठितं ।

यहाँ मोह की ओर ले जानेवाली, अज्ञान सम्बन्धी, शंका उत्पादक जो कुछ ग्रन्थियाँ हैं, तथागत के पास पहुँचने पर, वे सब नष्ट हो जाती हैं। तथागत ही मनुष्यों के उत्तम चक्षु हैं ॥ ५ ॥

जैसे हवा आसमान से बादलों को दूर कर देती है, वैसे ही यदि आप जैसे मनुष्य (लोगों की) वासनाओं को दूर नहीं करेंगे तो संसार मोह से आच्छादित रहेगा और प्रकाशमान पुरुष भी चमक नहीं पायेंगे ॥ ६ ॥

धीर प्रकाश देनेवाले हैं। धीर ! मैं आप को भी वैसा ही समझता हूँ। विशुद्धदर्शी, शानी (आप) के पास (हम) आये हैं। परिषद में हमें निम्रोधकप्प के विषय में बतावें ॥ ७ ॥

जिस प्रकार हंस गला फैला कर मधुर और सुरीला निकृजन करता है उसी प्रकार मधुर वाणी शीघ्र छेड़ें। हम सब उसे ध्यानपूर्वक सुनेंगे ॥ ८ ॥

आप ने निःशेष जन्म-मृत्यु का नाश किया है। मैं सुपरिशुद्ध आप से उपदेश के लिए सानुरोध निवेदन करूँगा। पुण्ड्रिणों (= साधारण मनुष्यों) की इच्छायें पूरी नहीं होती। तथागत जानकारी के साथ कर्म करते हैं ॥ ९ ॥

हे ऋजुप्रश्न ! आप के इस सम्पूर्ण कथन को (हमने) अच्छी तरह ग्रहण किया है। यह मेरा अन्तिम प्रणाम है। हे महाप्रश्न ! (हमें) भ्रम में न रखें ॥ १० ॥

महाप्रश्न ! आरम्भ से अन्त तक आर्य-धर्म को जान कर (आप हम को) भ्रम में न रखें। जिस प्रकार उष्ण ऋतु में गर्मी से पीड़ित मनुष्य पानी के लिए लालायित है, उसी प्रकार मैं आप के वचन की आकांक्षा करता हूँ। आप वाणी की वर्षा करें ॥ ११ ॥

जिस अर्थ के लिए कप्पायन ने ब्रह्मचर्य का पालन किया था क्या वह सफल हुआ ? वे निर्वाण को प्राप्त हुए या जन्मशेष रह गये ? हम सुनना चाहते हैं कि उनकी मुक्ति कैसी हुई है ॥ १२ ॥

**बुद्धः**—नाम-रूप की तृष्णा रूपी दीर्घकाल से बहनेवाली मार की सरिता को नाश कर वह निःशेष जन्म-मृत्यु से पार हो गया ॥ १३ ॥

**वज्जीसः**—उत्तम ऋषि ! आपकी बात को सुन कर मैं प्रसन्न हूँ। मेरा प्रश्न खाली नहीं गया। आपने मेरी उपेक्षा नहीं की ॥ १४ ॥

बुद्ध के (वे) शिष्य यथावादी तथाकारी रहे हैं। उन्होंने मार के विस्तृत, मायावी, दृढ़ जाल को टुकड़ा-टुकड़ा कर दिया ॥ १५ ॥

भगवान् ! कप्पिय ने तृष्णा के हेतु को जान लिया था। कप्पायन अति दुस्तर मृत्यु-राज्य को पार कर गये हैं ॥ १६ ॥

वज्जीससुत्त समाप्त।

२५—सम्मापरिब्बाजनिय-सुत्तं

पुच्छाम मुनिं पट्टपब्बं, तिण्णं पारगतं परिनिब्बुतं ठित्तं ।  
 निक्खम्म घरा पनुज्ज कामे, कथं (भिक्षु) सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१॥

यस्स मज्झला समूहता ( इति भगवा ), उप्पादा सुपिना च लक्खणा च ।  
 सो मज्झलदोसविप्पहीनो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥२॥

रागं विनयेथ मानुसेसु, दिब्बेसु कामेसु चापि भिक्षु ।  
 अतिकम्म भवं समेच्च धम्मं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥३॥

विपिट्ठि क्त्वा पेसुनानि, कोधं कदरियं जहेय्य भिक्षु ।  
 अनुरोध-विरोध-विप्पहीनो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥४॥

हित्वा पिणं च अप्पियं च अनुपादाय अनिस्सितो कुहिञ्चि ।  
 संयोजनियेहि विप्पमुत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥५॥

न सो उपधीसु सारमेति, आदानेसु विनेय्य छन्दरागं ।  
 सो अनिस्सितो अनब्बनेय्यो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥६॥

वचसा मनसा च कम्मना च, अविरुद्धो सम्मा विदित्वा धम्मं ।  
 निब्बाणपदाभिपत्थयानो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥७॥

यो मन्ति मन्ति न उण्णमेय्य, अकुट्टोपि न सन्धिथेथ भिक्षु ।  
 लद्धा पराभोजनं न मज्जे, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥८॥

लोभं च भवं च विप्पहाय, विरतो छेदनबन्धना च भिक्षु ।  
 सो तिण्णकथंकथो विसल्लो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥९॥

सारूपमत्तनो विदित्वा, न च भिक्षु हिंसेय्य कञ्चि लोके ।  
 यथातथियं विदित्वा धम्मं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१०॥

यस्सानुसया न सन्ति केचि, मूला अकुसला समूहतासे ।  
 सो निराससो अनासयानो सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥११॥

आसवखीणो पहीनमानो, सब्बं रागपथं उपातिवत्तो ।  
 दन्तो परिनिब्बुतो ठित्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१२॥

## २५—सम्मापरिब्बाजनिय—सुत्त

[ इस सूत्र में भगवान् ने यह दिखाया है कि भिक्षु को किस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए— ]

महाप्रज्ञ, भव को पार कर मुक्त, स्थितात्मा मुनि से ( हम ) पूछते हैं कि विषयों का त्याग कर भिक्षु किस प्रकार सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ? ॥ १ ॥

बुद्धः—जिसको मंगल, उत्पात, स्वप्न और लक्ष्णों में विश्वास नहीं रहा, जो शकुन-अपशकुनसे मुक्त है, वह भिक्षु सम्यक् रूपसे संसार में विचरण करता है ॥ २ ॥

जो ( भिक्षु ) मनुष्य कामों तथा दिव्य कामों के प्रति अनुराग त्याग, धर्म को अच्छी तरह जान, भव को पार करता है, वह सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ ३ ॥

( जो ) भिक्षु चुगली तथा क्रोध को त्याग कृपणता को दूर कर, अनुरोध-विरोध से मुक्त होता है वह सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ ४ ॥

प्रिय-अप्रिय को छोड़, कहीं भी अनुराग या तृष्णा न कर, बन्धनों से विमुक्त हो वह सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ ५ ॥

जो परिग्रह में सार नहीं देखता, वह विषयों के प्रति अनुराग को त्याग, तृष्णा रहित हो, दूसरों का अनुसरण न कर सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ ६ ॥

वचन, मन तथा कर्म से विरोध न कर, अच्छी तरह धर्म को जान, निर्वाण-पद का आकांक्षी हो वह सम्यक् रूप से संसार विचरण करता है ॥ ७ ॥

‘दूसरे मेरी वन्दना करते हैं’—सोच जो भिक्षु गर्व नहीं करता, आक्रोश करने पर भी वैमनस्य नहीं करता, दूसरों का भोजन प्राप्त कर प्रमत्त नहीं होता वह सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ ८ ॥

( जो ) भिक्षु लोभ और तृष्णा को त्याग, वध-बन्धन से रहित हो, संशय से परे हो, निष्काम होता है वह सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ ९ ॥

भिक्षु अपनी अनुरूपता का जान संसार में किसी की हिंसा न करे । यथार्थ रूप से धर्म को जान वह सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ १० ॥

जिसमें कुछ भी वासनाएं नहीं हैं और जो बुराईयों को जड़ से नष्ट कर दिया है, तृष्णा तथा वासना रहित वह सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ ११ ॥

वासना-क्षीण, अभिमान-प्रहीण, सारे काम-पथ को पार किया ; दान्त, उपशान्त, स्थितात्मा वह सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ १२ ॥

सद्धो सुतवा नियामदस्सी, वग्गतेसु न वग्गसारी धीरो ।  
लोभं दोसं विनेय्य पटिधं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१३॥

संसुद्धजिनो विवत्तच्छहो धम्मेषु वसी पारगू अनेजो ।  
सङ्खारनिरोधञ्चाणकुसलो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१४॥

अतीतेसु अनागतेसु चापि, कप्पातीतो अतिच्च सुद्धिपब्बो ।  
सब्बायतनेहि विप्पमुत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१५॥

अब्बाय पदं समेच्च धम्मं, विवटं दिस्वान प्हानमासवानं ।  
सब्बूपधीनं परिक्खयानो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्य ॥१६॥

अद्धा हि भगवा तथेव एतं, यो सो एवं विहारी दन्तो भिक्खु ।  
सब्बसंयोजनिये च वीतिवत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय्याति ॥१७॥

सम्मापरिब्बाजनियसुत्तं निट्ठितं ।

## २६—धम्मिक-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्ड-  
कस्स आरामे । अथ खो धम्मिको उपासको पच्चहि उपासकसतेहि सद्धिं येन  
भगवा तेनुपसङ्कमि उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि ।  
एकमन्तं निसिन्नो खो धम्मिको उपासको भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

पुच्छामि तं गोतम भूरिपब्ब, कथं करो सावको साधु होति ।  
यो वा अगारा अनगारमेति, अगारिनो वा पनुपासकासे ॥१॥

तुवं हि लोकस्स सदेवकस्स, गतिं पजानासि परायणं च ।  
न चत्थि तुल्यो निपुणत्थदस्सी, तुवं हि बुद्धं पवरं वदन्ति ॥२॥

सब्बं तुवं वाणमवेच्च धम्मं, पकासेसि सत्ते अनुकम्पमानो ।  
विवत्तच्छहोसि समन्तचक्खु, विरोचसि विमलो सब्बलोके ॥३॥

आगच्छि ते सन्तिके नागराजा, एरावणो नाम जिनोति सुत्वा ।  
सोपि तया मन्तयित्वा अज्झगमा, साधूति सुत्वान पतीतरूपो ॥४॥

श्रद्धालु, श्रुतिमान्, निर्वाण-पथदर्शी, दलबन्धियों में किसी का पक्ष न लेने वाला वह धीर लोभ, द्वेष तथा कोप को दूर कर सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ १३ ॥

सुविशुद्ध आत्मजित्, अविद्या रूपी पदों से मुक्त, वर्णप्राप्त, पारङ्गत, अविचलित, संस्कारों के नाश में कुशल वह सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ १४ ॥

जो शुद्ध-प्रज्ञ भूत तथा भविष्य की बातों से परे हैं, सब विषयों से मुक्त है, वह सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ १५ ॥

आर्यसत्त्वों को जान, धर्म को समझ, वासनाओं के प्रहाण से निर्वाण को साफ-साफ देख, सभी आसक्तियों को दूर कर वह सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ १६ ॥

सचमुच, भगवन् ! यह ऐसी ही है । इस प्रकार विहार करनेवाला, दान्त भिक्षु सब बन्धनों से परे हो सम्यक् रूप से संसार में विचरण करता है ॥ १७ ॥

सम्मापरिज्जाजनियसुत्त समाप्त ।

## २६—धम्मिक-सुत्त

[ इस सूत्र में भिक्षु-धर्म तथा गृहस्थ धर्म अलग अलग दिखाये गये हैं— ]

ऐसा मैंने सुना:—

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे, उस समय धम्मिक उपासक पाँच सौ उपासकों के साथ वहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । पास जा भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे धम्मिक उपासक ने गाथाओं में भगवान् से कहा:—

महाप्रज्ञ गौतम ! मैं आपसे पूछता हूँ कि किस आचरण का श्रावक अच्छा होता है ? घर से निकल कर बेघर होनेवाला या गृहस्थ उपासक ? ॥ १ ॥

देव सहित लोगों की गति और विमुक्ति को आपही जानते हैं । आपके समान निपुण अर्थदर्शी कोई नहीं है । ( लोग ) आपही को उत्तम बुद्ध बताते हैं ॥ २ ॥

आपने धर्म सम्बन्धी पूरा ज्ञान प्राप्त कर अनुकम्पा पूर्वक प्राणियों को ( वह ) प्रकाशित किया है । सर्वदर्शी ! आप ( अविद्या रूपी ) पदों से मुक्त हैं, निर्मल रूप से सारे संसार में सुशोभित हैं ॥ ३ ॥

आपको 'जिन' सुन कर 'ऐरावण' नामक हस्तिराज आपके पास आया था । वह भी आपसे वार्तालाप कर ( धर्म ) सुन कर प्रसन्न हो प्रशंसा कर चला गया ॥ ४ ॥

राजापि तं वेस्सवणो कुबेरो, उपेति धम्मं परिपुच्छमानो ।  
तस्सापि त्वं पुच्छितो ब्रूसि धीर, सो चापि सुत्त्वान पतीतरूपो ॥५॥

ये केचिमे तिथिया वादसीला, आजीविका वा यदि वा निगण्ठा ।  
पब्बाय तं नातितरन्ति सब्बे, ठितो वजन्तं विय सीघगामिं ॥६॥

ये केचिमे ब्राह्मणा वादसीला, बुद्धा चापि ब्राह्मणा सन्ति केचि ।  
सब्बे तयि अत्थबद्धा भवन्ति, ये वापि चब्बे वादिनो मळ्वमाना ॥७॥

अयं हि धम्मो निपुणो सुखो च, योयं तथा भगवा सुप्पवुत्तो ।  
तमेव सब्बे सुत्सूसमाना, त्वं नो वद पुच्छितो बुद्धसेट्ठ ॥ ८ ॥

सब्बेपिमे भिक्खवो संनिसिन्ना, उपासका चापि तथेव सोनुं ।  
सुणन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं, सुभासितं वासवस्सेव देवा ॥ ९ ॥

सुणाथ मे भिक्खवो सावयामि वो, धम्मं धुतं तं च धराथ सब्बे ।  
इरियापथं पब्बजितानुलोमिकं सेवेथ नं अत्थदसी मुतीमा ॥ १० ॥

न वे विकाले विचरेय्य भिक्खु, गामं च पिण्डाय चरेय्य काले ।  
अकलाचारिं हि सजन्ति संग्गा, तस्मा विकाले न चरन्ति बुद्धा ॥ ११ ॥

रूपा च सद्दा च रसा च गंधा, फस्सा च ये संमदयन्ति सत्ते ।  
एतेसु धम्मेसु विनेय्य छन्दं, कालेन सो पविसे पातरासं ॥ १२ ॥

पिण्डं च भिक्खु समयेन लद्धा, एको पटिक्कम्म रहो निसीदे ।  
अज्झत्तचिन्ती न मनो बहिद्धा, निच्छारये संगहित्तभावो ॥ १३ ॥

सचेपि सो सल्लपे सावकेन, अब्बेन वा केनचि भिक्खुना वा ।  
धम्मं पणीतं तमुदाहरेय्य, न पेसुणं नोपि परूपवादं ॥ १४ ॥

वादं हि एके पटिसेनियन्ति, न ते पसंसासं परित्तपब्बे ।  
ततो ततो नेपसजन्ति संग्गा, चित्तं हि ते तत्थ गमेन्ति दूरे ॥ १५ ॥

पिण्डं विहारं सयनासनं च, आपं च सङ्काटिरजूपवाहनं ।  
सुत्त्वान धम्मं सुगतेन देसितं, सङ्गाय सेवे वरपब्बसावको ॥ १६ ॥

तस्मा हि पिण्डे सयनासने च, आपे च सङ्काटिरजूपवाहने ।  
एतेसु धम्मेसु अनूपलित्तो, भिक्खु यथा पोक्खरे वारिबिन्दु ॥ १७ ॥

राजा वैश्रवण कुबेर भी धर्म पूछने के लिए आपके पास आया था ।  
धीर ! आपने उसके प्रश्न का भी उत्तर दिया और वह भी ( आपकी बात )  
सुनकर प्रसन्न हो चला गया ॥ ५ ॥

जितने भी वादी तीर्थक, आजीवक या निर्ग्रन्थ हैं वे सब प्रश्न में आपको  
वैसे ही नहीं पा सकते जैसे कि शीघ्र चलनेवाले को खड़ा रहनेवाला ॥ ६ ॥

जितने भी वादी ब्राह्मण हैं ( जिनमें ) कुछ वृद्ध ब्राह्मण भी हैं, वादी समझे  
जानेवाले जितने भी और लोग हैं वे सब अर्थ की बात पूछने के लिए आपही के  
पास आते हैं ॥ ७ ॥

भगवन् ! आपका सुदेशित यह धर्म गम्भीर और सुखकर है । ( हम ) सब  
उसी के सुनने के इच्छुक हैं । श्रेष्ठ बुद्ध ! पूछने पर हमें उपदेश करें ॥ ८ ॥

( यहाँ ) सुनने को बैठे ये सब भिक्षु और उपासक निर्मल बुद्ध के अवगत  
धर्म को ( वैसे ही ) सुनें जैसे कि इन्द्र के सदुपदेश को देवता ( सुनते हैं ) ॥ ९ ॥

बुद्ध :—भिक्षुओ ! मुझे सुनो, मैं तुम्हें निर्मल धर्म सुनाता हूँ । ( तुम ) सब  
उसे धारण करो । अर्थदर्शी बुद्धिमान प्रव्रजितों के अनुरूप आचरण करें ॥ १० ॥

भिक्षु असमय में विचरण न करे । समय पर भिक्षा के लिए गाँव में  
पैठे । असमय विचरनेवाले को आसक्तियाँ लग जाती हैं । इसलिए ज्ञानी  
पुरुष असमय में विचरण नहीं करते ॥ ११ ॥

रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श—ये सब लोगों को मोह में डाल देते हैं ।  
इसलिए इन विषयों के प्रति तृष्णा त्याग कर भिक्षु समय में प्रातः भोजनार्थ  
( भिक्षा के लिए ) निकले ॥ १२ ॥

समय पर भिक्षा प्राप्त कर भिक्षु अकेले एकान्त में जा बैठे, फिर अध्यात्म  
चिन्तन में लगे, मन को बाहरी वस्तुओं की ओर न दौड़ावे और चित्त को  
एकाग्र करे ॥ १३ ॥

यदि वह किसी शिष्य या भिक्षु से वार्तालाप करे तो मधुर धर्म की ही  
चर्चा करे । चुगली या पर-निन्दा न करे ॥ १४ ॥

कुछ लोग वाद छेड़ते हैं, उन अल्प-प्रज्ञों की प्रशंसा ( हम ) नहीं करते ।  
आसक्तियाँ धीरे धीरे उनको लग जाती हैं और उनका मन उसमें ( = वाद में )  
उलझ जाता है ॥ १५ ॥

बुद्ध के सुदेशित धर्म को सुन कर उत्तमप्रज्ञ का शिष्य भिक्षा, विहार, निवास,  
पानी, चीवर रँगना, और धोना—इन बातों को विचार पूर्वक करे ॥ १६ ॥

भिक्षा, निवास, पानी, चीवर रँगना और धोना—इन बातों में भिक्षु ( =  
वैसा ही ) अनासक्त रहे जैसा कि कमलपत्र पर जलबिन्दु ॥ १७ ॥

गहद्ववत्तं पन वो वदामि, यथा करो सावको साधु होति ।  
न हेसो लब्भा सपरिगगहेन, फस्सेतुं यो केवलो भिक्खुधम्मो ॥ १८ ॥  
पाणं न हाने न च घातयेय्य, न चानुजब्बा हननं परेसं ।  
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, ये थावरा ये च तसन्ति लोके ॥ १९ ॥  
ततो अदिन्नं परिवज्जयेय्य, किञ्चि कचि सावको बुज्झमानो ।  
न हारये हरतं नानुजब्बा, सब्बं अदिन्नं परिवज्जयेय्य ॥ २० ॥  
अब्रह्मचरियं परिवज्जयेय्य, अङ्गारकासुं जलितं विज्झू ।  
असंभुणन्तो पन ब्रह्मचरियं, परस्स दारं नातिकमेय्य ॥ २१ ॥  
सभगगतो वा परिसगतो वा, एकस्स वेको न मुसा भणेय्य ।  
न भासये भणतं नानुजब्बा, सब्बं अभूतं परिवज्जयेय्य ॥ २२ ॥  
मज्जं च पानं न समाचरेय्य, धम्मं इमं रोचये यो गहद्वो ।  
न पायेय्य पिबतं नानुजब्बा, उम्मादनं इति नं विदित्वा ॥ २३ ॥  
मदा हि पापान् करोन्ति बाला, कारेन्ति चब्बेपि जने पमत्ते ।  
एतं अपुब्बायतनं विवज्जये, उम्मादनं मोहनं बालकन्तं ॥ २४ ॥  
पाणं न हाने न चादिन्नमादिये, मुसा न भासे न मज्जपो सिया ।  
अब्रह्मचरिया विरमेय्य मेथुना, रत्तिं न भुज्जेय्य विकालभोजनं ॥ २५ ॥  
मालं न धारे न च गन्धमाचरे, मब्बे छमायं च सयेथ सन्थते ।  
एतं हि अट्ठङ्गिकमाहुपोसथं, बुद्धेन दुक्खन्तगुणा पकासितं ॥ २६ ॥  
ततो च पक्खस्सुपवस्सुपोसथं, चातुहसिं पच्चदसिं च अट्ठमिं ।  
पाटिहारियपक्खं च पसन्नमानसो, अट्ठंगुपेतं सुसमत्तरूपं ॥ २७ ॥  
ततो च पातो उपवुत्थुपासेथो, अग्नेन पानेन च भिक्खुसङ्गं ।  
पसन्नचित्तो अनुमोदमानो, यथारहं संविभजेथ विज्झू ॥ २८ ॥  
धम्मेन मातापितरो भरेय्य, पयोजये धम्मिकं सो वणिज्जं ।  
एतं गिही वत्तयं अप्पमत्तो, सयंपभे नाम उपेति देवेति ॥ २९ ॥

( अब ) मैं तुम्हें गृहस्थ धर्म बताता हूँ जिसके आचरण से साधु शिष्य होता है । यह पूरा भिक्षु धर्म परिग्रही से प्राप्य नहीं ॥ १८ ॥

संसार के स्थावर और जंगम सब प्राणियों के प्रति हिंसा त्याग, न तो प्राणी का वध करे, न करावे और न करने की दूसरों को अनुमति ही दे ॥ १९ ॥

तब दूसरे की समझे जानेवाली किसी चीज को चुराना त्याग दे, न चुरावावे और न चुराने की अनुमति ही दे । चोरी का सर्वथा परित्याग करे ॥ २० ॥

जलते कोयले के गड्ढे की तरह विज्ञ अब्रह्मचर्य को त्याग दे । ब्रह्मचर्य का पालन असम्भव हो तो परस्त्री का अतिक्रमण न करे ॥ २१ ॥

किसी सभा या परिषद में जाकर न तो एक दूसरे को असत्य बोले, न बोलवावे और न बोलने की अनुमति ही दे । मिथ्या-भाषण को सर्वथा त्याग दे ॥ २२ ॥

इस धर्म के इच्छुक गृहस्थ मद्यपान के परिणाम को उन्माद जान कर न तो उसका सेवन करे, न पिलावे और न पीने की अनुमति ही दे ॥ २३ ॥

मूर्ख और दूसरे प्रमत्त लोग मद के कारण ही पाप करते हैं । यह पापस्थल त्याग दे ( जो कि ) उन्मादक है, मोहक है और मूर्खों को प्रिय है ॥ २४ ॥

प्राण-वध न करे, चोरी न करे, असत्य न बोले, मादक द्रव्य न ले, अब्रह्मचर्य और मैथुन से विरत रहे और रात्रि में विकाल भोजन न करे ॥ २५ ॥

माला धारण न करे, सुगन्धि का सेवन न करे, काठ, जमीन या सतरखी पर लेटे । दुःख-पारङ्गत बुद्ध के सुदेशित इसे उपोसथ<sup>२२</sup> कहते हैं ॥ २६ ॥

प्रत्येक पक्ष के चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी को और प्रातिहार्य पक्ष को इस अष्टाङ्गिक उपोसथ<sup>२३</sup> का पालन श्रद्धापूर्वक सम्यक् रूप से करना चाहिए ॥ २७ ॥

उपोसथ ग्रहण कर सुबह अन्न और पान से अपनी शक्ति के अनुसार श्रद्धापूर्वक प्रसन्नता से भिक्षुओं को दान दे ॥ २८ ॥

धर्म से माता-पिता का पोषण करे और किसी धार्मिक व्यापार में लगे । जो गृहस्थ अप्रमत्त हो इस प्रकार का आचरण करता है वह स्वयम्प्रभ नामक देवों में जन्म लेता है ॥ २९ ॥

**भूमिकसुत्त समाप्त ।**



## ३ —महावग्गो

### २७—पब्बज्जा-सुत्तं

पब्बज्जं कित्तयिस्सामि यथा पब्बजि चक्खुमा ।

यथा वीमंसमानो सो पब्बज्जं समरोचयि ॥ १ ॥

सम्बाधोयं घरावासो रजस्सायतनं इति ।

अब्भोकासो च पब्बज्जा इति दिस्वान पब्बजि ॥ २ ॥

पब्बजित्वान कायेन पापकम्मं विवज्जयि ।

वचीदुच्चरितं हित्वा आजीवं परिसोधयि ॥ ३ ॥

अगमा राजगहं बुद्धो मगधानं गिरिब्वजं ।

पिण्डाय अभिहारेसि आकिण्णवरलक्खणो ॥ ४ ॥

तमद्दसा बिम्बिसारो पासादस्मिं पतिट्ठितो ।

दिस्वा लक्खणसम्पन्नं इममत्थं अभासथ ॥ ५ ॥

इमं भोन्तो निसामेथ अभिरूपो ब्रह्मा सुचि ।

चरणेन चैव सम्पन्नो युगमत्तं च पेक्खति ॥ ६ ॥

ओक्खित्तचक्खु सतिमा नायं नीचकुलामिव ।

राजदूता विधावन्तु कुहिं भिक्खु गमिस्सति ॥ ७ ॥

ते पेसिता राजदूता पिट्ठितो अनुबन्धिसुं ।

कुहिं गमिस्सति भिक्खु कत्थ वासो भविस्सति ॥ ८ ॥

सपदानं चरमानो गुत्तद्वारो सुसंवुतो ।

खिण्णं पत्तं अपूरेसि सम्पज्जानो पतिस्सतो ॥ ९ ॥

स पिण्डचारं चरित्वा निक्खम्म नगरा मुनि ।

पण्डवं अभिहारेसि एत्थ वासो भविस्सति ॥ १० ॥

दिस्वान वासूपगतं ततो दूता उपाविसुं ।

एको च दूतो आगन्त्वा राजिनो पटिवेदयि ॥ ११ ॥

एस भिक्खु महाराज पण्डवस्स पुरक्खतो ।

निसिन्नो व्यग्घुसभोव सीहोव गिरिगम्भरे ॥ १२ ॥

## ३—महावग्ग

### २७—पब्बज्जा-सुत्त

[ गृह त्याग कर मुक्ति की गवषणा में निकले सिद्धार्थ को मगध के राजा बिम्बिसार राज्य का प्रलोभन देते हैं । सिद्धार्थ अपने उद्देश्य को बता कर निकल जाते हैं— ]

**आनन्द :—**

जिस विचार में चक्षुमान् ( = बुद्ध ) ने प्रव्रज्या पसन्द की, मैं उसका वर्णन करूँगा ॥ १ ॥

यह गृहवास संकटपूर्ण है, वासनाओं का घर है । खुला आकाश जैसा ( निर्मल ) प्रव्रज्या है । यह देख कर ( वे ) प्रव्रजित हुए ॥ २ ॥

प्रव्रजित हो कायिक कुकर्मों को दूर कर, वाचिक दुराचरण का त्याग कर ( उन्होंने ) आजीविका का संशोधन किया ॥ ३ ॥

उत्तम लक्षणों से युक्त बुद्ध भिक्षा के लिए मगध ( की राजधानी ) राजगृह अर्थात् गिरिव्रज में निकल पड़े ॥ ४ ॥

प्रासाद में खड़े बिम्बिसार ने लक्षणों से युक्त उन्हें देखा, देख कर यह बात कही :— ॥ ५ ॥

अजी ! रूपवान्, महान्, पवित्र, सदाचारी इन्हें देखो । ( ये ) युगमात्र ( दूर ) देखते हैं ॥ ६ ॥

नीचे की हुई आँखों वाले, जागरूक ये नीच कुल के मालूम नहीं होते । राजदूत दौड़ें ( और देखें कि ) भिक्षु कहाँ जायेंगे ॥ ७ ॥

भेजे हुए वे दूत उनके पीछे पीछे ( यह देखने ) चले कि भिक्षु कहाँ जायेंगे और कहाँ रहेंगे ॥ ८ ॥

रक्षित इन्द्रियवाले, संयमी, जागरूक, स्मृतिमान् उन्होंने क्रमशः घर घर भिक्षा करके शीघ्र ही पात्र को भर लिया ॥ ९ ॥

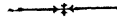
भिक्षा के पश्चात् मुनि नगर से निकल कर पडण्व ( पर्वत ) पर चढ़े कि यहाँ वास होगा ॥ १० ॥

उनको वहाँ ठहरते देख दूत पास बैठ गये । एक दूत ने आकर राजा से निवेदन किया :— ॥ ११ ॥

महाराज ! वह भिक्षु पण्डव ( पर्वत ) के पूरव ( उस प्रकार ) बैठे हैं जिस प्रकार कि व्याघ्र, वृषभ या सिंह ( अपनी ) गिरि-गुफा में ॥ १२ ॥

सुत्वान दूतवचनं, भद्रयानेन खत्तियो ।  
 तरमानरूपो नित्यासि, येन पण्डवपञ्चतो ॥ १३ ॥  
 सयानभूमिं यायित्वा, याना ओरुह्य खत्तियो ।  
 पत्तिको उपसङ्कम्भ, आसज्ज नं उपाविसि ॥ १४ ॥  
 निसज्ज राजा सम्मोदि, कथं सारणियं ततो ।  
 कथं सो वीतिसारेत्वा, इममत्थं अभासथ ॥ १५ ॥  
 युवा च दहरो चासि, पठमुपपत्तिको सुसु ।  
 वण्णारोहेन सम्पन्नो, जातिमा विय खत्तियो ॥ १६ ॥  
 सोभयन्तो अनीकगं, नागसङ्घपुरस्सतो ।  
 ददामि भोगे भुञ्जस्सु, जातिं चक्खाहि पुच्छितो ॥ १७ ॥  
 उजुं जनपदो राजा, हिमवन्तस्स पस्सतो ।  
 धनविरियेन सम्पन्नो, कोसलेसु निकैतिनो ॥ १८ ॥  
 आदिच्चा नाम गोत्तेन, साकिया नाम जातिया ।  
 तग्हा कुला पञ्चजितो ( भिह राज ) न कामे अभिरत्थयं ॥ १९ ॥  
 कामेस्वादीनवं दिस्वा, नेक्खम्मं दट्ठु खेमतो ।  
 पधानाय गमिस्सामि एत्थ मे रञ्जति मनोति ॥ २० ॥

पञ्चजामुत्तं निवृत्तं ।



## २८—पधान-सुत्तं

तं मं पधानपहितत्तं, नदिं नेरञ्जरम्पति ।  
 विपरक्कम्म ज्ञायन्तं, योगक्खेमस्स पत्तिया ॥ १ ॥  
 नमुची करुणं वाचं, भासमानो उपागमि ॥  
 किसो त्वमसि दुब्बण्णो, सन्तिके मरणं तव ॥ २ ॥  
 सहस्सभागो मरणस्स, एकंसो तव जीवितं ।  
 जीव भो जीवितं सेय्यो, जीवं पुब्बानि काहसि ॥ ३ ॥  
 चरतो ते ब्रह्मचरियं, अग्गिहुत्तं च जूहतो ।  
 पहतं चीयते पुब्बं किं पधानेन काहसि ॥ ४ ॥

दूत के वचन को सुन कर राजा उत्तम रथ से शीघ्र ही पण्डव पर्वत की ओर चल दिया ॥ १३ ॥

रथ के योग्य भूमि तक रथ से जा, रथ से उतर कर, राजा उनके निकट पैदल चलके पास बैठ गया ॥ १४ ॥

पास बैठ कर कुशल-संवाद पूछा, कुशल-संवाद के बाद राजा ने यह बात कही :— ॥ १५ ॥

आप नवयुवक हैं, प्रथम अवस्था प्राप्त तरुण हैं । आप रूप तथा प्रभाव से युक्त कुलीन क्षत्रिय की तरह हैं ॥ १६ ॥

मैं सम्पत्ति देता हूँ । हाथी समूह से युक्त सेना को सुशोभित करते हुए उसका उपभोग करें । (अब मेरे) पृच्छने पर बतावें कि आपकी क्या जाति है ? ॥ १७ ॥

सिद्धार्थः—हिमालय की तराई के एक जनपद में कोशल देशवासी धन तथा पराक्रम से युक्त एक ऋषु राजा हैं ॥ १८ ॥

वे सूर्य-वंशी हैं और शाक्य जाति के हैं । महाराज ! मैं उनके कुल से प्रव्रजित हूँ । मैं विप्रियों की कामना नहीं करता ॥ १९ ॥

मैंने विप्रियों के दुष्परिणाम को देख कर (उन्हें) त्यागना कल्याण समझा है । मैं मुक्ति की गवेष्टा में जाता हूँ । मेरा मन इसी में रमता है ॥ २० ॥

पण्डवासुत समाप्त ।

## २८—पधान—सुत

[ निर्वाण की गवेषणा में रत सिद्धार्थ गौतम को मार (= कामदेव) विचलित करना चाहता है । लेकिन उसका प्रयत्न विफल हो जाता है— ]

बुद्धः—निर्वाण की प्राप्ति के लिए नेरञ्जरा नदी के पास पराक्रम पूर्वक ध्यान करने वाले और उसी प्रयत्न में लीनचित्त मेरे पास आकर मारने करुणा भरी यह बात कही—‘आप क्रुश हैं, विवर्ण हैं और मृत्यु आपके पास ही है’ ॥ १-२ ॥

आपके सहस्र अंश मृत्यु में हैं और एक अंश जीवन में । मित्र जीवित रहिए, जीना अच्छा है । जावित रह कर पुण्य कीजियेगा ॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अभिहोत्र करें तो बहुत पुण्य कमा सकते हैं । फिर मुक्ति के लिए इस प्रयत्न से क्या लाभ ? ॥ ४ ॥

दुग्गो मग्गो पधानाय, दुक्करो दुरभिसम्भवो ।  
 इमा गाथा भणं मारो, अट्ठा बुद्धस्स सन्तिके ॥ ५ ॥  
 तं तथावादिनं मारं, भग्वा एतदब्रवि ।  
 पमत्तबन्धु पापिम, येनत्थेन इधागतो ॥ ६ ॥  
 अणुमत्तेनपि पुब्बेन, अत्थो मग्गं न विज्जति ।  
 येसं च अत्थो पुब्बानं, ते मारो वत्तुमहरति ॥ ७ ॥  
 अत्थि सद्धा ततो विरियं, पब्बा च मम विज्जति ।  
 एवं मं पहितत्तम्पि, किं जीवमनपुच्छसि ॥ ८ ॥  
 नदीनम्पि सोतानि, अयं वातो विसोसये ।  
 किं च मे पहितत्तस्स, लोहितं नूपसुस्सये ॥ ९ ॥  
 लोहिते सुस्समानग्निह, पित्तं सेग्गं च सुस्सति ।  
 मंसेसु खीमयानेसु, भिय्यो चित्तं पसीदति ।  
 भिय्यो सति च पब्बा च, समाधि मम तिट्ठति ॥ १० ॥  
 तस्स मेवं विहरतो, पत्तस्सुत्तमवेदनं ।  
 कामे नापेक्खते चित्तं, पस्स सत्तस्स सुद्धतं ॥ ११ ॥  
 कामा ते पठमा सेना, दुतिया अरति वुच्चति ।  
 ततिया खुप्पिपासा ते, चतुत्थी तण्हा पवुच्चति ॥ १२ ॥  
 पञ्चमं धीनमिद्धं ते, छट्ठा भीरुपवुच्चति ।  
 सत्तमी विचकिच्छा ते, मक्खो थम्भो ते अट्ठमो ॥ १३ ॥  
 लाभो सिलोको सक्कारो, मिच्छालब्धो च यो यसो ।  
 यो चत्तानं समुक्कंसे, परे च अवज्जानति ॥ १४ ॥  
 एसा नमुचि ते सेना, कण्हस्साभिप्पहारिणी ।  
 न तं असूरो जिनाति, जेत्वा च लभते सुखं ॥ १५ ॥  
 एस मुञ्जं परिहरे, धिरत्थु इध जीवितं ।  
 संगामे मे मतं सेय्यो, यं चे जीवे पराजितो ॥ १६ ॥  
 पगाळ्हा एत्थ न दिस्सन्ति, एके समणब्राह्मणा ।  
 तं च मग्गं न जानन्ति, येन गच्छन्ति सुब्बता ॥ १७ ॥  
 समन्ता धजिनिं दिस्वा, युत्तं मारं सवाहनं ।  
 युद्धाय पच्चुगगच्छामि, मा मं ठाना अचावयि ॥ १८ ॥  
 यन्तेतं नप्पसहति, सेनं लोको सदेवको ।  
 तं ते पब्बाय गच्छामि आमं पत्तंव अस्सना ॥ १९ ॥

निर्वाण का मार्ग दुर्गम, दुष्कर और दुरारोह है । ये गाथाएँ कहता हुआ मार भगवान् के पास खड़ा रहा ॥ ५ ॥

इस प्रकार बोलने वाले मार को भगवान् ने यह कहा—‘प्रमत्तबन्धु पापी ! तुम किस लिए यहाँ आये हो ? ॥ ६ ॥

मुझे अणुमात्र पुण्य की भी आवश्यकता नहीं । जिन्हें पुण्य की आवश्यकता हो मार ! उन्हीं को उपदेश दे ॥ ७ ॥

मुझमें श्रद्धा, वीर्य और प्रज्ञा विद्यमान हैं । इस प्रकार ( निर्वाण प्राप्ति के ) प्रयत्न में रत मुझे जीने को क्यों कहते हो ? ॥ ८ ॥

( घोर प्रयत्न से उठा ) यह वायु नदियों की धाराओं को भी सुखा दे । क्या वह मेरे लोह को नहीं सुखावेगा ? ॥ ९ ॥

खून के सूखने पर पित्त और कफ सूखते हैं । मांस के क्षीण होने पर चित्त अधिकाधिक शान्त हो जाता है । तब मेरी स्मृति, प्रज्ञा और समाधि अधिकाधिक स्थिर हो जाती हैं ॥ १० ॥

इस प्रकार विहरने वाले उत्तम वेदना प्राप्त मेरा मन कामों की इच्छा नहीं करता । इस व्यक्ति की शुद्धि को देखो ॥ ११ ॥

( मार ! ) काम तेरी पहली सेना है, अरति दूसरी सेना कहलाती है । भूख-प्यास तेरी तीसरी सेना है, तृष्णा चौथी सेना है ॥ १२ ॥

स्त्यान-मृद्व है तेरी पाँचवीं सेना, भय छठीं सेना कहलाती है । शंका तेरी सातवीं सेना है, म्रक्ष तथा धृष्टता तेरी आठवीं सेना है ॥ १३ ॥

लाम, प्रशंसा, सत्कार, अनुचित उपाय से प्राप्त यश, अपने को ऊँचा दिखाना और दूसरों को नीचा दिखाना—पापीमार ! ( सत्पुरुषों पर ) प्रहार करनेवाली तुम्हारी सेना यही है । इसे अ-सूर जीत नहीं सकता । ( इसका ) विजेता सुख को प्राप्त होता है ॥ १४-१५ ॥

मैं मुझ तृण धारण करता हूँ । यहाँ ( पराजित हो कर ) जीना धिक्कार है । पराजित हो कर जीने की अपेक्षा संग्राम में मरना मुझे उत्तम है ॥ १६ ॥

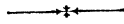
( वासनाओं में ) मग्न कुछ श्रमण-ब्राह्मण ( सत्य को ) नहीं देखते । वे उस मार्ग को नहीं जानते जिस पर सुव्रती चलते हैं ॥ १७ ॥

वाहन सहित सुसज्जित मार सेना को चारों ओर से देख कर मैं युद्ध के लिए निकलता हूँ जिसमें कि मार मुझे अपने स्थान से च्युत न कर दे ॥ १८ ॥

देव-मनुष्य सहित सारा संसार तुम्हारी जिस सेना को जीत नहीं पाता उसे (मैं) प्रज्ञा से उसी प्रकार नष्ट कर दूँगा जिस प्रकार पत्थर से कच्चे बर्तन को ॥ १९ ॥

वसिं कृत्वान संकण्णं, सतिं च सुप्पतिट्ठितं ।  
 रट्ठा रट्ठं विचरिस्सं, सावके विनयं पुथु ॥ २० ॥  
 ते अप्पमत्ता पहितत्ता, मम सासनकारका ।  
 अप्पामस्स ते गमिस्सन्ति, यत्थ गन्त्वा न सोचरे ॥ २१ ॥  
 सत्त वस्सानि भगवन्तं, अनुबन्धि पदा पदं ।  
 ओतारं नाधिगच्छिस्सं, सम्बुद्धस्स सतीमतो ॥ २२ ॥  
 मेदवण्णं पासाणं, वायसो अनुपरियगा ।  
 अपेत्थ मुदु विन्देम, अपि अस्सादना सिया ॥ २३ ॥  
 अलद्धा तत्थ अस्सादं, वायसेन्तो अपक्कमि ।  
 काकोव सेलमासज्ज, निब्बिजापेम गोतमं ॥ २४ ॥  
 तस्स सोकपरेतस्स, वीणा कच्छा अभस्सथ ।  
 ततो सो दुग्मनो यक्खो, तत्थेवन्तरधायथाति ॥ २५ ॥

पधानमुत्तं गिट्ठितं ।



## २९—सुभासित-मुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने.....  
 पे०.....भगवा एतदवोच—चतूहि भिक्खवे अङ्गेहि समन्नागता वाचा  
 सुभासिता होति, न दुब्भासिता, अनवज्जा च अननुवज्जा च विळ्ळून् ।  
 कतमेहि चतूहि ? इध भिक्खवे भिक्खु सुभासितं येव भासति नो दुब्भासितं,  
 धम्मं येव भासति नो अधम्मं, पियं येव भासति नो अप्पियं, सच्चं येव  
 भासति नो अलिकं । इमेहि खो भिक्खवे चतूहि अङ्गेहि समन्नागता वाचा  
 सुभासिता होति, नो दुब्भासिता, अनवज्जा च अननुवज्जा विळ्ळून्ति ।  
 इदमवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

सुभासितं उत्तममाहु सन्तो, धम्मं भणे नाधम्मं तं दुतियं ।  
 पियं भणे नाप्पियं तं ततियं, सच्चं भणे नालिकं तं चतुत्थन्ति ॥१॥

विचार को बश में रख, स्मृति को सुप्रतिष्ठित कर बहुत से श्रावकों को सुरक्षित बनाते हुए देश-देश विचरण करूँगा ॥ २० ॥

अप्रमत्त, निर्वाण-प्राप्ति में रत, मेरे अनुशासन को करने वाले वे ( उस ) निष्कामता (= निर्वाण) को प्राप्त करेंगे जहाँ पहुँचकर, फिर शोक नहीं करेंगे ॥ २१ ॥

**मारः—**

सात वर्ष तक मैं भगवान् के पीछे ही लगा था, लेकिन स्मृतिमान् सम्बुद्ध में कुछ भी दोष नहीं पाया ॥ २२ ॥

लाल पत्थर को चर्बी का टुकड़ा समझ कर कौवा उस पर झपटा कि कुछ कोमल स्वादिष्ट चीज मिलेगी । उसमें कुछ स्वाद न पा कौवा उड़ गया । मैं भी गौतम के पास जाकर ( वैसे ही ) निराश हो चला जा रहा हूँ जैसे कौवा पत्थर के टुकड़े के पास ॥ २३-२४ ॥

शोकाकुल उस मार की काँख से वीणा खिसक गई । वह दुःखी हो वहीं अन्तर्धान हो गया ॥ २५ ॥

**पदानुसुत्त समाप्त ।**

**२९—सुभासित—सुत्त**

[ भगवान् सुन्दर, धार्मिक, प्रिय तथा सत्य वचन ही बोलने का उपदेश देते हैं और वज्जीस इस का अनुमोदन करते हैं । ]

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में विहार करते थे । उस समय भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित कर कहा—‘भिक्षुओ ! चार अङ्गों से युक्त वचन अच्छा है न कि बुरा; विशों के अनुसार वह निरवय है, दोष रहित है । कौन से चार अंग ? भिक्षुओ ! यहाँ भिक्षु अच्छा वचन ही बोलता है न कि बुरा, धार्मिक वचन ही बोलता है न कि धार्मिक, प्रिय वचन ही बोलता है न कि अप्रिय, सत्य वचन ही बोलता है न कि असत्य । भिक्षुओ ! इन चार अंगों से युक्त वचन अच्छा है न कि बुरा, वह विशों के अनुसार निरवय तथा दोष रहित है ।

ऐसा बताकर भगवान् ने फिर कहा :—

सन्तों ने अच्छे वचन को ही उत्तम बताया है । धार्मिक वचन को ही बोले, न कि अधार्मिक वचन को—यह दूसरा है । प्रिय वचन को बोले, न कि अप्रिय वचन को—यह है तीसरा । सत्य वचन को ही बोले, न कि असत्य वचन को—यह है चौथा ॥ १ ॥

अथ खो आयस्मा वङ्गीसो उट्टायासना एकंसं चीवरं कत्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच-पटिभाति मं सुगताति । पटिभातु तं वङ्गीसाति भगवा अवोच । अथ खो आयस्मा वङ्गीसो भगवन्तं सम्मुखा सारूपाहि गाथाहि अभित्थवि--

तमेव भासं भासेय्य, यायत्तानं न तापये ।

परे च न विहिंसेय्य, सा वे वाचा सुभासिता ॥ २ ॥

पियवाचमेव भासेय्य, या वाचा पटिनन्दिता ।

यं अनादाय पापानि, परेसं भासते पियं ॥ ३ ॥

सच्चं वे अमता वाचा, एस धम्मो सनन्तनो ।

सच्चे अत्थे च धम्मे च, आहु सन्तो पतिट्ठिता ॥ ४ ॥

यं बुद्धो भासती वाचं, खेमं निब्बाणपत्तिया ।

दुक्खस्सन्ताकिरियाय, सा वे वाचानमुत्तमाति ॥ ५ ॥

सुभासितमुत्तं निट्ठितं ।

### ३०—सुन्दरिकभारद्वाज-मुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा कोसलेसु विहरति सुन्दरिकाय नदिया तीरे । तेन खो पन समयेन सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो सुन्दरिकाय नदिया तीरे अग्निं जुहति, अग्निहुत्तं परिचरति । अथ खो सुन्दरिक भारद्वाजो ब्राह्मणो अग्निं जुहत्वा अग्निहुत्तं परिचरित्वा, उट्टायासना समन्ता चतुद्दिशा अनुविलोकेसि-को नु खो इमं हव्यसेसं भुञ्जेय्याति । अइसा खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं अविदूरे अव्वतरस्मिं रुक्खमूले ससीसं पारुत्तं निसिन्नं, दिस्वान वामेन हत्थेन हव्यसेसं गहेत्वा, दक्खिनेन हत्थेन कमण्डलुं गहेत्वा, येन भगवा तेनुपसङ्गमि । अथ खो भगवा सुन्दरिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स पदसहेन सीसं विवरि । अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो

तब आयुष्मान् वंगीस ने आसन से उठकर, एक कन्धे पर चीवर सँभाल कर, भगवान् को हाथ जोड़ अभिवादन कर उन्हें कहा—‘भन्ते ! मुझे कुछ सूझता है ।’ भगवान् ने कहा—‘वंगीस ! उसे सुनाओ ।’ तब आयुष्मान् वंगीस ने भगवान् के सम्मुख अनुकूल गाथाओं में यह स्तुति कीः—

वह बात बोले जिससे न स्वयं कष्ट पावे और न दूसरे को ही दुःख हो, ऐसी ही बात सुन्दर है ॥ २ ॥

आनन्ददायी प्रिय वचन ही बोले । पापी बातों को छोड़ कर दूसरों को प्रिय वचन ही बोले ॥ ३ ॥

सत्य ही अमृत वचन है, यह सदा का धर्म है । सत्य, अर्थ और धर्म में प्रतिष्ठित सन्तों ने ( ऐसा ) कहा है ॥ ४ ॥

बुद्ध जो कल्याण वचन निर्वाण-प्राप्ति के लिए, दुःख का अन्त करने के लिए बोलते हैं, वही वचनों में उत्तम है ॥ ५ ॥

सुभासितसुत्त समाप्त ।

### ३०—सुन्दरिकभारद्वाज-सुत्त

[ सुन्दरिका नदी-तट पर हवन करने के बाद सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण हव्य-शेष दान करने के लिए किसी ब्राह्मण को देखता है । पास ही एक पेड़ के नीचे भगवान् ध्यानावस्थित बैठे हैं । ब्राह्मण भगवान् के पास जाकर जाति पूछता है । भगवान् उसे उपदेश करते हैं कि जाति के विषय में नहीं अपितु आचरण के विषय में पूछना चाहिए । आगे वे यह भी बताते हैं कि पुण्य की कामना करनेवाले को चाहिए कि अन्न-आग में न जलाकर किसी उचित मनुष्य को दान करे । भगवान् के सदुपदेश से प्रसन्न ब्राह्मण उनके पास प्रव्रज्या ग्रहण करता है — ]

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् कोशल में सुन्दरिका नदी तट पर विहार करते थे । उस समय सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण सुन्दरिका नदी तट पर अग्निहोत्र करता था । अग्नि की परिचर्या करता था । तब सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण अग्निहोत्र कर, अग्नि की परिचर्या कर, आसन से उठ के चारों ओर देखने लगा कि उसके हव्यशेष को खानेवाला कोई है या नहीं ? भारद्वाज ब्राह्मण ने कुछ दूर पर सिर से ओढ़ कर एक वृक्ष के नीचे बैठे भगवान् को देखा, देख बायें हाथ से हव्य-शेष और दाहिने हाथ से कमण्डल को लेकर भगवान् के पास गया । तब भगवान् ने सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण की आहट को पाकर सरपर से कपड़ा

ब्राह्मणो, मुण्डो, अयं भवं, मुण्डको अयं भवन्ति, ततोव पुन निवित्तितुकामो  
अहोसि । अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसिमुण्डापि हि  
इधेकच्चे ब्राह्मणा भवन्ति, यन्नूनाहं उपसङ्कमित्वा जातिं पुच्छेय्यन्ति । अथ  
खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगवा तेन उपसङ्कभि, उपसङ्कमित्वा भग-  
वन्तं एतदवोच—किं जच्चो भवन्ति । अथ खो भगवा सुन्दरिकभारद्वाजं ब्राह्मणं  
गाथाहि अज्झभासि—

न ब्राह्मणो नोम्हि न राजपुत्तो, न वेस्सायनो उद कोचि नोम्हि ।  
गोत्तं परिब्बाय पुथुज्जनानं, अकिंचनो मन्त चरामि लोके ॥ १ ॥

सङ्घाटिवासी अगहो चरामि, निवुत्तकेसो अभिनिव्वुत्तो ।  
अलिप्पमानो इध माणवेहि, अकल्लमं (ब्राह्मण) पुच्छसि गोत्तपव्हं ॥ २ ॥

पुच्छन्ति वे भो ब्राह्मणा । ब्राह्मणेहि, सह ब्राह्मणो नो भवन्ति ।  
ब्राह्मणो चे त्वं ब्रूसि, मं च ब्रूसि अब्राह्मणं ।  
तं सावित्तिं पुच्छामि, तिपदं चतुवीसतक्खरं ॥ ३ ॥

किं निस्सिता इसयो, मनुजा खत्तिया ब्राह्मणा,  
देवतानं यञ्जमकप्पयिसु, पुथु इध लोके ।  
यदन्तगू वेदगू यञ्जकाले, यस्साहुतिं लभे तस्सिज्जेति ब्रूमि ॥ ४ ॥

अद्धा हि तस्स हुतमिज्जे ( ति ब्राह्मणो ), यं तादिसं वेदगुं अहसाम ।  
तुम्हादिसानं हि अदस्सनेन, अञ्जो जनो भुञ्जति पूरळासं ॥ ५ ॥

तस्मातिह त्वं ब्राह्मण अत्थेन, अत्थिको उपसङ्ककम्म पुच्छ ।  
सन्तं विधूमं अनिघं निरासं, अप्पेविध अभिविन्दे सुमेधं ॥ ६ ॥

यञ्जे रताहं ( भो गोतम ) यञ्जं यिट्ठुकामो ।  
नाहं पजानामि अनुसासतु मं भवं, यत्थ हुतं इज्जते ब्रूहि मे तं ॥ ७ ॥

हटा दिया । तब सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण ने यह व्यक्ति तो मुण्डक है ! यह सोच वहाँ से लौटना चाहा । फिर सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण के मन में ऐसा ही हुआ—‘इन मुण्डकों में कुछ ब्राह्मण भी होते हैं, इसलिए चल कर जाति पूछूँ ।’ तब सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, पास जाकर भगवान् से ऐसा कहा—‘आप किस जात के हैं ?’

तब भगवान् सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण को गाथाओं में उत्तर दिया :—

मैं न तो ब्राह्मण हूँ, न राजपुत्र हूँ, न वैश्य हूँ, न कोई और ही हूँ । साधारण लोगों के गोत्र को अच्छी तरह जान कर मैं विचारपूर्वक अकिंचन भाव से संसार में विचरण करता हूँ ॥ १ ॥

चीवर पहन कर, वेधर हो, सर मुँड़ा कर, पूर्ण रूप से शान्त हो, यहाँ लोगों में अनासक्त हो विचरण करता हूँ । ब्राह्मण ! मुझसे गोत्र पूछकर तुमने अनुचित किया है ॥ २ ॥

ब्राह्मण:—

ब्राह्मण ब्राह्मणों से पूछते हैं कि आप ब्राह्मण हैं कि नहीं ?

बुद्ध:—

तुम अपने को ब्राह्मण बताते हो और मुझको अब्राह्मण । तुमसे त्रिपद और चौबीस अक्षर वाले ‘सावित्रि’ मंत्र को पूछता हूँ ॥ ३ ॥

ब्राह्मण:—

इस संसार में ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने किस कारण देवताओं के नाम बहुत यज्ञ किये थे ॥ ४ ॥

बुद्ध:—

यज्ञ के समय पारंगत, ज्ञानी किसी को आहुति मिल गई तो उसको यज्ञ सफल होता है, ( ऐसा मैं ) कहता हूँ ।

ब्राह्मण:—

उस प्रकार के ज्ञानी के दर्शन से अवश्य उसको यज्ञ सफल होगा । आप जैसे लोगों के दर्शन न होने से अन्य जन हव्य को खाते हैं ॥ ५ ॥

बुद्ध:—

इसलिए ब्राह्मण ! शान्त, क्रोध रहित, निष्पापी, तृष्णा रहित महाज्ञानी के पास आकर अर्थ की बात पूछो, कदाचित्त (तुम) कुछ समझोगे ॥ ६ ॥

ब्राह्मण:—

हे गौतम ! मैं यज्ञ में रत हूँ, यज्ञ करना चाहता हूँ । मैं उसे नहीं जानता, इसलिए आप उपदेश दें, आप बतावें कि यज्ञ कैसे सफल होता है ?

तेन हि त्वं ब्राह्मण ओदहस्सु सोतं धम्मं ते देसिस्सामि—  
मा जार्ति पुच्छ चरणं च पुच्छ, कट्ठा हवे जायति जातवेदो ।  
नोचा कुलीनोपि मुनी धितीमा, आजानियो होति हिरीनिसेधो ॥८॥

सच्चेन दन्तो दमसा उपेतो, वेदन्तगू वुसितब्रह्मचरियो ।  
कालेन तम्हि हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ ९ ॥

ये कामे हित्वा अगहा चरन्ति, सुसब्बतत्ता तसरं व उज्जुं ।  
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ १० ॥

ये वीतरागा सुसमाहितिन्द्रिया, चन्दोव राहुगहणा पमुत्ता ।  
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ ११ ॥

असज्जमाना विचरन्ति लोके, सदा सता हित्वा ममायितानि ।  
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ १२ ॥

यो कामे हित्वा अभिभुज्यचारी, यो वेदि जातिमरणस्स अन्तं ।  
परिनिब्बुतो उदकरहदोव सीतो, तथागतो अरहति पूरब्बासं ॥ १३ ॥

समो समेहि विसमेहि दूरे, तथागतो होति अनन्तपब्बो ।  
अनूपलित्तो इध वा हुं वा, तथागतो अरहति पूरब्बासं ॥ १४ ॥

यम्हि न माया वसती न मानो, यो वीतलोभो अममो निरासो ।  
पनुण्णकोधो अभिनिब्बुतत्तो, यो ब्राह्मणो सोकमलं अहासि ।  
तथागतो अहरति पूरब्बासं ॥ १५ ॥

निवेसनं यो मनसो अहासि, परिग्गहा यस्स न सन्ति केचि ।  
अनुपादियानो इध वा हुं वा, तथागतो अरहति पूरब्बासं ॥ १६ ॥

समाहितो यो उदतारि ओघं, धम्मञ्चासि परमाय दिट्ठिया ।  
खीणासवो अन्तिमदेहधारी, तथागतो अरहति पूरब्बासं ॥ १७ ॥

बुद्धः—

तत्र ब्राह्मण ! कान दो । मैं उपदेश देता हूँ :—

जाति के विषय में न पूछो, आचरण के विषय में पूछो । लकड़ी से आग पैदा होती ही है; ( इसी प्रकार ) नीच कुल में पैदा हो कर भी मुनि धृतिमान, उत्तम और पाप-लज्जा से संयत होते हैं ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से यज्ञ करता है ( उसे चाहिए कि ) सत्य से दान्त, दम से युक्त, ज्ञान पारङ्गत, ब्रह्मचर्यवास समाप्त मुनि के पास उचित समय पर हव्य पहुँचावे ॥ ९ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से यज्ञ करता है ( उसे चाहिए कि ) तसर की तरह ऋजु, सुसंयमी, विषयों को त्याग बेघर हो विचरने वाले ( जो मुनि हैं ) उनको समय पर हव्य अर्पण करे ॥ १० ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से यज्ञ करता है ( उसे चाहिए कि ) राहु के ग्रहण से मुक्त चन्द्र समान जो वीतरागी और सुसंयत इन्द्रिय वाले हैं, उनको उचित समय पर हव्य अर्पण करे ॥ ११ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से यज्ञ करता है ( उसे चाहिए कि ) जो सदा जागरूक हो, कामनाओं को छोड़, अनासक्त, हो संसार में विचरण करते हैं उनको समय पर हव्य अर्पण करें ॥ १२ ॥

जो विषयों को छोड़ निर्भय रूप से विचरण करते हैं, जिन्होंने जन्म-मृत्यु का अन्त जान लिया है, उपशान्त, गम्भीर जलाशय की तरह शान्त तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ १३ ॥

साधुओं के प्रति समान व्यवहार वाले, असाधुओं से दूर तथागत अनन्तज्ञानी हैं । लोक-परलोक में अलिप्त तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ १४ ॥

जिन में न माया है, न अभिमान है, जो लोभ, अहंकार और तृष्णा रहित हैं, जो क्रोध को दूर कर उपशान्त हो गये हैं और जिन ब्राह्मण ने शोक रूपी मल को दूर किया है ( ऐसे ) तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ १५ ॥

जिन्होंने मन से वासनाओं को दूर किया है, जिन्हें किसी का परिग्रह नहीं है, इस लोक या परलोक में अनासक्त तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ १६ ॥

जिन्होंने समाधिस्थ हो प्रवाह को पार किया है और उत्तम दृष्टि से धर्म को जान लिया है, वासना रहित, अन्तिम देहधारी तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ १७ ॥

भवासवा यस्स वची खरा च, विधूपिता अत्थगता न सन्ति ।  
स वेदगू सब्बधि विप्पमुत्तो, तथागतो अहरति पूरब्बासं ॥ १८ ॥

सङ्गातिगो यस्स न सन्ति सङ्गा, यो मानसत्तेसु अमानसत्तो ।  
दुक्खं परिब्बाय सुखेत्तवत्थुं, तथागतो अरहति पूरब्बासं ॥ १९ ॥

आसं अनिस्साय विवेकदंस्सी, परवेदियं दिट्ठि मुपातिवत्तो ।  
आरम्भणा यस्स न सन्ति केचि, तथागतो अरहति पूरब्बासं ॥ २० ॥

परोवरा यस्स समेच्च धम्मा, विधूपिता अत्थगता न सन्ति ।  
सन्तो उपादानक्खये विमुत्तो, तथागतो अहरति पूरब्बासं ॥ २१ ॥

संयोजनं जातिखयन्तदस्सी, योपानुदि रागपथं असेसं ।  
सुद्धो निद्दोसो विमलो अकाचो, तथागतो अरहति पूरब्बासं ॥ २२ ॥

यो अत्तनात्तानं नानुपस्सति, समाहितो उज्जुगतो ठितत्तो ।  
सा वे अनेजो अखिलो अकंखो, तथागतो अहरति पूरब्बासं २३ ॥

मोहन्तरा यस्स न सन्ति केचि, सब्बेसु धम्मेसु च बाणदस्सी ।  
सरीरं च अन्तिमं धारेति, पत्तो च सम्बोधिमनुत्तरं सिवं ।  
एत्तावता यक्खस्स सुद्धी, तथागतो अरहति पूरब्बासं ॥ २४ ॥

हुतं च मय्हं हुतमत्थु सच्चं, यं तादिसं वेदगुनं अलत्थं ।  
ब्रह्मा हि सक्खि पटिगणहातु मे भगवा, भुञ्जतु मे भगवा पूरब्बासं ॥ २५ ॥

गाथाभिगीतं मे अभोजनेय्यं, संपस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो ।  
गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरेसा ॥ २६ ॥

अब्बेन च केवलिनं महेसिं, खीणासवं कुक्कुच्चवूपसन्तं ।  
अन्नेन पानेन उपट्ठहंस्सु, खेत्तं हि तं पुब्बपेक्खस होति ॥ २७ ॥

साधाहं भगवा तथा विजब्बं, यो दक्खिणं भुञ्जेय्य मादिसस्स ।  
यं यब्बकाले परियेसमानो, पप्पुय्य तव सासनं ॥ २८ ॥

जिन में भव-तृष्णा और कटु भाषण नष्ट हैं, अस्तगत हैं, ज्ञान पारङ्गत, सर्व प्रकार मुक्त तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ १८ ॥

जो आसक्तियों से परे हैं, जिन में आसक्तियाँ नहीं हैं, जो अभिमानी लोगों में अभिमान रहित हैं, जिन्होंने दुःख के क्षेत्र (और उसकी) वस्तुओं (= हेतु-प्रत्यय) को अच्छी तरह जान लिया है (ऐसे) तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ १९ ॥

जो तृष्णा रहित हैं, निर्वाणदर्शी हैं, दूसरों की दृष्टियों से परे हैं और जिनके लिए कहीं कुछ भी विषयारम्भण नहीं हैं (ऐसे) तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ २० ॥

ज्ञान द्वारा जिनमें आदि से अन्त तक वासनाएँ नष्ट हैं, अस्तगत हैं; शान्त और तृष्णाशून्य द्वारा मुक्त तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ २१ ॥

जिन्होंने जन्म-क्षय के अन्त को देखा है, निःशेष रागपथ तथा संयोजनों (= मानसिक-बन्धन) को दूर किया है; शुद्ध, निर्दोषी, विमल, मुपरिशुद्ध तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ २२ ॥

जो अपने में (= पाँच स्कन्धों में) आत्मा को नहीं देखता, समाधिस्थ, ऋजुगामी, स्थिर चित्त, पाप रहित, भ्रष्ट रहित, शंका रहित वह तथागत अवश्य हव्य के योग्य हैं ॥ २३ ॥

जिन के अन्दर किसी प्रकार का मोह नहीं है, (जो) सब बातों को ज्ञान से देखते हैं और अन्तिम शरीर को धारण करते हैं, मनुष्य की पूर्ण शुद्धि रूपी क्षेम और उत्तम सम्बोधि-प्राप्त तथागत हव्य के योग्य हैं ॥ २४ ॥

ब्राह्मणः—

आप जैसे ज्ञान पारङ्गत को पाकर मेरा यज्ञ हो। आप साक्षात् ब्रह्म हैं। भगवान् मेरा भोजन स्वीकार करें, भगवान् ! मेरा हव्य ग्रहण करें ॥ २५ ॥

बुद्धः—

धर्मोपदेश से प्राप्त भोजन मेरे ग्रहण करने योग्य नहीं। ब्राह्मण ! ज्ञानियों का यह धर्म नहीं है। धर्मोपदेश से प्राप्त (भोजन) को बुद्ध स्वीकार नहीं करते। ब्राह्मण ! यही धार्मिक रीति है ॥ २६ ॥

आश्रवक्षीण,<sup>२४</sup> मानसिक चञ्चलता रहित, केवली महर्षि की सेवा दूसरे अन्न और पान से करे, पुण्यापेक्षी के लिए वे क्षेत्र हैं ॥ २७ ॥

ब्राह्मणः—

अच्छा, भगवान् ! मैं जानना चाहता हूँ कि मुझ जैसे की दक्षिणा कौन ग्रहण करे ? आप के धर्म को ग्रहण कर मैं यज्ञ के समय किसको खोजूँ ॥ २८ ॥

सारम्भा यस्स विगता, वित्तं यस्स अनाविलं ।  
विप्पमुत्तो च कामेहि, थीनं यस्स पनूदितं ॥ २९ ॥

सीमन्तानं विनेतारं, जातिमरणकोविदं ।  
मुनिं मोनेय्यसम्पन्नं, तादिसं यञ्जमागतं ॥ ३० ॥

भकुटिं विनयित्वान्, पञ्जलिका नमस्सथ ।  
पूजेथ अन्नपानेन, एवं इज्झन्ति दक्खिणा ॥ ३१ ॥

बुद्धो भवं अरहति पूरळासं, पुञ्जक्खेत्तमनुत्तरं ।  
आयागो सब्बलोकस्स, भोतो दिन्नं महप्फलन्ति ॥ ३२ ॥

अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच-अभिक्रन्तं  
भो गोतम...पे०...अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो । एसाहं भवन्तं  
गोतमं सरणं गच्छामि, धम्मं च भिक्खु सङ्गं च । लभेय्याहं भोतो  
गोतमस्स सन्तिके पबज्जं, लभेय्यं उपसुम्पदन्ति । अलत्थ खो सुन्दरिक-  
भारद्वाजो ब्राह्मणो.....पे०.....अरहतं अहोसीति ।

सुन्दरिकभारद्वाजसुत्तं निवृत्त ।

### ३१—माघ-सुत्तं

एवं मे सुत्तं । एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पञ्चते अथ  
खो माघो माणवो येन भगवा तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं स-  
म्मोदि । सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं  
निसिन्नो खो माघो माणवो भगवन्तं एतदवोच-अहं हि भो गोतम दायको

बुद्धः—

जिनमें संघर्ष नहीं हैं, जिनका चित्त शान्त है, जो कामों से मुक्त हैं, जिन्होंने आलस्य को दूर किया है, वासनाओं को नाश करनेवाले, जन्म-मृत्यु को जान-नेवाले, यज्ञ के समय सम्प्राप्त इस प्रकार के ज्ञानी मुनिको प्रसन्नता के साथ अभिषादन करो और अन्न-पान से उनकी सेवा करो; इस प्रकार की दक्षिणाएँ सफल होती हैं ॥ २९-३१ ॥

ब्राह्मणः—

आप बुद्ध हव्य के योग्य हैं। आप उत्तम पुण्य-क्षेत्र हैं। आप सारे संसार के पूज्य हैं। आप को दिया (दान) महत्फल होता है।

आश्चर्य है ! गौतम ! आश्चर्य है ! गौतम ! जिस प्रकार कोई उलटे को पलट दे, औंधे को सीधा कर दे, भटके को मार्ग बता दे या अन्धकार में तेल प्रदीप धारण करे जिससे कि आँखवाले रूप देख लें, इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया। सो मैं भगवान् गौतम की शरण जाता हूँ, धर्म तथा संघ की भी। मैं आप गौतम के पास प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा लेना चाहता हूँ।

सुन्दरिक भारद्वाज ब्राह्मण ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई उपसम्पदा<sup>२३</sup> पाई। उपसम्पदा<sup>२४</sup> के कुछ समय बाद आयुष्मान् सुन्दरिक भारद्वाज एकान्त में अप्रमत्त, उद्योगी तथा तत्पर हो, जिस अर्थ के लिए कुलपुत्र सम्यक् प्रकार से घर से दूर हो विहरता है, उस अनुत्तर ब्रह्मचर्य के अन्त को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त करने विहर लगे। उन्होंने जान लिया—“जन्म क्षीया हुआ, ब्रह्मचर्य पूर्ण हुआ, कृतकृत्य हो गया और पुनर्जन्म रुक गया।”

आयुष्मान् सुन्दरिक भारद्वाज अर्हन्तो<sup>२५</sup> में एक हुए।

सुन्दरिक भारद्वाजसुत्त समाप्त।

### ३१—माघ—सुत्त

[ दानी माघ माणवक भगवान् से दक्षिणाहं के विषय में पूछता है। भगवान् निष्काम मुन्युष्य को दक्षिणाहं बताते हैं— ]

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् राजगृह में गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते थे। उस समय माघ माणवक जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर कुशल-संवाद पूछ कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे माघ माणवक ने भगवान् से यह कहा—

दानपति वदञ्ज् याचयोगो, धम्मेन भोगे परियेसामि, धम्मेन भागे परिये-  
सित्वा धम्मलद्धेहि भोगेहि धम्माधिगतेहि एकस्सपि ददामि, द्विन्नम्पि ददामि,  
तिण्णम्पि ददामि, चतुन्नम्पि ददामि, पञ्चन्नम्पि ददामि, छन्नम्पि ददामि, सतन्न-  
म्पि ददामि, अट्ठन्नम्पि ददामि, नवन्नम्पि ददामि, दसन्नम्पि ददामि, बीसायपि  
ददामि, तिसायपि ददामि, चत्तारीसायपि ददामि, पञ्चासायपि ददामि,  
सतस्सपि ददामि, भिय्योपि ददामि; कञ्चाहं भो गोतम एवं ददन्तो एवं  
यजन्तो बहुं पुञ्जं पसवामीति ? तग्घ त्वं माणव एवं ददन्तो एवं यजन्तो बहुं  
पुञ्जं पसवसि । यो खो माणव दायको दानपति वदञ्ज् याचयोगो धम्मेन  
भोगे परियेसति, धम्मेन भोगे परियेसित्वा धम्मलद्धेहि भोगेहि धम्माधिगतेहि  
एकस्सपि ददाति... पे०... सतस्सपि ददाति, भिय्योपि ददाति, बहुंसो  
पुञ्जं पसवतीति । अथ खो माघो माणवो भगवन्तं गाथाय अञ्जभासि--

पुच्छामहं भो गोतमं वदञ्ज् ( इति माघो माणवो ),  
कासायवासिं अगहं चरन्तं ।

यो याचयोगो दानपति गहट्ठो, पुञ्जत्थिको यजति पुञ्जपेक्खो ।  
ददं परेसं इध अन्नपानं, कथं हुतं यजमानस्स सुज्जे ॥ १ ॥

( यो ) याचयोगो दानपति गहट्ठो ( माघोति भगवा ),

पुञ्जत्थिको यजति पुञ्जपेक्खो ।

ददं परेसं इध अन्नपानं, आराधये दक्खिण्ये हि तादि ॥ २ ॥

यो याचयोगो दानपति गहट्ठो ( इति माणवो ),

पुञ्जत्थिको यजति पुञ्जपेक्खो ।

ददं परेसं इध अन्नपानं, अम्हाहि मे भगवा दक्खिण्ये ॥ ३ ॥

ये वे असत्ता विचरन्ति लोके, अकिञ्चनो केवलिनो यतत्ता ।

कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्जपेक्खो यजेथ ॥ ४ ॥

ये सब्बसंयोजनबन्धनच्छिदा, दन्ता विमुत्ता अनिघा निरासा ।

कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्जपेक्खो यजेथ ॥ ५ ॥

‘गौतम ! मैं दायक हूँ, दानपति हूँ, याचकों को समझने वाला हूँ, याचने योग्य हूँ । धार्मिक रीति से धन कमा कर, धर्म से लब्ध, धर्म से प्राप्त धन एक को भी देता हूँ, दो को भी देता हूँ, तीन को भी देता हूँ, चार को भी देता हूँ, पाँच को भी देता हूँ, छः को भी देता हूँ, सात को भी देता हूँ, आठ को भी देता हूँ, नौ को भी देता हूँ, दस को भी देता हूँ, बीस को भी देता हूँ, तीस को भी देता हूँ, चालीस को भी देता हूँ, पचास को भी देता हूँ, सौ को भी देता हूँ, बहुतों को भी देता हूँ । क्या गौतम ! इस प्रकार देने वाला, चढ़ानेवाला मैं बहुत पुण्य कमाता हूँ ?’

‘हाँ माणवक ! इस प्रकार देनेवाले, चढ़ानेवाले तुम बहुत पुण्य अवश्य कमाते हो । हे माणवक ! जो दायक दानपति, याचकों को समझने वाला, याचने योग्य ( मनुष्य ) धर्म से धन लाभ कर, धर्म से धन प्राप्त कर एक को भी देता है, दो को भी देता है, तीन को भी देता है, चार को भी देता है, पाँच को भी देता है, छः को भी देता है, सात को भी देता है, आठ को भी देता है, नौ को भी देता है, दस को भी देता है, बीस को भी देता है, तीस को भी देता है, चालीस को भी देता है, पचास को भी देता है, सौ को भी देता है, बहुतों को भी देता है, वह बहुत पुण्य कमाता है ।’

तब माघ माणवक ने गाथा में भगवान् से कहा :—

काणायवस्त्रधारी, याजकों को जाननेवाले आप गौतम से पूछता हूँ कि पुण्यार्थी हो, पुण्य का अपेक्षी हो, दूसरों को अन्न-पान दान करने वाले, याचने योग्य, दानपति, गृहस्थ का दान किसे देने से महत्फल होता है ? ॥ १ ॥

बुद्ध :—

पुण्यार्थी हो, पुण्यापेक्षी हो, जो याचने योग्य, दानपति, गृहस्थ, दूसरों को अन्न-पान का दान देता है ( उसे ) चाहिए कि स्थिर दक्षिणाहों को ( दान से ) प्रसन्न करें ॥ २ ॥

माघ :—

पुण्यापेक्षी हो, याचने योग्य दानपति, गृहस्थ दूसरों को अन्न-पान का दान करता है । भगवान् ! ( दानी ) मुझे दक्षिणाह बतावें ॥ ३ ॥

बुद्ध :—

जो ब्राह्मण ! पुण्य की अपेक्षा से दान देता है ( उसे चाहिए कि ) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे जो कि अर्किचन हैं, केवली हैं, संयमी हैं ( और ) अनासक्त भाव से संसार में विचरते हैं ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान देता है ( उसे चाहिए कि ) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे, जिन्होंने सब मानसिक बन्धनों को तोड़ दिया है, ( और जो ) दान्त हैं, विमुक्त हैं, दुःखरहित हैं, तृष्णा-रहित हैं ॥ ५ ॥

ये सब्बसंयोजनविप्पमुत्ता, दन्ता विमुत्ता अनिघा निरासा ।  
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ ६ ॥

रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं, खीणासवा वुसितब्रह्मचरिया ।  
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ ७ ॥

येसु न माया वसति न मानो, ये वीतलोभा अममा निरासा ।  
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ ८ ॥

ये वे न तण्हासु उपातिपन्ना, वितरेय्य ओघं अममा चरन्ति ।  
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ ९ ॥

येसं तण्हा नत्थि कुहिञ्चि लोके, भवाभवाय इध वा हुरं वा ।  
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ १० ॥

ये कामे हित्वा अगहा चरन्ति, सुसञ्जतत्ता तसरं व उज्जुं ।  
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ ११ ॥

ये वीतरागा सुसमाहितिन्द्रिया, चन्दोव राहुगहणा पमुत्ता ।  
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ १२ ॥

समिताविनो वीतरागा अकोपा, येसं गति नत्थि इध विप्पहाय ।  
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ १३ ॥

जहेत्वा जातिमरणं असेसं, कथं कथिं सब्बमुपातिवत्ता ।  
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ १४ ॥

ये अत्तदीपा विचरन्ति लोके, अकिञ्चना सब्बधिविप्पमुत्ता ।  
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ १५ ॥

ये हेत्थ जानन्ति यथातथा इदं, अयमन्तिमा नत्थि पुनब्भवोति ।  
कालेन तेसु हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बपेक्खो यजेथ ॥ १६ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान करता है ( उसे चाहिए कि ) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे जो कि सब बन्धनों से मुक्त हैं, दान्त, विमुक्त हैं, दुःख रहित हैं और तृष्णा रहित हैं ॥ ६ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान देता है ( उसे चाहिए कि ) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे जिन्होंने राग, द्वेष तथा मोह को दूर किया है, ( और जो ) वासना रहित हैं, ब्रह्मचर्यवास कर चुके हैं ॥ ७ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान देता है ( उसे चाहिए कि ) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे जिनमें न माया है, न मान है ( और ) जो लोभ, अहंकार ( तथा ) तृष्णा रहित हैं ॥ ८ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान करता है ( उसे चाहिए कि ) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे जो कि तृष्णा में फँसे नहीं हैं, प्रवाह को पार कर निरहंकार भाव से विचरते हैं ॥ ९ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान देता है ( उसे चाहिए कि ) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे जिनमें इस लोक या परलोक में कहीं भी उत्पत्ति या विनाश के लिए तृष्णा नहीं है ॥ १० ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान करता है ( उसे चाहिए कि ) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे जो कि सुसंयमी हैं, तसर की तरह ऋजु हैं, ( और ) विषयों को त्याग कर बेघर हो विचरते हैं ॥ ११ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान देता है ( उसे चाहिए कि ) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे जो कि वीतरागी हैं, सुसंयत इन्द्रिय वाले हैं और राहु से प्रमुक्त चन्द्र की तरह ( बन्धन मुक्त ) हैं ॥ १२ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान देता है ( उसे चाहिए कि ) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे जो कि वासना रहित हैं, राग रहित हैं, कोप रहित हैं ( और ) जिनके लिए यह जन्म छोड़ दूसरा जन्म नहीं है ॥ १३ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान देता है ( उसे चाहिए कि ) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे जो जन्म-मृत्यु को निःशेष छोड़ सब संशयों से परे हो गये हैं ॥ १४ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान देता है ( उसे चाहिए कि ) उचित समय पर उनको हव्य पहुँचावे जो अकिंचन हैं, सर्व प्रकार से मुक्त हैं ( और ) अपने को प्रदीप बनाकर संसार में विचरते हैं ॥ १५ ॥

जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान देता है ( उसे चाहिए कि ) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे जो यथार्थ रूप से जानते हैं कि यह मेरा अंतिम जन्म है और पुनर्जन्म नहीं होगा ॥ १६ ॥

यो वेदगूज्ञानरतो सतीमा, सम्बोधिपत्तो सरणं बहुन्नं ।

कालेन तम्हि हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुब्बापेक्खो यजेथ ॥ १७ ॥

अद्धा अमोघा मम पुच्छना अहु, अक्खासि मे भगवा दक्खिणेय्ये ।

त्वं हेत्थ जानासि यथातथा इदं, तथा हि ते विदितो एस धम्मो ॥ १८ ॥

यो याचयोगो दानपति गहट्ठो ( इति माघो माणवो ),

पुब्बत्थिको यजति पुब्बपेक्खो ।

ददं परेसं इध अन्नपानं, अक्खाहि मे भगवा यब्बसम्पदं ॥ १९ ॥

यजस्सु यजमानो (माघोति भगवा), सब्बत्थ च विप्पसादेहि चित्तं ।

आरम्भणं यजमानस्स यब्बं, एत्थ पतिट्ठाय जहाति दोसं ॥ २० ॥

सो वीतरागो पविनेय्य दोसं, मेत्तं चित्तं भावयं अप्पमाणं ।

रत्तिं दिवं सततं अप्पमत्तो, सब्बा दिसा फरते अप्पमब्बं ॥ २१ ॥

को सुज्झति मुञ्चति बज्झति च, केनत्तना गच्छति ब्रह्मलोकं ।

अजानतो मे मुनि ब्रूहि पुट्ठो, भगवा हि मे सक्खि ब्रह्मज्ज दिट्ठो ।

तुवं हि नो ब्रह्मसमोति सच्चं, कथं उप्पज्जति ब्रह्मलोकं (जुतीमा) ॥ २२ ॥

यो यजति तिविधं यब्बसम्पदं ( माघोति भगवा ),

आराधये दक्खिणेय्ये हि तादि ।

एवं यजित्वा सम्मा याचयोगो, उप्पज्जति ब्रह्मलोकन्ति ब्रूमीति ॥ २३ ॥

एवं वुत्ते माघो माणवो भगवन्तं एतदवोच-अभिक्कन्तं भो गोतम.....

पे०..... अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतन्ति ।

माघसुत्तं निद्धितं ।



जो ब्राह्मण पुण्य की अपेक्षा से दान देता है ( उसे चाहिए कि ) उचित समय पर उनको हव्य अर्पण करे जो ज्ञानी हैं, ध्यान में रत हैं, स्मृतिमान् हैं, सम्बोधि प्राप्त हैं और बहुतों की शरण हैं ॥ १७ ॥

**माघ :—**

सचमुच मेरा प्रश्न खाली नहीं गया । भगवान् ने मुझे दक्षिणार्ह बताये हैं । यहाँ आप ही इस यथार्थता को जानते हैं, इसलिए आपही को यह धर्म विदित है ॥ १८ ॥

पुण्यार्थी हो, पुण्यापेक्षी हो, याचने योग्य; दानपति गृहस्थ दूसरों को अन्न-पान का दान करता है । भगवान् मुझे दान का सुपरिणाम बतावें ॥ १९ ॥

**बुद्ध :—**

**माघ !** दान करो और सर्वत्र अपने मन को प्रसन्न रखो । दान ही दायक का आरम्भण है । इसमें प्रतिष्ठित हो ( उसका मन ) द्वेष छोड़ता है ॥ २० ॥

वह वीतरागी हो, द्वेष का दमन कर, असीम मैत्री भावना करने वाला हो, रात दिन सतत अप्रमत्त हो, सब, दिशाओं में असीम ( मैत्री ) भाव फैलाता है ॥ २१ ॥

**माघ :—**

मुझ अज्ञानी को मुनि बतावें कि कौन शुद्ध होता है, मुक्त होता है । बन्धन में पड़ता है और ब्रह्म लोक को जाता है ? भगवान् मेरे देखे साक्षात् ब्रह्म हैं । यह सत्य है कि आप हमारे लिए ब्रह्म सम हैं । धृतिमान् ! ब्रह्म लोक में उत्पत्ति किस प्रकार होती है ? ॥ २२ ॥

**बुद्ध :—**

**माघ !** मैं कहता हूँ । जो तीन प्रकार का दान देता है वह दक्षिणार्हों को प्रसन्न रखता है । इस प्रकार अच्छी तरह दान देकर दाता ब्रह्मलोक में जन्म लेता है ॥ २३ ॥

‘आश्चर्य है ! हे गौतम ! आश्चर्य है ! हे गौतम ! हे गौतम ! जिस प्रकार औंधे को सीधा कर दे, ढँके को खोल दे, भटके को राह बता दे या अन्धकार में तेल-प्रदीप जलादे, जिससे कि आँख वाले रूप देख सकें, इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है । हम आप गौतम की शरण जाते हैं, धर्म तथा भिक्षु-संघ की भी । आप गौतम हमें आज से जीवन पर्यन्त शरणागत उपासक धारण करें ।’

**माघसुत्त समाप्त ।**

## ३२—सभिय-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा राजगृहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे ।  
 तेन खो पन समयेन सभियस्स परिव्वाजकस्स पुराणसालोहिताय देवताय  
 पब्बा उद्दिट्ठा होन्ति—यो ते सभिय समणो वा ब्रह्मणो वा इमे पब्बहे पुट्ठो  
 व्याकरोति, तस्स सन्तिके ब्रह्मचरियं चरेय्यासीति । अथ खो सभियो परि-  
 व्वाजको तस्सा देवताय सन्तिके पब्बहे उग्गहेत्वा, ये ते समणब्राह्मणा  
 सङ्घिनो गणिनो गणाचरिया आता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता  
 बहुजनस्स, सेय्यथीदं—पूरणो कस्सपो, मक्खलिगोसालो, अजितो  
 केसकम्बली, पकुधो कञ्जायनो, संजयो बेलट्ठिपुत्तो, निगण्ठो नातपुत्तो । ते  
 उपसङ्कमित्वा ते पब्बहे पुच्छति । ते सभियेन परिव्वाजकेन पब्बहे पुट्ठा न  
 संपायन्ति, असंपायन्ता कोपं च दोसं च अप्पञ्चयं च पातुकरोन्ति, अपि  
 च सभियं येव परिव्वाजकं पटिपुच्छन्ति । अथ खो सभियस्स परिव्वाज-  
 कस्स एतदहोसि—ये खो ते भोन्तो समणब्राह्मणा सङ्घिनो गणिनो  
 गणाचरिया आता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता बहुजनस्स,  
 सेय्यथीदं—पूरणो कस्सपो.....पे०.....निगण्ठो नातपुत्तो, ते मया  
 पब्बहे पुट्ठा न संपायन्ति असंपायन्ता कोपं च दोसं च अप्पञ्चयं च पातुकरोन्ति,  
 अपि च मज्जेवेत्थ पटिपुच्छन्ति; यन्नूनाहं हीनायावत्तित्वा कामे परिभु-  
 ङ्गेय्यन्ति । अथ खो सभियस्स परिव्वाजकस्स—एतदहोसि—अयम्पि  
 समणो गोतमो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च आतो यसस्सी तित्थकरो  
 साधुसम्मतो बहुजनस्स; यन्नूनाहं समणं गोतमं उपसङ्कमित्वा इमे पब्बहे  
 पुच्छेय्यन्ति । अथ खो सभियस्स परिवाजकस्स एतदहोसि—येपि खो  
 ते भोन्तो समणब्राह्मणा जिण्णा बुद्धा महल्लका अद्भगता बयो अनुप्पत्ता  
 थेरा रत्तब्बू चिरपब्बजिता-सङ्घिनो गणिनो गणाचरिया आता यसस्सिनो  
 तित्थकरा साधुसम्मता, बहुजनस्स, सेय्यथीदं—पूरणो कस्सपो.....  
 पे०.....निगण्ठो नातपुत्तो, तेपि मया पब्बहे पुट्ठा न संपायन्ति,  
 असंपायन्ता कोपं च दोसं च अप्पञ्चयं च पातुकरोन्ति, अपि च मज्जेवेत्थ

## ३२—सभिय-सुत्त

[ सभिय परिव्राजक उस समय के छः नामी धर्म-प्रवर्तकों के पास जाकर श्रमण, ब्राह्मण, स्नोतक, क्षेत्रजिन, कुशल, पण्डित, मुनि, वेदज्ञ, अनुविज्ञ, वीर्यवान्, आजानीय, श्रोत्रिय, आर्य, आचारवान तथा परिव्राजक के विषय में पूछता है । उन्हें सन्तुष्ट न हो वह भगवान् के पास जाता है । भगवान् के उत्तरों से प्रसन्न सभिय भिक्षु-संघ में सम्मिलित हो जाता है—]

ऐसा मैंने सुना:-

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार करते थे । उस समय सभिय परिव्राजक के एक हितैषी देवता ने उसे कुछ प्रश्न पूछ कर कहा—‘सभिय ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इन प्रश्नों के उत्तर देगे उन्हें के पास ब्रह्मचर्य को पालन करो । तब सभिय परिव्राजक उस देवता के पास प्रश्न सीख कर पुराण कश्यप, मक्खलि गोशाल, अजित केशकम्बली, प्रकुध कात्यायन, संजय बेलट्टिपुत्र और निर्गन्ध नाथपुत्र जैसे संघवाले, गण वाले, गणाचार्य, नामी, यशस्वी, तीर्थंकर, बहुत लोगों से सम्मानित श्रमण-ब्राह्मणों के पास जाकर प्रश्न पूछने लगा । सभिय परिव्राजक के प्रश्न पूछने पर वे उत्तर न दे सके, उत्तर न दे सकने पर कोप, द्वेष तथा अप्रसन्नता प्रकट करने और उल्टा सभिय से ही प्रश्न करने लगे । तब सभिय परिव्राजक को ऐसा ( विचार ) हुआ—पुराण कश्यप, मक्खलि गोशाल, अजित केशकम्बली, प्रकुध कात्यायन, संजय बेलट्टिपुत्र और निर्गन्ध नाथपुत्र जैसे संघवाले, गणवाले, गणाचार्य, नामी, यशस्वी, तीर्थंकर, बहुत लोगों से सम्मानित श्रमण-ब्राह्मण हैं, प्रश्न पूछने पर वे उत्तर नहीं दे सकते, उत्तर न दे सकने पर कोप, द्वेष तथा अप्रसन्नता प्रकट करते हैं और उल्टा मुझसे ही प्रश्न करते हैं । इसलिए अच्छा है कि गृहस्थ होकर विषयों का भोग करूँ ।

तब सभिय परिव्राजक को ऐसा ( विचार ) हुआ—‘यह श्रमण गौतम भी संघी हैं, गणी हैं । गणाचार्य हैं, यशस्वी हैं और बहुत जनों से सम्मानित हैं । इसलिए अच्छा हो कि श्रमण गौतम के पास जाकर इन प्रश्नों को पूछूँ । तब सभिय परिव्राजक को ऐसा ( विचार ) हुआ—‘पुराण कश्यप, मक्खलि गोशाल, अजित, केशकम्बली, प्रकुध कात्यायन, संजय बेलट्टिपुत्र और निर्गन्ध नाथपुत्र जैसे जीर्ण, वृद्ध, वयस्क, चिरजीवी, अवस्था प्राप्त, स्थविर, अनुमवी, चिर प्रव्रजित, संघी, गणी, गणाचार्य, नामी, यशस्वी, तीर्थंकर, बहुत लोगों से सम्मानित श्रमण-ब्राह्मण भी मेरे प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकते, न दे सकने पर कोप, द्वेष तथा अप्रसन्नता

पटिपुच्छन्ति । किं पन मे समणो गोतमो इमे पव्हे पुट्ठो व्याकरिस्सति । समणो हि गोतमो दहरो चेव जातिया नवो च पव्वज्जायाति । अथ खो सभियस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि समणो खो दहरोति न परिभोतव्वो । दहरोपि चे समणो होति, सो होति महिद्धिको महानुभावो, यन्नूनाहं समणं गोतमं उपसङ्कमित्वा इमे पव्हे पुच्छेय्यन्ति । अथ खो सभियो परिब्बाजको येन राजगहं तेन चारिकं पक्कामि । अनुपुव्वेन चारिकं चरमानो येन राजगहं वेळुवनं कलन्दकनिवापो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि, सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो सभियो परिब्बाजको भगवन्तं गाथाय अज्झभासि—

कङ्कही वेचिकिच्छी आगमं (इति सभियो), पव्हे पुच्छितुं अभिकङ्कमानो ।  
तेसन्तकरो भगवाहि पुट्ठो, अनुपुव्वं अनुधम्मं व्याकरोहि मे ॥ १ ॥

दूरतो आगतोसि ( सभियाति भगवा ), पव्हे पुच्छितुं अभिकङ्कमानो ।  
तेसन्तकरो भवामि पुट्ठो, अनुपुव्वं अनुधम्मं व्याकरोमि ते ॥ २ ॥

पुच्छ मम सभिय पव्हं, यं किञ्चि मनसिच्छसि ।  
तस्स तस्सेव पव्हस्स, अहं अन्तं करोमि तेति ॥ ३ ॥

अथ खो अभियस्स परिब्बाजकस्स एतदहोसि—अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो, यावताहं अब्बेसु समणब्राह्मणेसु ओकासमत्तम्पि नालत्थं, तं मे इदं समणेन गोतमेन ओकासकम्मं कतन्ति अत्तमनो पमोदितो उदग्गो पीतिसोमनस्सजातो भगवन्तं पव्हं पुच्छ—

किं पत्तिनमाहु भिक्खुनं (इति सभियो), सोरतं केन कथं च दन्तमाहु ।  
बुद्धोति कथं पवुच्चति, पुट्ठो मे भगवा व्याकरोहि ॥ ४ ॥

पज्जेन कतेन अत्तना (सभियाति भगवा), परिनिव्वानगतो वितिण्णकङ्कहो ।  
विभवं च भवं च विप्पहाय, वुसितवा खीणपुनव्वभवो स भिक्खु ॥ ५ ॥

सव्वत्थ उपेक्खको सतीमा, न सो हिंसति किञ्चि सव्वलोके ।  
तिण्णो समणो अनाविलो, उस्सदा यस्स न सन्ति सोरतो सो ॥ ६ ॥

यस्सिन्द्रियाणि भावितानि, अज्झत्तं बहिद्धा च सव्वलोके ।  
निव्विज्ज इमं परं च लोकं, कालं कङ्कति भावितो स दन्तो ॥ ७ ॥

प्रकट करते हैं और उल्टा मुझसे ही प्रश्न करते हैं । क्या श्रमण गौतम मेरे इन प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे ? वे तो आयु में भी छोटे हैं और प्रव्रज्या में भी नये हैं । ( लेकिन ) युवक श्रमण भी ऐसे होते हैं जो कि बड़े सिद्धि वाले और प्रतापी हैं । इसलिए अच्छा हो कि श्रमण गौतम के पास जाकर मैं प्रश्न पूछूँ ।

तब सभिय परिव्राजक राजगृह की ओर चल दिया । क्रमशः चारिका करते हुए राजगृह में वेलुवन कलन्दक निवाप में जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा, पहुँच कर भगवान् से कुशल-संवाद पूछ कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे सभिय परिव्राजक ने भगवान् को गाथा में कहा :—

संशय और विचिकित्सा सहित हो प्रश्न पूछने की इच्छा से ( यहाँ ) आया हूँ । भगवान्, पूछने पर धार्मिक रीति से इसका उत्तर मुझे देकर ( शंकाओं का ) समाधान करें ॥ १ ॥

बुद्धः—

सभिय ! प्रश्न पूछने की इच्छा से तुम दूर से आये हो । ( तुम्हारे ) पूछने पर उनका समाधान कर सकता हूँ । तुम्हें क्रमशः धार्मिक रीति से उत्तर देता हूँ ॥ २ ॥

सभिय ! तुम्हारे मन में जो कुछ प्रश्न हैं, मुझसे पूछो । मैं तुम्हारे एक एक प्रश्न का ( उत्तर दे कर संशय का ) अन्त करता हूँ ॥ ३ ॥

तब सभिय परिव्राजक को ऐसा ( विचार ) हुआ—‘आश्चर्य है ! अद्भुत है ! जहाँ दूसरे श्रमण-ब्राह्मणों ने अवकाश तक वहीं दिया, वहाँ श्रमण गौतम ने मुझे यह अवकाश दिया’—ऐसा सोच प्रसन्न हो, प्रमुदित हो, हर्षित हो, खुश हो, आनन्दित हो भगवान् से यह प्रश्न किया :—

किस प्रकार के प्राप्तिवाले को भिक्षु कहते हैं ? शान्त और दान्त किसे कहते हैं ? बुद्ध किसे कहते हैं ? पूछने पर भगवान् इन प्रश्नों का मुझे उत्तर दें ॥ ४ ॥

बुद्धः—

जो स्वयं मार्ग पर चलकर, शंकाओं से परे हो, जन्म-मृत्यु को दूर परिनिर्वाणप्राप्त है; ब्रह्मचर्यवास समाप्त, पुनर्जन्म रहित है, वह भिक्षु है ॥ ५ ॥

सर्वत्र उपेक्षा भाव सहित, स्मृतिमान् वह संसार में किसी को नहीं सताता ( संसार ) पारङ्गत, निर्मल, तृष्णा रहित जो श्रमण है, वह शान्त है ॥ ६ ॥

जिसकी इन्द्रियाँ सारे संसार में भीतर और बाहर वश में हैं, ( जो ) इस लोक तथा परलोक को जानकर ( कृतकृत्य हो ) मृत्यु की अपेक्षा करता है, संयमी वह शान्त है ॥ ७ ॥

कल्पानि विचेय्य केवलानि, संसारदुभयं चतूपपातं ।

विगतजरजनङ्गणं विसुद्धं, पत्तं जातिक्रयं तमाहु बुद्धन्ति ॥ ८ ॥

अथ खो सभियो परिब्राजको भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा  
अनुमोदित्वा अतमनो पमोदितो उदग्गो पीतिसोमनस्सजातो भगवन्तं  
उत्तरिं पव्हं पुच्छि—

किं पत्तिनमाहु ब्राह्मणं (इति सभियो), समणं केन कथं च न्हातकोति ।

नागोति कथं पवुच्चति, पुट्ठो मे भगवा व्याकरोहि ॥ ९ ॥

बाहेत्वा सब्बपापानि, (सभियाति भगवा), विमलो साधुसमाहितो ठित्तो ।

संसारमतिच्च केवली सो, असितो तादि पवुच्चते स ब्रह्मा ॥ १० ॥

समितावि पहाय पुब्बपापं, विरजो जत्वा इमं परं च लोकं ।

जातिमूलं उपातिवत्तो, समणो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥ ११ ॥

निन्हाय सब्बपापकानि, अज्झत्तं बहिद्धा च सब्बलोके ।

देवमनुस्सेसु कप्पियेसु, कप्पं नेति तमाहु न्हातकोति ॥ १२ ॥

आगुं न करोति किञ्चि लोके, सब्बसंयोगे विसज्जबन्धानानि ।

सब्बत्थ न सज्जति विमुत्तो, नागो तादि पवुच्चते तथत्ताति ॥ १३ ॥

अथ खो सभियो परिब्राजको... पे०... भगवन्तं उत्तरिं पव्हं पुच्छि—

कं खेत्तजिनं वक्खन्ति बुद्धा (इति सभियो), कुसलं केन कथं च पण्डितोति ।

मुनि नाम कथं पवुच्चति, पुट्ठो मे भगवा व्याकरोहि ॥ १४ ॥

खेत्तानि विचेय्य केवलानि ( सभियाति भगवा ),

दिब्बं मानुसकं च ब्रह्मखेत्तं ।

सब्बखेत्तमूलबन्धना पमुत्तो, खेत्तजिनो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥ १५ ॥

कोसानि विचेय्य केवलानि, दिब्बं मानुसकं च ब्रह्मकोसं ।

( सब्ब ) कोसमूलबन्धना पमुत्तो, कुसलो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥ १६ ॥

तदुभयानि विचेय्य पण्डरानि, अज्झत्तं बहिद्धा च सुद्धिपब्बो ।

कण्हं सुक्कं उपातिवत्तो, पण्डितो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥ १७ ॥

असत्तं च सत्तं च जत्वा धम्मं, अज्झत्तं च बहिद्धा च सब्बलोके ।

देवमनुस्सेहि पूजितो सो, सङ्गं जालमतिच्च सो मुनीति ॥ १८ ॥

सारे त्रिकालदर्शी, जन्म-मृत्यु रूपी द्वन्द्वात्मक संसार को जाननेवाले, रज और पाप रहित, विशुद्ध, जन्म-क्षय को प्राप्त उन्हें बुद्ध कहते हैं ॥ ८ ॥

तब सभिय परिव्राजक भगवान् के भाषण का अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, प्रसन्न हो, प्रमुदित हो, हर्षित हो, खुश हो आनन्दित हो भगवान् से आगे भी प्रश्न किया—

९—किस प्रकार के प्राप्तिवाले को ब्राह्मण कहते हैं ? श्रमण और स्नातक किसे कहते हैं ? नाग किसे कहते हैं । पूछने पर भगवान् मुझे उत्तर दें ।

बुद्धः—

जो सब पापों को बहाकर निर्मल, साधु, सामाधिस्थ, स्थितात्मा, संसार-पार-ङ्गत, केवली, अनासक्त और स्थिर है, वह ब्राह्मण कहलाता है ॥ १० ॥

जो पुण्य और पाप को दूर कर शान्त हो गया है, इस लोक और परलोक को जानकर रज रहित हो गया है, जो जन्म के परे हो गया है, स्थिर, स्थितात्मा वह श्रमण कहलाता है ॥ ११ ॥

जिसने संसार में अन्दर और बाहर के सब पापों को धो डाला है और जो आवागमन में पड़े देवताओं और मनुष्यों में ( फिर ) जन्म ग्रहण नहीं करता, वह स्नातक कहलाता है ॥ १२ ॥

जो संसार में किसी प्रकार का पाप नहीं करता, जिसने सब बन्धनों को तोड़ डाला है ( और जो ) कहीं भी आसक्त नहीं होता, विमुक्त, स्थिर, स्थितात्मा वह नाग कहलाता है ॥ १३ ॥

तब सभिय परिव्राजक ने भगवान् से आगे प्रश्न कियाः—

बुद्ध किसे क्षेत्रजिन बताते हैं ? कुशल कौन है ? पण्डित कौन है ? और मुनि किसे कहते हैं ? पूछने पर भगवान् मुझे उत्तर दें ॥ १४ ॥

बुद्धः—

जो सब देव, मनुष्य और ब्रह्म क्षेत्रों (=लोकों) को जानकर सब क्षेत्रों के मूलबन्धन से मुक्त हो गया है, स्थिर, स्थितात्मा वह क्षेत्र जिन कहलाता है ॥ १५ ॥

जो सब देव, मनुष्य और ब्रह्म-क्षेत्रों को जान कर सब क्षेत्रों के मूल बन्धन से मुक्त हो गया है, स्थिर, स्थितात्मा वह कुशल कहलाता है ॥ १६ ॥

जो शुद्ध-प्रज्ञ अन्दर और बाहर के विषयों को जान कर पुण्य तथा पाप के परे हो गया है, स्थिर, स्थितात्मा वह पण्डित कहलाता है ॥ १७ ॥

जो सारे संसार में अन्दर और बाहर के सत् और असत् बातों को जान कर देवमनुष्यों से पूजित है, ( और जो ) आसक्ति रूपी जाल से परे है वह मुनि कहलाता है ॥ १८ ॥

अथ खो सभियो परिब्राजको...पे०...भगवन्तं उत्तरिं पव्हं पुच्छि—  
किं पत्तिनमाहु वेदगुं (इति सभियो), अनुविदितं केन कथं च विरियवाति ।  
आजानियो किन्ति नाम होति, पुट्ठो मे भगवा व्याकरोहि ॥ १९ ॥  
वेदानि विचेय्य केवलानि ( सभिया ति भगवा ),

समणानं यानिपत्थि ब्राह्मणानं ।

सब्बवेदनासु वीतरागो, सब्बं वेदमतिच्च वेदगू सो ॥ २० ॥

अनुविच्च पपञ्चनामरूपं, अज्झत्तं बहिद्वा च रोगमूलं ।

सब्बरोगमूलबन्धना पमुत्तो, अनुविदितो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥ २१ ॥

विरतो इध सब्बपापकेहि, निरयदुक्खमतिच्च विरियवा सो ।

सो विरियवा पधानवा, धीरो तादि पवुच्चते तथत्ता ॥ २२ ॥

यस्सस्सु लुतानि बन्धनानि, अज्झत्तं बहिद्वा च सब्बमूलं ।

(सब्ब) सङ्गमूलबन्धना पमुत्तो, आजानियो तादि पवुच्चते तथत्ताति ॥ २३ ॥

अथ खो सभियो परिब्राजको...पे०...भगवन्तं उत्तरिं पव्हं पुच्छि—

किं पत्तिनमाहु सोत्थियं (इति सभियो), अरियं केन कथं च चरणवाति ।

परिब्राजको किन्ति नाम होति, पुट्ठो मे भगवा व्याकरोहि ॥ २४ ॥

सुत्वा सब्बधम्मं अभिञ्जाय लोके ( सभियाति भगवा ),

सावज्जानवज्जं यदत्थि किञ्चि ।

अभिभुं अकथं कथिं विमुत्तं, अनीघं सब्बधिमाहु सोत्थियोति ॥ २५ ॥

छेत्वा आसवानि आलयानि, विद्वा सो न उपेति गम्भसेय्यं ।

सब्बं तिविधं पनुज्ज पङ्कं, कप्पं नेति तमाहु अरियोति ॥ २६ ॥

यो इध चरणेषु पत्तिपत्तो, कुसलो सब्बदा आजानाति धम्मं ।

सब्बत्थ न सज्जति विमुत्तो, पटिघा यस्स न सन्ति चरणवा सो ॥ २७ ॥

दुक्खवेपक्कं यदत्थि कम्मं, उद्धं अधो च तिरियं चापि मज्झे ।

परिवज्जयित्वा परिवब्बचारी, मायं मानमथोपि लोभकोधं ।

परियन्तमकासि नामरूपं, तं परिब्राजकमाहु पत्तिपत्तन्ति ॥ २८ ॥

अथ खो सभियो परिब्राजको भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा  
अनुमोदित्वा अत्तमनो पमोदितो उदग्गो पीतिसोमनस्सजातो उट्ठायसाना  
एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं सम्मुखा  
सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि—

तब सभिय परिव्राजक ने भगवान् से आगे प्रश्न किया:—

किस प्रकार के प्राप्तिवाले को वेदज्ञ कहते हैं ? 'अनुविज्ञ' कौन है ? वीर्यवान् कौन है ? और आजानीय किसका नाम है ? और आजानीय किसका नाम है ? पूछने पर भगवान् मुझे उत्तर दें ॥ १९ ॥

बुद्ध:—

जो श्रमण तथा ब्राह्मणों की ( समाधिगत ) सभी अवस्थाओं को जान गया है, जो सब वेदनाओं में अनासक्त है, जो सब वेदनाओं से परे है, वह वेदज्ञ है ॥ २० ॥

जो अन्दर और बाहर के रोगमूल रूपी नाम-रूप के बन्धन को जान गया है ( और जो ) सब रोगों के मूल बन्धन से मुक्त है, स्थिर, स्थितात्मा वह अनु-विदित कहलाता है ॥ २१ ॥

जो सब पापों से विरत है और निरय दुःख से परे है पराक्रमी, धीर, स्थितात्मा वह वीर्यवान् कहलाता है ॥ २२ ॥

जिसने अन्दर और बाहर के सब बन्धनों को तोड़ डाला है, जो आसक्ति के मूल बन्धन से मुक्त है, स्थिर, स्थितात्मा वह आजानीय कहलाता है ॥ २३ ॥

तब सभिय परिव्राजक ने आगे प्रश्न किया :—

किस प्रकार के प्राप्तिवाले को श्रोत्रिय कहते हैं ? आर्य कौन है ? आचारवान् कौन है ? परिव्राजक किसका नाम है ? पूछने पर भगवान् मुझे उत्तर दें ।

बुद्ध:—

जो संसार में दोषी, निर्दोषी सब बातों को सुन कर अच्छी तरह जान गया है, जो विजेता है, संशय से मुक्त है, पाप रहित है; सब बन्धनों से मुक्त वह श्रोत्रिय है ॥ २५ ॥

जो विज्ञ वासना रूपी आलयों को नष्ट कर फिर जन्म ग्रहण नहीं करता, जो त्रिविध काम को नष्ट कर फिर काम-चक्र में नहीं आता वह आर्य है ॥ २६ ॥

जो शीलवान् है, कुशल है, सदा धर्म को जाननेवाला है, (जो) कहीं आसक्त नहीं होता, विमुक्त है और जिसमें द्वेष भाव नहीं, वह आचारवान् है ॥ २७ ॥

जो भूत, भविष्य तथा वर्तमान कालिक कर्म और माया, मान, लोभ तथा क्रोध को दूर कर विचार पूर्वक विचरता है, जिसने नामरूप का अन्त किया है, प्राप्य को प्राप्त उसे परिव्राजक कहते हैं ॥ २८ ॥

तब सभिय परिव्राजक ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन कर, अनुमोदन कर, प्रसन्न हो, प्रसुदित हो, हर्षित हो, खुश हो, आनन्दित हो, आसन से उठकर एक कन्धे पर उपरनी को संभाल कर भगवान् को अभिवादन कर भगवान् के सम्मुख अनुकूल गाथाओं में उनकी प्रशंसा की—

यानि च तीणि यानि च सट्ठि, समणप्पवादसितानि भूरिपब्ब ।  
सब्बक्खर सब्बनिस्सितानि, ओसरणानि विनेय्य ओघतमगा ॥२९॥

अन्तगूसि पारगूसि दुक्खस्स, अरहासि सम्मासम्बुद्धो खीणासवंतं  
मब्जे । जुतिमा मुतिमा पट्ठपब्बो, दुक्खस्सन्तकर अतारयि मं ॥३०॥

यं मे कङ्कितमब्बासि, विचिकिच्छं मं अतारेसि नमो ते ।  
मुनि मोत्तपथेसु पत्तिपत्तं, अखिल आदिच्चबन्धु सोरतोसि ॥ ३१ ॥

या मे कङ्का पुरे आसि, तं मे व्याकासि चक्खुमा ।  
अद्धा मुनीसि सम्बुद्धो, नत्थि नीवरणा तव ॥ ३२ ॥

उपायासा च ते सब्बे, विद्धस्ता विनलीकता ।  
सीतिभूतो दमप्पत्तो, धितिमा सञ्चनिकमो ॥ ३३ ॥

तस्स ते नागनागस्स, महावीरस्स भासतो ।  
सब्बे देवानुमोदन्ति, उभो नारदपब्बता ॥ ३४ ॥

नमो ते पुरिसाजब्ब, नमो ते पुरिसुत्तम ।  
सदेवकस्मि लोकस्मि, नत्थि ते पटिपुगालो ॥ ३५ ॥

तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुवं मरिभिभू मुनि ।  
तुवं अनुसये छेत्वा, तिण्णो तारेसिमं षजं ॥ ३६ ॥

उपधी ते समतिक्कन्ता, आसवा ते पदालिता ।  
सीहोसि अनुपादानो, पहीनभयभेरवो ॥ ३७ ॥

पुण्डरीकं यथा वग्गु, तोये न उपलिप्पति ।  
एवं पुब्बे च पापे च, उभये त्वं न लिप्पसि ॥

पादे वीर पसारोहि, सभियो वन्दति सत्थुनोति ॥ ३८ ॥

अथ ह्यो सभियो परिब्बाजको भगवतो पादेसु सिद्धं निपतित्वा भगवन्तं  
एतदबोच-अभिक्कन्तं गोतम...पे०...धम्मं च भिक्खुसंघञ्च, लभेय्याहं भन्ते

हे महाप्रज्ञ ! आप श्रमणों के व्यवहार तथा कल्पना-आश्रित तिरसठ दृष्टियों तथा नाना योनि रूपी घाटों के प्रवाह को पार कर गये हैं ॥ २९ ॥

आप दुःख का अन्त कर गये हैं, पार कर गये हैं । ( मैं ) आपको क्षीणाश्रव<sup>२८</sup> अर्हत्<sup>२९</sup> सम्यक् सम्बुद्ध मानता हूँ । ज्योतिमान्, मूर्तिमान्, महाप्रज्ञ ! दुःख के अन्त करनेवाले आपने मुझे ( भवसागर से ) पार लगाया है ॥ ३० ॥

संशय सहित जानकर आपने मुझे संशयों से पार कर दिया, आप को नमस्कार है । ज्ञान के पथ पर चल कर निर्वाण प्राप्त, द्वेष रहित, आदित्य बन्धु मुनि आप शान्त हैं ॥ ३१ ॥

चक्षुष्मान् ! पहले मुझमें जो शंकाएँ थीं, आप ने उनका समाधान कर दिया । सम्बुद्ध आप अवश्य मुनि हैं । आप में नीवरण (= मानसिक आवरण ) नहीं हैं ॥ ३२ ॥

आप की सब परेशानियाँ नष्ट और विनष्ट हैं । आप शान्त हैं, दान्त हैं, धृतिमान् हैं और सत्यवादी हैं ॥ ३३ ॥

श्रेष्ठों में श्रेष्ठ महावीर ! दोनों नारद पर्वत तथा अन्य सब देवता आपके भाषण का अनुमोदन करते हैं ॥ ३४ ॥

श्रेष्ठ पुरुष ! आप को मेरा नमस्कार है, हे उत्तम पुरुष ! आप को मेरा नमस्कार है । देवता और मनुष्य सहित सारे संसार में आप के समान कोई नहीं है ॥ ३५ ॥

आप बुद्ध हैं । आप शास्ता हैं । आप मार-विजयी मुनि हैं । आप ने समूल वासनाओं को नष्ट कर भवसागर को पार किया और इस प्रजा को भी पार लगाया ॥ ३६ ॥

आप ने वासनावन्धनों को पार किया है, वासनाओं को नष्ट किया है, ( आप ) अनासक्त भयभीति रहित सिंह हैं ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार सुन्दर पुण्डरीक पानी में लित नहीं होता, उसी प्रकार पुण्य, पाप दोनों में आप लित नहीं होते । वीर ! पाँवों को पसारिए, सभिय शास्ता की वन्दना करता है ॥ ३८ ॥

तब सभिय परित्राजक भगवान् के पाँवों पर नतमस्तक हो ऐसा कहने लगा—‘आश्चर्य है । गौतम ! आश्चर्य है ! गौतम ! जिस प्रकार कोई आँधे को सीधा कर दे, ढँके को खोल दे, मटके को मार्ग बता दे या अन्धकार में तेल-प्रदीप जलादे, जिससे कि आँखवाले रूप देख सकें, इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया है । इसलिए मैं भगवान् गौतम की

भगवतो सन्तिके पव्वज्जं, लभेय्यं उपसम्पदन्ति । यो खो सभिय  
अव्वतिथियपुव्वो इमस्मिधम्मविनये आकङ्खति पव्वज्जं, आकङ्खति  
उपसम्पदं, सो चत्तारो मासे परिवसति; चतुन्नं मासानं अच्चयेन  
आरद्धचित्ता भिक्खू पव्वाजेन्ति, उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय ।  
अपि च मेत्थ पुगलवेमत्तता विदिताति । सचे भन्ते अव्वतिथियपुव्वा  
इमस्मि धम्मविनये आकङ्खन्ता पव्वज्जं, आकङ्खन्ता उपसम्पदं चत्तारो  
मासे परिवसन्ति, चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू  
पव्वाजेन्ति, उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय, अहं चत्तारि वस्सानि  
परिवसिस्सामि, चतुन्नं वस्सानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पव्वाजेन्तु  
उपसम्पादेन्तु भिक्खुभावायाति ।

अलत्थ खो सभियो परिव्वाजको भगवतो सन्तिके पव्वज्जं, अलत्थ  
उपसम्पदं...पे०...अव्वतरो खो पनायस्सा सभियो अरहतं  
अहोसीति ।

सभियसुत्तं निट्ठितं ।



### ३३—सेल-सुत्तं

एवं मे सुत्तं । एकं समयं भगवा अङ्गुत्तरापेसु चारिकं चरमानो महता  
भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेऽसेहि भिक्खुसतेहि येन आपणं नाम अङ्गुत्त-  
रापानं निगमो तदवसरि । अस्सोसि खो केणियो जटिलो—समणो  
खलु भो गोतमो सक्कपुत्तो सक्ककुल पव्वजितो अङ्गुत्तरापेसु

शरग जाता हूँ, धर्म तथा भिक्षु-संघ की भी । मैं आप गौतम के पास प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा<sup>३०</sup> लेना चाहता हूँ ॥ ३८ ॥

‘सभिय ! यदि कोई अन्यतीर्थक इस धर्म-विनय में प्रव्रज्या और उपसम्पदा<sup>३१</sup> की आकांक्षा करे तो उसे चार महीने का ‘परिवास’<sup>३२</sup> करना होता है । चार महीने के बाद प्रसन्न ( होने पर ) भिक्षु प्रव्रज्या और उपसम्पदा<sup>३३</sup> देते हैं । फिर भी इसमें व्यक्तियों का भी विचार है ।’

‘भन्ते ! यदि इस धर्म विनय में प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा<sup>३४</sup> की आकांक्षा करनेवाले अन्यतीर्थक को चार महीने का ‘परिवास’<sup>३५</sup> करना होता है और चार महीने के बीतने पर प्रसन्न भिक्षु उसे प्रव्रज्या और उपसम्पदा<sup>३६</sup> देते हैं तो मैं चार वर्ष तक परिवास<sup>३७</sup> करूँगा । चार वर्ष के बाद प्रसन्न भिक्षु (मुझे) भिक्षु के रूप में प्रव्रजित करें, उपसम्पदा<sup>३८</sup> दें ।’

सभिय परिव्राजक ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा<sup>३९</sup> पाई । उपसम्पदा<sup>४०</sup> के कुछ समय बाद आयुष्मान् सभिय एकान्त में, अप्रमत्त, उद्योगी तथा तत्पर हो, जिस अर्थ के लिए कुलपुत्र सम्यक् प्रकार से घर से बेकार हो विहरता है, उस अनुत्तर ब्रह्मचर्य के अन्त को इसी जीवन में स्वयं जान कर, साक्षात् कर, प्राप्त कर विहरने लगे । उन्होंने जान लिया—“जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्य पूर्ण हुआ, कृतकृत्य हो गया और पुनर्जन्म रुक गया ।”

आयुष्मान् सभिय अर्हन्तों<sup>४१</sup> में से एक हुए ।

सभियसुत्त समाप्त ।



३३—सेल-सुत्त

[ केणिय जटिल अपेन आश्रम में भिक्षु-संघ सहित भगवान् के लिए भोजन तैयार कर रहा है । इस तैयारी को देख सेल ब्राह्मण अपनी शिष्य मण्डली के साथ वहाँ पहुँच जाता है । केणिय से भगवान् के आगमन के विषय में जानकर सेल उनके पास जाता है । भगवान् के सदुपदेश से प्रसन्न सेल अपने तीन सौ शिष्यों के साथ संघ में सम्मिलित होता है—]

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओं की बड़ी मण्डली के साथ अङ्कुत्तराप में चारिका करते हुए जहाँ अङ्कुत्तराणों का आपण नामक कस्बा था, वहाँ पहुँचे । केणिय जटिल ने सुना—‘शाक्यकुल से प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम साढ़े बारह सौ भिक्षुओं की बड़ी मण्डली के साथ अङ्कुत्तराप में

चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि  
 भिक्खुसत्तेहि आपणं अनुप्पत्तो; तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं  
 कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुगतो—इतिपि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो  
 विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्भसारथि सत्था देव  
 मनुस्सानं बुद्धो भगवा, सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सन्नहकं सस्समणब्रा-  
 ह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिज्जा सच्छिक्खत्वा पवेदेति; सो धम्मं  
 देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं  
 केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति; साधु खो पन तथारूपानं  
 अरहतं दस्सनं होतीति । अथ खो केणियो जटिलो येन भगवा तेनु-  
 पसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि, सम्मोदनीयं कथं  
 साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नं खो केणियं  
 जटिलं भगवा धम्मिया कथाय संदस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्प-  
 हंसेसि । अथ खो केणियो जटिलो भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सितो  
 समादपितो समुत्तेजितो सम्पहंसितो भगवन्तं एतदवोच—अधिवासेतु मे  
 भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेनाति । एवं वुत्ते भगवा केणियं  
 जटिलं एतदवोच—महा खो केणिय भिक्खुसङ्घो अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि  
 त्वं च खो ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नोति । दुतियम्पि खो केणियो जटिलो  
 भगवन्तं एतदवोच—किञ्चापि भो गोतम महाभिक्खुसङ्घो अड्ढतेळ-  
 सानि भिक्खुसतानि, अहञ्च ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नो, अधिवासेतु  
 मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेनाति । दुतियम्पि  
 खो भगवा केणियं जटिलं एतदवोच—महा खो केणिय भिक्खुसङ्घो  
 अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि, त्वं च खो ब्राह्मणेसु अभिप्पसन्नोति ।  
 ततियम्पि खो केणियो जटिलो भगवन्तं एतदवोच—किञ्चापि भो गोतम  
 महाभिक्खुसङ्घो अड्ढतेळसानि भिक्खुसतानि, अहं च खो ब्राह्मणेसु  
 अभिप्पसन्नो अधिवासेत्वेव मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खु-  
 सङ्घेनाति । अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन । अथ खो केणियो जटिलो  
 भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना येन सको अस्समो तेनुपसङ्कमि ।  
 उपसङ्कमित्वा भित्तामच्चे वातिसालोहिते आमन्तेसि—सुणन्तु मे भोन्तो  
 भित्तामच्चा वातिसालोहिता, समणो मे गोतमो निमन्तितो स्वातनाय भत्तं  
 सद्धिं भिक्खुसङ्घेन, येन मे कायवेय्यावटिकं करेय्याथाति । एवं भोति खो

में चारिका करते हुए आपण में पहुँचे हैं। उन भगवान् गौतम के विषय में ऐसी कीर्ति फैली है—वे भगवान् अर्हत हैं, सम्यक्सम्बुद्ध हैं, विद्या तथा आचरण से युक्त हैं, सुन्दर गतिवाले हैं, लोक को जाननेवाले हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं, पुरुषों को दमन करनेवाले सारथी हैं, देवताओं तथा मनुष्यों के शास्ता हैं, बुद्ध हैं और भगवान् हैं। वे देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण-ब्राह्मण सहित इस लोक को, देव-मनुष्य सहित इस प्रजा को स्वयं जान कर, साक्षात् कर उपदेश देते हैं। वे आरम्भ में कल्याणकारी, मध्य में कल्याणकारी, अन्त में कल्याणकारी, अर्थ सहित, व्यञ्जन सहित, सर्वथा परिपूर्ण धर्म तथा परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का उपदेश देते हैं। इस प्रकार के अर्हन्तों का दर्शन कल्याणकारी है।

तब केणिय जटिल जहाँ भगवान् थे वहा गया, जा भगवान् से कुशल मङ्गल पूछ कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे केणिय जटिल को भगवान् ने धार्मिक उपदेश कर दिखा दिया, बता उत्साहित कर दिया, हर्षित कर दिया। तब धार्मिक कथा से शिक्षित, उपदेशित, उत्साहित, हर्षित केणिय जटिल ने भगवान् से यह कहा—“आप गौतम ! भिक्षुसंघ के साथ कल के लिए मेरा भोजन स्वीकार करें।

ऐसा कहने पर भगवान् केणिय जटिल से यह बोले—केणिय ! साढ़े बारह सौ भिक्षुओं की बड़ी मण्डली है और तुम तो ब्राह्मणों में श्रद्धा रखते हो।

दूसरी बार भी केणिय जटिल ने भगवान् से यह कहा—गौतम ! यद्यपि साढ़े बारह सौ भिक्षुओं की बड़ी मण्डली है और मैं ब्राह्मणों में श्रद्धा रखता हूँ फिर भी आप कल के लिए भिक्षुसंघ के साथ मेरा भोजन स्वीकार करें।

तीसरी बार भी भगवान् ने केणिय जटिल से यह कहा—केणिय ! साढ़े बारह सौ भिक्षुओं की बड़ी मण्डली है और तुम तो ब्राह्मणों में श्रद्धा रखते हो।

तीसरी बार भी केणिय जटिल ने भगवान् से यह कहा—हे गौतम ! यद्यपि साढ़े बारह सौ भिक्षुओं की बड़ी मण्डली है और मैं ब्राह्मणों में श्रद्धा रखता हूँ फिर भी आप कल के लिए भिक्षु संघ के साथ मेरा भोजन स्वीकार करें। भगवान् ने मौन भाव से स्वीकार किया।

तब केणिय जटिल भगवान् की स्वीकृति को जान आसन से उठकर अपने आश्रम पर गया, जाकर मित्रों, सलाहकारों, बन्धुओं तथा हितैषियों को सम्बोधित कर कहा—मेरे मित्र, सलाहकार, बन्धु तथा हितैषी सुनो। मैंने भिक्षु संघ सहित श्रमण गौतम को कल भोजन के लिए निमन्त्रित किया है, इसलिए आप लोग मेरा हाथ बँटावें।

केणियस्स जटिलस्स मित्तामच्चा वातिसालोहिता केणियस्स जटिलस्स पटिस्सुत्वा अप्पेकच्चे उद्धनानि खणन्ति, अप्पेकच्चे कट्टानि फालेन्ति, अप्पेकच्चे भाजनानि धोवन्ति, अप्पेकच्चे उदकमणिकं पतिट्ठापेन्ति, अप्पेकच्चे आसनानि पञ्चापेन्ति; केणियो पन जटिलो सामं येव मण्डलमालं पटियादेति । तेन खो पन समयेन सेलो ब्राह्मणो आपणे पटिवसति, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्टु केट्टुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं पदको वेय्याकरणो लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अन्वयो तीणि माणवकसतानि मन्ते वाचेति । तेन खो पन समयेन केणियो जटिलो सेले ब्राह्मणे अभिप्पसन्नो होति । अथ खो सेलो ब्राह्मणो तीहि माणवकसतेहि परिवुत्तो जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानो अनुविचरमानो येन केणियस्स जटिलस्स अस्समो तेनुसङ्कमि । अद्दसा खो सेलो ब्राह्मणो केणियस्समिये जटिले अप्पेकच्चे उद्धनानि खणन्ते.....पे०...अप्पेकच्चे आसनानि पञ्चापेन्ते, केणियं पन जटिलं सामं येव मण्डलमालं पटियादेन्तं । दिस्वान केणियं जटिलं एतद्वोच—किन्नु भोतो केणियस्स आवाहो वा भविस्सति, विवाहो वा भविस्सति, महायञ्जो वा पच्चुपट्ठितो, राजा वा मागधो सेनियो बिम्बिसारो निमन्तितो स्वातनाय सद्धिं बलकायेनाति । न मे सेल आवाहो भविस्सति, नपि विवाहो भविस्सति, नपि राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो निमन्तितो स्वातनाय सद्धिं बलकायेन, अपि च खो मे महायञ्जो पच्चुपट्ठितो अत्थि । समणो गोतमो सक्क्यपुत्तो सक्क्यकुला पव्वजितो अङ्गुत्तरापेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेज्जेसेहि भिक्खुसतेहि आपणं अनुप्पत्तो । तं खो पन भवन्तं गोमत्तं...पे०...बुद्धो भगवाति । सो मे निमन्तितो स्वातनाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेनाति । बुद्धोति खो केणिय वदेसि । बुद्धोति भो सेल वदामि । बुद्धोति भो केणिय वदेसि । बुद्धोति भो सेल वदामोति । अथ खो सेलस्स ब्राह्मणस्स एतद्वोसि—वोसोपि खो एसो दुल्लभो लोक्खिं यदिदं बुद्धोति । आगतानि खो पन अस्माकं मन्तेसु द्वत्तिसमहापुरिसलक्खणानि येहि समन्नागतस्स महापुरिसस्स द्वेव गतियो भवन्ति अनञ्जा । सच्चे अगारं अञ्जावसति राजा होति चक्कवत्ति धर्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो । तस्सिमानि सत्त रतनानि भवन्ति, सेय्यथीदं—चक्करतनं, हत्थिरतनं, अस्सरतनं, मणिरतनं, इत्थिरतनं, गहपतिरतनं, परिणायकरतनमेव सत्तमं । परोसहम्सं खो पनस्स पुत्ता भवन्ति सूरा वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना । सो इमं पठविं

‘बहुत अच्छा’—कह केणिय जटिल के मित्रों, सलाहकारों, बन्धुओं तथा हितैषियों में से कुछ लोग चूल्हे बनाने लगे, कुछ लोग लकड़ी फाड़ने लगे, कुछ लोग बर्तन धोने लगे, कुछ लोग आसन बिछाने लगे केणिय जटिल स्वयं मंडप ठीक करने लगा ।

उस समय सेल ब्राह्मण आपण में रहता था । वह तीनों वेदों, निघण्टु, कैटुम, निरुक्ति, पांचवें वेद रूपी इतिहास में पारङ्गत हो, काव्य, व्याकरण, लोकायत-शास्त्र तथा महापुरुष लक्षणों में निपुण हो तीन सौ माणवकों को मन्त्र पढ़ाता था । उस समय केणिय जटिल सेल ब्राह्मण में श्रद्धा रखता था । इसलिए सेल ब्राह्मण तीन सौ माणवकों को साथ लेकर टहलते हुए, विचरते हुए जहाँ केणिय जटिल का आश्रम था वहाँ पहुँचा । सेल ब्राह्मण केणिय जटिल के आश्रम में कुछ लोगों को चूल्हे बनाते...पे०...स्वयं केणिय जटिल को मण्डप ठीक करते देखा, देख कर केणिय जटिल से बोला—क्या जी केणिय ! तुम्हारे यहाँ कोई आवाह—विवाह होगा या कोई यज्ञ होने वाला है । या सेना सहित मगधराज सेनिय बिम्बिसार कल के लिए निमन्त्रित है ?

केणियः—सेल ! न तो मेरे यहाँ आवाह (= कन्या ग्रहण ) होगा, न विवाह (= कन्या दान ) होगा, और न सेना सहित मगधराज सेनिय बिम्बिसार ही कल के लिए निमन्त्रित हैं, किन्तु मेरे यहाँ महायज्ञ होनेवाला है । शाक्य कुल से प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम साढ़े बाहर सौ भिक्षुओं की बड़ी मण्डली के साथ अङ्गुतराप में चारिका करते हुए आपण में पहुँचे हैं । उन भगवान् के विषय में ऐसा कीर्ति फैली है...पे०...भिक्षु संघ सहित वे कल के लिए मेरे यहाँ निमन्त्रित हैं ।

सेल—क्या केणिय ! बुद्ध बताते हो ?

केणिय—हाँ, केणिय ! बुद्ध बताता हूँ ।

सेल—क्या केणिय ! बुद्ध बताते हो ?

केणिय—हाँ, सेल ! बुद्ध बताता हूँ ।

तब सेल ब्राह्मण को ऐसा ( विचार ) हुआ—यह बुद्ध शब्द भी संसार में दुर्लभ है । हमारे शास्त्रों में बत्तीस महापुरुष लक्षणों के विषय में आया है । उनसे युक्त महापुरुषों की दो ही गतियाँ हो सकती हैं, दूसरी नहीं । यदि गार्हस्थ में रहें तो वे धार्मिक, धर्मराज, चारों दिशाओं के विजेता, जनपद स्थावर प्राप्त, सात रत्नों से युक्त चक्रवर्ती राजा होंगे । उनके सात रत्न थे होंगे—चक्र रत्न, हस्तिरत्न अश्व रत्न, मणि रत्न, स्त्री रत्न, गृहपति रत्न, और सातवाँ परिणायक रत्न । दूसरी सेनाओं को मर्दन करने वाले हजार से अधिक उनके सूर वीर पुत्र

सागरपरियन्तं अदण्डेन असत्थेन धम्मेन अभिविजय अज्झावसति । सचे खो पनागारस्मा अनगारियं पब्बजति अरहं होति सम्मासम्बुद्धो लोके विवत्तच्छहो । कहं पन भो केणिय एतरहि सो भवं गोतमो विहरति अरहं सम्मासम्बुद्धोति । एवं वुत्ते केणियो जटिलो दक्खिणं बाहं पगहेत्वा सेलं ब्राह्मणं एतदवोच—येन सा भो सेल नीलवनराजीति । अथ खो सेलो ब्राह्मणो तीहि माणवकसतेहि सद्धिं येन भगवा तेनुपसङ्कमि । अथ खो सेलो ब्राह्मणो ते माणवके आमन्तेसि—अप्पसद्दा भोन्तो आगच्छन्तु पदे पदं निक्खिपन्ता, दुरासदा हि ते भगवन्तो सीहाव एकचरा, यदा चाहं भो समणेन गोतमेन सद्धिं मन्तेय्यं मा मे भोन्तो अन्तरन्तरा कथं ओपातेथ, कथापरियोसानं मे भवन्तो आगमेन्तूति । अथ खो सेलो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि, सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो सेलो ब्राह्मणो, भगवतो काये द्वत्तिसमहापुरिसलक्खणानि सम्मन्नेसि । अहसा खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये द्वत्तिसमहापुरिसलक्खणानि येभुय्येन ठपेत्वा द्वे ; द्वीसु महापुरिसलक्खणेषु कङ्कति विचिकिच्छति नाधिमुञ्चति न सम्पसीदति—कोसोहिते च वत्थगुग्हे, पहूतजिह्वाय च । अथ खो भगवतो एतदहोसि—पस्सति खो मे अयं सेलो ब्राह्मणो द्वत्तिसमहापुरिसलक्खणानि येभुय्येन ठपेत्वा द्वे ; द्वीसु महापुरिसलक्खणेषु कङ्कति विचिकिच्छति नाधिमुञ्चति न सम्पसीदति—कोसोहिते च वत्थगुग्हे पहूतजिह्वाय चाति । अथ खो भगवा तथारूपं इद्वाभिसङ्खारं अभिसङ्खासि तथा अहस सेलो ब्राह्मणो भगवतो कोसोहितं वत्थगुग्हं । अथ खो भगवा जिह्वं निन्नामेत्वा उभोपि कण्णसोतानि अनुमसि पटिमसि, उभोपि नासिकसोतानि अनुमसि पटिमसि, केवलस्मि नलाटमण्डलं जिह्वाय छादेसि । अथ खो सेलस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—समन्नागतो खो समणो गोतमो द्वत्तिसमहापुरिसलक्खणेहि परिपुणेहि, नो अपस्सिपुणेहि ; नो च खो नं जानामि बुद्धो वा नो वा । सुतं खो पन मेतं ब्राह्मणानं वुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—ये ते भवन्ति अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा ते सके वण्णे भब्ब्यमाणे अत्तानं पातुकरोन्तीति ; यन्नूनाहं समणं गोतमं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवेय्यन्ति । अथ खो सेलो ब्राह्मणो भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि गाथाहि अभित्थवि—

होंगे। वे सागर पर्यन्त इस पृथ्वी को बिना दण्ड के, बिना शस्त्र के धर्म से जीत लेंगे। यदि वे बेघर हो प्रव्रजित होंगे तो संसार में तृष्णा रहित अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध होंगे।

**केणिय !** वे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध गौतम आज इस समय कहाँ रहते हैं ?

तब केणिय जटिल ने दहिनी बाँह पकड़ कर सेल ब्राह्मण से यह कहा—हे सेल ! जहाँ वह नील वृक्ष पंक्ति है।

तब सेल ब्राह्मण तीन सौ माणवकों के साथ जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। तब सेल ब्राह्मण ने माणवकों से कहा—अल्प शब्द के साथ कदम पर कदम रखते हुए आना, सिंह जैसे एकचारी उन भगवानों के पास पहुँचना कठिन है। जब मैं श्रमण गौतम के साथ बातचीत करूँगा तो तुम लोग बीच बीच में बाधा न डालना। तुम लोग मेरी बातचीत के बाद आ जाना।

तब सेल ब्राह्मण भगवान् के पास गया, जो भगवान् से कुशल मंगल पूछ कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सेल ब्राह्मण भगवान् के शरीर के बत्तीस महापुरुष लक्षण देखने लगा। सेल ब्राह्मण ने दो लक्षणों को छोड़ और सब लक्षणों को भगवान् के शरीर में देखा। कोषनिहित वस्त्रगुह्य (= लिंग) तथा बड़ी जीभ के विषय में उसे शंका हुई, विचिकित्सा हुई, विश्वास नहीं हुआ, प्रसन्नता नहीं हुई।

तब भगवान् ने ऐसी ऋद्धि की जिससे सेल ब्राह्मण उनके वस्त्रगुह्य को देख सके। तब भगवान् ने जीभ को निकाल कर उससे दोनों कर्णस्थलों को स्पर्श किया, दोनों नासिका स्थलों को स्पर्श किया और उससे सारे ललाटको टँक दिया।

तब सेल ब्राह्मण को ऐसा हुआ—श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष लक्षणों से परिपूर्ण हैं, न कि अपरिपूर्ण। लेकिन मैं यह नहीं जानता कि वे बुद्ध हैं या नहीं। वृद्ध, वयस्क, आचार्य, प्राचार्य ब्राह्मणों को मैंने यह कहते सुना है—जो अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध होते हैं, वे अपनी प्रशंसा सुनकर अपने आप को प्रकट करते हैं।

तब सेल ब्राह्मण ने अनुरूप गाथाओं में भगवान् के सम्मुख (उनकी) प्रशंसा की :—

परिपुण्णकायो सुरुचि, सुजातो चारुदस्सनो ।  
 सुवण्णवण्णोसि भगवा, सुसुक्कदाठोसि विरियवा ॥ १ ॥  
 नरस्स हि सुजातस्स, ये भवन्ति वियञ्जना ।  
 सब्बे ते तव कायस्मि, महापुरिसलक्खणा ॥ २ ॥  
 पसन्ननेत्तो सुमुखो, ब्रह्मा उज्जु पतापवा ।  
 मज्झे समणसङ्घस्स, आदिच्चोव विरोचसि ॥ ३ ॥  
 कल्याणदस्सनो भिक्खु, कञ्चनसन्निभत्तचो ।  
 किं ते समणभावेन, एवं उत्तमवण्णिनो ॥ ४ ॥  
 राजा अरहसि भवितुं, चक्कवत्ती रथेसभो ।  
 चातुरन्तो विजितावी, जम्बुसण्डस्स इस्सरो ॥ ५ ॥  
 खत्तिया भोजराजानो, अनुयुत्ता भवन्ति ते ।  
 राजाभिराजा मनुजिन्दो, रज्जं कारेहि गोतम ॥ ६ ॥  
 राजाहमस्मि सेला ( ति भगवा ), धम्मराजा अनुत्तरो ।  
 धम्मेन चक्कं वत्तेमि, चक्कं अप्पतिवत्तियं ॥ ७ ॥  
 सम्बुद्धो पटिजानासि ( इति सेलो ब्राह्मणो ), धम्मराजा अनुत्तरो ।  
 धम्मेन चक्कं वत्तेमि, इति भाससि गोतम ॥ ८ ॥  
 को नु सेनापति भोतो, सावको सत्थुदन्वयो ।  
 को ते इमं अनुवत्तेति, धम्मचक्कं पवत्तितं ॥ ९ ॥  
 मया पवत्तितं चक्कं ( सेलाति भगवा ), धम्मचक्कं अनुत्तरं ।  
 सारिपुत्तो अनुवत्तेति, अनुजातो तथागतं ॥ १० ॥  
 अभिञ्जेय्यं अभिञ्जातं, भावेतब्बं च भावितं ।  
 पहातब्बं पहीनं मे, तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मण ॥ ११ ॥  
 विनयस्सु मयि कङ्गं, अधिमुच्चस्सु ब्राह्मण ।  
 दुल्लभं दस्सनं होति, सम्बुद्धानं अभिण्हसो ॥ १२ ॥  
 येसं वे दुल्लभो लोके, पातुभावो अभिण्हसो ।  
 सोहं ब्राह्मण सम्बुद्धो, सल्लकत्तो अनुत्तरो ॥ १३ ॥  
 ब्रह्मभूतो अतितुलो, मारसेनप्पमद्दनो ।  
 सब्बामित्ते वसी कत्वा, मोदामि अकुतोभयो ॥ १४ ॥

भगवान् ! आप परिपूर्ण शरीरवाले हैं, पवित्र हैं, सुजात हैं, सुन्दर हैं, आप का वर्ण सुवर्ण जैसा है, आप के दाँत अत्यन्त उज्ज्वल हैं और आप वीर्यवान् है ॥ १ ॥

जो लक्षण सुजात मनुष्य के शरीर में होते हैं वे सब महापुरुष लक्षण आप के शरीर में है ॥ २ ॥

प्रसन्न नेत्रवाले, सुन्दर मुखवाले, महान्, ऋजु, प्रतापी ( आप ) सूर्य की तरह श्रमण समूह के बीच शोभायमान हैं ॥ ३ ॥

आप का दर्शन सुन्दर है, त्वचा आप की सुनहरी है । इतने सुन्दर आप को श्रमणभाव से क्या लाभ ? ॥ ४ ॥

आप चार दिशाओं के विजेता, जम्बुद्वीप (= भारत ) के ईश्वर, रथपति चक्रवर्ती राजा होने योग्य हैं ॥ ५ ॥

**बुद्धः—**

सेल ! मैं राजा हूँ, अनुत्तर धर्मराज हूँ । मैं धर्म का चक्र चलाता हूँ, जिसे उलटा नहीं जा सकता ॥ ७ ॥

**सेल ब्रह्मणः—**

आप अनुत्तर, धर्मराज सम्बुद्ध होने का दावा करते हैं । आप कहते हैं कि मैं धर्मचक्र की प्रवर्तन करता हूँ ॥ ८ ॥

आप का सेनापति कौन है ? आप का अनुयायी श्रावक कौन है ? आप के प्रवर्तित इस अनुत्तर धर्मचक्र का कौन अनुप्रवर्तन करता है ? ॥ ९ ॥

**बुद्धः—**

मेरे प्रवर्तित इस अनुत्तर धर्मचक्र का अनुप्रवर्तन तथागत (= बुद्ध ) का शिष्य सारिपुत्त करता है ॥ १० ॥

**बुद्धः—**

ब्राह्मण ! जो कुछ जानना था मैंने जान लिया, जिसे सिद्ध करना था सिद्ध कर लिया, जिसे दूर करना था दूर किया । इसलिए मैं बुद्ध हूँ ॥ ११ ॥

ब्राह्मण ! मेरे विषय में शंका दूर करो, श्रद्धा लाओ; सम्यक् सम्बुद्धों का दर्शन प्रायः दुर्लभ है ॥ १२ ॥

ब्राह्मण ! जिन का संसार में प्रादुर्भाव प्रायः दुर्लभ है, वह सम्यक् सम्बुद्ध, अनुत्तर शल्यकर्ता मैं हूँ ॥ १३ ॥

मैं ब्रह्मभूत हूँ, अतुल्य हूँ और मारसेना का मर्दन करने वाला हूँ । मैं सब शत्रुओं को वश में कर बिना भय के प्रमोद करता हूँ ॥ १४ ॥

इमं भोन्तो निसामेथ, यथा भासति चक्खुमा ।

सहकत्तो महावीरो, सीहोव नदति वने ॥ १५ ॥

ब्रह्मभूतं अतितुलं, मारसेनप्पमहनं ।

को दिस्वा नप्पसीदेय्य, अपि कण्हाभिजातिको ॥ १६ ॥

यो मं इच्छति अन्वेतु, यो वा निच्छति गच्छतु ।

इधाहं पब्बजिस्सामि, वरपब्बजस्स सन्तिके ॥ १७ ॥

एतं चे रुञ्चति भोतो, सम्मासम्बुद्धसासनं ।

मयम्पि पब्बजिस्साम, वरपब्बजस्स सन्तिके ॥ १८ ॥

ब्राह्मणा तिसता इमे, याचन्ति पञ्जलीकता ।

ब्रह्मचरियं चरिस्साम, भगवा तव सन्तिके ॥ १९ ॥

स्वाक्खातं ब्रह्मचरियं ( सेलाति भगवा ), संदिट्टिकमकालिकं ।

यत्थ अमोघा पब्बज्जा, अप्पमत्तस्स सिक्खतोति ॥ २० ॥

अलत्थ खो सेलो ब्राह्मणो सपरिसो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं अलत्थ उपसम्पदं । अथ खो केणियो जटिलो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके अस्समे पणीतं खादनीयं भोजनीय पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि-कालो भो गोतम, निट्ठितं भत्तन्ति । अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन केणियस्स जटिलस्स अस्समो तेनुप-सङ्कमि । उपसङ्कमित्वा पब्बत्ते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसङ्गेन । अथ खो केणियो जटिलो बुद्धपमुखं भिक्खुसङ्गं पणीतेन खादनीयेन भोज-नीयेन सहत्था संतप्पेसि संपवारेसि । अथ खो केणियो जटिलो भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अब्बतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नं खो केणियं जटिलं भगवा इमाहि गाथाहि अनुमोदि—

अग्निहुत्तमुक्खा यब्बा, सावित्ती छन्दसो मुखं ।

राजा मुखं मनुस्सानं, नदीनं सागरो मुखं ॥ २१ ॥

नक्खत्तानं मुखं चन्दो, आदिच्चो तपतं मुखं ।

पुब्बं आकङ्खमानानं, सङ्को वे यजतं मुखन्ति ॥ २२ ॥

अथ खो भगवा केणियं जटिलं इमाहि गाथाहि अनुमोदित्वा उट्ठाया-सना पक्कामि । अथ खो आयस्मा सेलो सपरिसो एको वूपकट्ठो अप्प-मत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो न चिरस्सेव यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्म-

**सेल:—**

शल्यकर्ता, महावीर, बन में सिंह की तरह गर्जन करने वाले परमज्ञानी जो कर रहे हैं, उसे आप ( शिष्यमण्डली ) सुनें ॥ १५ ॥

ब्रह्मभूत, अतुल्य, मारसेना को मर्दन करनेवाले इन्हें देख कर कौन नीच जातिवाला पुरुष भी प्रसन्न नहीं होगा ? ॥ १६ ॥

जो चाहे सो मेरा अनुसरण करे, जो न चाहे चला जाय । मैं उत्तम प्रज्ञ (= बुद्ध ) के पास प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा ॥ १७ ॥

**सेल के शिष्य:—**

यदि सम्यक् सम्बुद्ध का अनुशान आप को पसन्द हो तो हम भी महाप्रज्ञ के पास प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे ॥ १८ ॥

ये तीन सौ ब्राह्मण हाथ जोड़ कर ( प्रव्रज्या ) की याचना करते हैं । भगवान् ! हम आप के पास ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे ॥ १९ ॥

**बुद्ध:—**

अच्छी तरह उपदिष्ट, अकालिक (= जो इसी जन्म में देखते देखते शीघ्र फल देनेवाला है ) ब्रह्मचर्य का सद्गुपदेश मैंने किया है । यहाँ अप्रमत्त हो शिक्षा प्राप्त करनेवाले की प्रव्रज्या निष्फल नहीं होती ॥ २० ॥

सपरिषद् सेल ब्राह्मण ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई और उपसम्पदा पाई । तब केणिय जटिल उस रात्रि के बीतने पर अपने आश्रम में प्रणीत खाद्य, भोज्य तैयार कर भगवान् को समय सूचित किया—“हे गौतम ! अभी समय है, भोजन तैयार है ।” तब भगवान् सुबह पहन, पात्र—चीवर ले कर जहाँ केणिय जटिल का आश्रम था वहाँ गये, जाकर भिक्षु-संघ के साथ बिछ आसन पर बैठ गये । तब केणिय जटिल ने स्वयं प्रणीत खाद्य-भोज्य से बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघ की सेवा की । भगवान् के भोजन कर चुकने पर पात्र से हाथ हटाने पर केणिय जटिल छोटा सा आसन लेकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे केणिय जटिल को भगवान् ने इन गाथाओं में अनुमोदन किया:—

यज्ञों में अग्निहोत्र मुख्य है । छन्दों में सावित्री मुख्य है । मनुष्यों में राजा मुख्य हैं । नदियों में सागर मुख्य है ॥ २१ ॥

नक्षत्रों में चन्द्र मुख्य है । तेजस्वियों में सूर्य मुख्य है । पुण्य की आकांक्षा से दान देनेवालों के लिए संघ ही मुख्य है ॥ २२ ॥

भगवान् इन गाथाओं में केणिय जटिल को आदेश देकर चले गये । तब सपरिषद् आयुष्मान् सेल अकेले एकान्त में अप्रमत्त हो, प्रयत्नशील हो, लीनचित्त हो विहरते हुए जिसके लिए कुलपुत्र अच्छी तरह घर से बे-घर हो

देव अगारम्मा अनगारियं पव्वजन्ति तदनुत्तं ब्रह्मचरियपरियोसानं  
दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ज्या सच्छिक्त्वा उपसम्पज्ज विहासि, खीणा  
जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्तायाति अब्भञ्ज्यासि ।  
अव्वतरो च खो पनायस्मा सेलो सपरिसो अरहतं अहोसि । अथ खो  
आयस्मा सेलो सपरिसो येन भगवा तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा एकंसं  
चीवरं कत्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं गाथाहि  
अज्झभासि—

यं तं सरणमागम्म, इतो अट्टमि चक्खुम ।  
सत्तरत्तेन भगवा, दन्तम्ह तव सासने ॥ २३ ॥  
तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुवं माराभिभू मुनि ।  
तुवं अनुसये छेत्वा, तिण्णो तारेसिमं पजं ॥ २४ ॥  
उपधि ते समतिकन्ता, आसवा ते पदालिता ।  
सीहोसि अनुपादानो, पहीनभवभेरवो ॥ २५ ॥  
भिक्षवो तिसता इमे, तिट्ठन्ति पञ्जलीकता ।  
पादे वीर पसारेहि नागा, वन्दन्तु सत्थुनोति ॥ २६ ॥

सेलमुत्तं निट्ठित्तं ।

### ३४--सल्ल-सुत्तं

अनिमित्तमनञ्जातं, मच्चानं इध जीवितं ।  
कसिरं च परित्तं च, तं च दुक्खेन सञ्जुतं ॥ १ ॥  
न हि सो उपक्कमो अत्थि, येन जाता न मिय्यरे ।  
जरम्पि पत्वा मरणं, एवंधम्मा हि पाणिनो ॥ २ ॥  
फलानमिव पक्कानं, पातो पपतना भयं ।  
एवं जातानं मच्चानं, निच्चं मरणतो भयं ॥ ३ ॥  
यथापि कुम्भकारस्स, कता मत्तिकभाजना ।  
सब्बे भेदनपरियन्ता, एवं मच्चान जीवितं ॥ ४ ॥  
दहरा च महन्ता च, ये बाला ये च पण्डिता ।  
सब्बे मच्चुवसं यन्ति, सब्बे मच्चुपरायणा ॥ ५ ॥

प्रव्रजित होते हैं, उस ब्रह्मचर्य के अन्त (=निर्वाण) को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात् कर प्राप्त कर विहरने लगे। उन का जन्म क्षीण हुआ, ब्रह्मचर्यवास समाप्त हुआ, कृतकृत्य हो गये और उन्होंने जान लिया कि अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा। सपरिषद् आयुष्मान् सेल अर्हन्तों में से एक हो गये। तब सपरिषद् आयुस्मान् सेल भगवान् के पास गये। पास जाकर एक कन्धे पर चोवर संभाल कर भगवान् को प्रणाम कर गाथाओं में कहे :—

चक्षुष्मान् ! मैं ( आज से ) आठ दिन पूर्व आप की शरण में आया था। आपका धर्म पालन कर इन सात रातों में मैंने अपने को जीत लिया ॥ २३ ॥

आप बुद्ध हैं, आप शास्ता हैं, आप मार विजयी मुनि हैं। आप ने समूल वासनाओं को नष्ट कर ( भवसागर को ) पार किया और इन प्रजा को भी पार लगाया ॥ २४ ॥

आप बन्धनों के परे हैं। आप ने वासनाओं को नष्ट किया है। आप आसक्ति रहित है, भय-भीति रहित हैं ॥ २५ ॥

ये तीन सौ भिक्षु हाथ जोड़ खड़े हैं। वीर पादों को पसारिए। नाग (=श्रेष्ठ) शास्ता को वन्दना करें।

**सेवसुत्त समाप्त।**

### ३४—सल्ल-सुत्त

[ यह सूत्र जीवन की अनित्यता के विषय में है। इसमें तृष्णा के प्रहाण और मुक्ति का मार्ग बताया गया है—]

यहाँ मनुष्यों का जीवन उद्देश्यहीन है, अज्ञात है, कठिन है, अल्प है और वह भी दुःख से युक्त है ॥ १ ॥

ऐसा कोई उपाय नहीं है जिससे कि उत्पन्न प्राणी न मरे। जरा को प्राप्त होकर भी मरना है। प्राणियों का स्वभाव इस प्रकार है ॥ २ ॥

जिस प्रकार पके फलों के शीघ्र गिरने का भय सदा रहता है उसी प्रकार उत्पन्न मनुष्यों को नित्य मृत्यु-भय रहता है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार कुम्भकार द्वारा बने मिट्टी के सब बर्तन फूटने वाले हैं उसी प्रकार है मनुष्यों का जीवन ॥ ४ ॥

छोटे और बड़े, मूर्ख और पण्डित सब मृत्यु के वश में जाते हैं, सब मृत्यु के अधीन हैं ॥ ५ ॥

तैसं मच्चुपरेतानं, गच्छतं परलोकतो ।  
 न पिता तायते पुत्तं, ब्राति वा पन ब्रातके ॥ ६ ॥  
 पेक्खतं येव ब्रातीनं, पस्स लालपत्तं पुथु ।  
 एकमेको व मच्चानं, गोवज्झो विय निर्ययति ॥ ७ ॥  
 एवमब्भाहतो लोको, मच्चुना च जराय च ।  
 तस्मा धीरा न सोचन्ति, विदित्वा लोकपरियायं ॥ ८ ॥  
 यस्स मग्गं न जानासि, आगतस्स गतस्स वा ।  
 उभो अन्ते असम्पस्सं, निरत्थं परिदेवसि ॥ ९ ॥  
 परिदेवयमानो चे, कच्चिदत्थं उदब्बहे ।  
 सम्मुल्लो हिंसमत्तानं, कयिरा चेनं विचक्खणो ॥ १० ॥  
 न हि रुण्णेन सोकेन, सन्ति पप्पोति चेतसो ।  
 भियस्सुप्पज्जते दुक्खं, सरीरं उपहब्बति ॥ ११ ॥  
 किसो विवण्णो भवति, हिंसमत्तानमत्तना ।  
 न तेन पेता पालेन्ति, निरत्था परिदेवना ॥ १२ ॥  
 सोकमप्पजहं जन्तु, भिय्यो दुक्खं निगच्छति ।  
 अनुत्थुनन्तो कालकत्तं, सोकस्स वसमन्वगू ॥ १३ ॥  
 अब्बोपि पस्स गमिने, यथा कम्मूपगे नरे ।  
 मच्चुनो वसमागम्म, फन्दन्ते चिध पाणिनो ॥ १४ ॥  
 येन येन हि मब्बन्ति, ततो तं होति अब्बथा ।  
 एतादिसो विनाभावो, पस्स लोकस्स परियायं ॥ १५ ॥  
 अपि चे वस्ससत्तं जीवे, भिय्यो वा पन मानवो ।  
 ब्रातिसङ्गा विना होति, जहाति इध जीवितं ॥ १६ ॥  
 तस्मा अरहतो सुत्वा, विनेय्य परिदेवितं ।  
 पेतं कालकत्तं दिस्वा, न सो लब्भा मया इति ॥ १७ ॥  
 यथा सरणमादित्तं, वारिना परिनिब्बये ।  
 एवम्पि धीरो सप्पब्बो, पण्डितो कुसलो नरो ।  
 खिप्पमुपपित्तं सोकं, वातो तूलंब धंसये ॥ १८ ॥  
 परिदेवं पजप्पं च, दोमनस्सं च अत्तनो ।  
 अत्तनो सुखमेसानो, अब्बहे सल्लमत्तनो ॥ १९ ॥  
 अब्बूल्लसलो असितो, सन्ति पप्पुय्य चेतसो ।  
 सब्बसोकमतिक्कन्तो, असोको होति निब्बुतोति ॥ २० ॥  
 सल्लसुत्तं निट्ठितं ।

मृत्यु के अधीन, परलोक जाननेवाले उनमें से न तो पिता पुत्र की रक्षा कर सकता है और न बन्धु-बन्धुओं की रक्षा कर सकते हैं ॥ ६ ॥

बहुत से बन्धुओं के देखते और विलपते वध के लिए ले जाये जानेवाले गौ की तरह एक एक मनुष्य ( मृत्यु के पास ) जाता है ॥ ७ ॥

इस प्रकार संसार मृत्यु और जरा से पीड़ित है । इसलिए धीर लोक स्वभाव को जानकर दुःखित नहीं होते ॥ ८ ॥

जिसके आये या गये मार्ग को न जानते हुए और इन दोनों अन्तों को न देखते हुए ( तुम ) निरर्थक विलाप करते हो ॥ ९ ॥

अपने को सताते हुए विलाप करनेवाला मूर्ख यदि कुछ फल प्राप्त करे तो विचक्षण को चाहिए कि उसका अनुसरण करे ॥ १० ॥

रोने या विलपने से चित्त-शान्ति नहीं मिलती, किन्तु अधिकाधिक दुःख होता है और शरीर भी पीड़ित होता है ॥ ११ ॥

( शोक करने से ) कृश होता है, विवर्ण होता है, अपने आपको बहुत कष्ट होता है । इससे प्रेतों ( = मृतों ) की रक्षा नहीं होती और विलाप निरर्थक होता है ॥ १२ ॥

शोक को दूर नहीं करनेवाला मनुष्य अधिकाधिक दुःख को प्राप्त होता है । मरे हुए के विषय में सोचने से शोक के वशीभूत होता है ॥ १३ ॥

कर्मानुरूप यहाँ से जानेवाले दूसरे मनुष्यों और मृत्यु के वश में आकर छटपटानेवाले प्राणियों को देखो ॥ १४ ॥

मनुष्य जिस बातको जैसे सोचते हैं वह उससे भिन्न होती है । वियोग इस प्रकार है । संसार के स्वभाव को देखो ॥ १५ ॥

मनुष्य अधिक से अधिक सौ वर्ष या उससे कुछ अधिक जीकर बन्धुओं से लगभग अलग हो जाता है और वहाँ जीवन को छोड़ देता है ॥ १६ ॥

इसलिए अर्हन्त ( के उपदेश ) को सुनकर विलाप को छोड़ दे और मृत को देखकर सोचे कि अब लौटकर मुझे नहीं मिल सकता ॥ १७ ॥

जिस प्रकार आग लगे घर को पानी से बुझाया जाता है उसी प्रकार धीर, पण्डित, कुशल, प्राज्ञ नर उत्पन्न शोक को उस शीघ्रता से नष्ट कर देता है जिस शीघ्रता से हवा रुई को उड़ा ले जाती है ॥ १८ ॥

अपना सुख चाहनेवाला ( मनुष्य ) शल्य रूपी रोना, विलाप और मानसिक दुःख को निकाल दे ॥ १९ ॥

जो शल्य रहित है, अनासक्त है और चित्त शान्ति को प्राप्त है, वह सब शोक से परे हो, शोक रहित हो शान्त होता है ॥ २० ॥

सख्यसुख समाप्त ।

## ३५—वासेट्ट-सुत्तं

एवं मे सुत्तं । एकं समयं भगवा इच्छानङ्गले विहरति इच्छानङ्गल-  
वनसण्डे । तेन खो पन समयेम सम्बहुला अभिञ्जाता अभिञ्जाता ब्राह्म-  
णमहासाला इच्छानङ्गले पटिवसन्ति, सेय्यथीदं—चङ्की ब्राह्मणो, तारुखो  
ब्राह्मणो, पोक्खरसाति ब्राह्मणो, जानुस्सोणि ब्राह्मणो, तोदेय्यब्राह्मणो,  
अञ्जे च अभिञ्जाता अभिञ्जाता ब्राह्मणमहासाला । अथ खो वासेट्ट-  
भारद्वाजानं माणवानं जङ्घविहारं अनुचङ्कममानानं अनुविचरमानानं अय-  
मन्तरा कथा उदपादि—कथं भो ब्राह्मणो होतीति । भारद्वाजो माणवो एव-  
माह—यतो खो उभतो सुजातो होति मातितो च पितितो च संसुद्ध-  
गहणिको, याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपक्कुट्टो  
जातिवादेन, एत्तावता खो ब्राह्मणो होतीति । वासेट्टो माणवो एव-  
माह—यतो खो भो सीलवा च होति वतसम्पन्नो च, एत्तावता खो ब्राह्मणो  
होतीति । नेव खो असक्खि भारद्वाजो माणवो वासेट्टं माणवं सञ्जपेतुं, न  
पन असक्खि वासेट्टो माणवो भारद्वाजं माणवं सञ्जपेतुं । अथ खो वासेट्टो  
माणवो भारद्वाजं माणवं आमन्तेसि—अयं खो भारद्वाज समणो गोतमो  
सक्क्यपुत्तो सक्क्यकुला पव्वजितो इच्छानङ्गले विहरति इच्छानङ्गलवनसण्डे,  
तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्वो अब्भुगतो... पे०...  
बुद्धो भगवाति; आयाम भो भारद्वाज, येन समणो गोतमो तेनुपसङ्क-  
मिस्साम, उपसङ्कमित्वा समणं गोतमं एतमत्थं पुच्छिस्साम, यथा नो समणो  
गोतमो व्याकरिस्सति तथा नं धारेस्सामाति । एवं भोति खो भारद्वाजो  
माणवो वासेट्टस्स माणवस्स पच्चस्सोसि । अथ खो वासेट्टभारद्वाजा माणवा  
येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु, उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदिसुं,  
सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिसु । एकमन्तं  
निसिन्नो खो वासेट्टो माणवो भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि—

अनुञ्जातपटिञ्जाता, तेविज्जा मयमस्सु भो ।

अहं पोक्खरसातिस्स, तारुखस्सायं माणवो ॥ १ ॥

### ३५—वासेट्ट—सुत्त

[ इस सूत्र के अनुसार वृक्ष, लता तथा पशु-पक्षियों में जो जातिमय लक्षण विद्यमान हैं, लेकिन मनुष्यों में ऐसी बात नहीं है। मनुष्य सर्वत्र एक ही है। इसलिए मनुष्यों में जन्मगत उच्चता या नीचता को मानना बड़ा भ्रम है—]

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् इच्छानङ्गल में इच्छानङ्गल वन में विहार करते थे। उस समय बहुत से नामी और धनी ब्राह्मण इच्छानङ्गल में रहते थे, जैसे कि चंकी ब्राह्मण, तारुस्स ब्राह्मण, पोक्खरसाति ब्राह्मण, जानुस्सोणि ब्राह्मण तोदेय्य ब्राह्मण और दूसरे नामी और धनी ब्राह्मण।

तब टहलने निकले हुए वासेट्ट और भारद्वाज माणवों के बीच यह विवाद उठा कि ब्राह्मण किस प्रकार होता है ?

भारद्वाज माणवक ने ऐसा कहा—“जो दोनों—माता और पिता की ओर से सुजात है, ( जिसका ) परिशुद्ध गर्भधारण हुआ है न और जिसका वंश सातवीं पीढ़ी तक जातिवाद से अपमानित नहीं है, कलङ्कित नहीं है, वह ब्राह्मण होता है।

वासेट्ट माणवक ने ऐसा कहा—“जो शीलवान् और व्रतसम्पन्न है, वह ब्राह्मण है।”

न तो भारद्वाज माणवक वासेट्ट माणवक को अवगत करा सका और न वासेट्ट माणवक भारद्वाज माणवक को अवगत करा सका।

तब वासेट्ट माणवक ने भारद्वाज माणवक से कहा—“भारद्वाज ! शाक्य-कुल से प्रव्रजित, शाक्यपुत्र श्रमण गौतम इच्छानङ्गल में इच्छानङ्गल वन में विहार करते हैं। उनके विषय में...पे...ऐसी कीर्ति फैली है। चलो भारद्वाज, जहाँ श्रमण गौतम हैं उनके पास चलें, चलकर श्रमण गौतम से यह बात पूछें। श्रमण गौतम जैसे कहेंगे हम उसे मान लेंगे।

‘बहुत अच्छा’ कह भारद्वाज माणवक ने वासेट्ट माणवक को उत्तर दिया। तब वासेट्ट और भारद्वाज माणवक जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, जाकर कुशल-मङ्गल पूछकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे वासेट्ट माणवक ने गाथाओं में भगवान् से कहा:—

( भन्ते ! ) अनुज्ञात, प्रतिज्ञात हम लोग तीनों वेदों के ज्ञाता हैं। मैं पोक्खरसाति का ( शिष्य ) हूँ और यह माणवक तारुस्स का ( शिष्य ) है ॥ १ ॥

तेविज्जानं यदक्खातं, तत्र केवलिनोस्मसे ।  
 पदकस्मा वेय्याकरणा, जपे आचरियसादिसा ॥ २ ॥  
 तेसं नो जातिवादस्मिं, विवादो अत्थि गोतम ।  
 जातिया ब्राह्मणो होति, भारद्वाजोति भासति ।  
 अहं च कम्मना ब्रूमि, एवं जानाहि चक्खुम ॥३॥  
 ते न सक्कोम सब्बत्तं, अब्बमब्बं मयं उभो ।  
 भगवन्तं पुट्ठुमागम्म, सम्बुद्धं इति विस्सुतं ॥४॥  
 चन्दं यथा खयातीतं, पेच्च पञ्चलिका जना ।  
 वन्दमाना नमस्सन्ति, एवं लोकस्मिं गोतमं ॥५॥  
 चक्खुं लोके समुप्पन्नं, मयं पुच्छाम गोतमं ।  
 जातिया ब्राह्मणो होति, उदाहु भवति कम्मना ।  
 अजानतं नो पब्रूहि, यथा जानेमु ब्राह्मणं ॥६॥  
 तेसं वोहं व्यक्खिस्सं, (वासेट्ठाति भगवा) अनुपुब्बं यथातथं ।  
 जातिविभङ्गं पाणानं, अब्बमब्बा हि जातियो ॥७॥  
 तिणरुक्खेपि जानाथ, न चापि पटिजानरे ।  
 लिङ्गं जातिमयं तेसं, अब्बमब्बा हि जातियो ॥८॥  
 ततो कीटे पतङ्गे च, याव कुन्थकिपिल्लिके ।  
 लिङ्गं जातिमयं तेसं, अब्बमब्बा हि जातियो ॥९॥  
 चतुप्पदेपि जानाथ, खुद्दके च महल्लके ।  
 लिङ्गं जातिमयं तेसं, अब्बमब्बा हि जातियो ॥१०॥  
 पादूदरेपि जानाथ, उरगे दीघपिट्ठिके ।  
 लिङ्गं जातिमयं तेसं, अब्बमब्बा हि जातियो ॥११॥  
 ततो मच्छेपि जानाथ, उदके वारि गोचरे ।  
 लिङ्गं जातिमयं तेसं, अब्बमब्बा हि जातियो ॥१२॥  
 ततो पक्खीपि जानाथ, पत्तयाने विहङ्गमे ।  
 लिङ्गं जातिमयं तेसं, अब्बमब्बा हि जातियो ॥१३॥  
 यथा एतासु जातीसु, लिङ्गं जातिमयं पुथु ।  
 एवं नत्थि मनुस्सेसु, लिङ्गं जातिमयं पुथु ॥१४॥  
 न केसेहि न सीसेन, न कण्णेहि न अक्खिहि ।  
 न मुखेन न नासाय, ओट्ठेहि भमूहि वा ॥१५॥

त्रिवेदों में जो कुछ आया है, हमें उसका पूर्ण ज्ञान है। काव्य, व्याकरण और वेद में हम आचार्यों की तरह निपुण हैं ॥ २ ॥

गौतम ! जातिभेद के विषय में हमारा विवाद है; भारद्वाज कहता है कि ब्राह्मण जन्म से होता है। मैं तो कर्म से बताता हूँ। चक्षुष्मान् आप इस प्रकार जानें ॥ ३ ॥

हम लोग एक दूसरे को समझा नहीं कर सकते। इसलिए सम्बुद्ध (नाम से) विख्यात आप से ( इस विषय में ) पूछने आये हैं ॥ ४ ॥

जिस प्रकार लोग हाथ जोड़ कर पूर्णचन्द्र को नमस्कार करते हैं इसी प्रकार ( वे ) इस संसार में आप गौतम को भी ( प्रणाम ) करते हैं ॥ ५ ॥

संसार में उत्पन्न चक्षु रूप आप गौतम से हम पूछते हैं कि ब्राह्मण जन्म से होता है या कर्म से; आप हम नादानों को बतावें जिससे कि हम ब्राह्मण को जान सकें ॥ ६ ॥

हे वासेट्ट ! मैं क्रमशः यथार्थ रूप से प्राणियों के जातिभेद को बताता हूँ जिससे भिन्न भिन्न जातियाँ होती हैं ॥ ७ ॥

तृण-वृक्षों को जानो। यद्यपि वे इस बात का दावा नहीं करते, फिर भी उनमें जातिमय लक्षण है जिससे भिन्न भिन्न जातियाँ होती हैं ॥ ८ ॥

कीटों, पतङ्गों और चींटियों तक में जातिमय लक्षण है, जिससे उनमें भिन्न-भिन्न जातियाँ होती हैं ॥ ९ ॥

छोटे, बड़े जानवरों को भी जानो; उनमें भी जातिमय लक्षण है (जिससे) भिन्न-भिन्न जातियाँ होती हैं ॥ १० ॥

दीर्घपीठ, रेंगनेवाले कीड़ों को भी जानो; उनमें भी जातिमय लक्षण है ( जिससे ) भिन्न-भिन्न जातियाँ होती हैं ॥ ११ ॥

फिर पानी में रहनेवाली जलचर मल्लियों को भी जानो; उनमें भी जातिमय लक्षण है ( जिससे ) भिन्न-भिन्न जातियाँ होती हैं ॥ १२ ॥

आकाश में पंखों द्वारा उड़ने वाले पक्षियों को भी जानो; उनमें भी जातिमय लक्षण है ( जिससे ) भिन्न-भिन्न जातियाँ होती हैं ॥ १३ ॥

जिस प्रकार इन जातियों में भिन्न-भिन्न जातिमय लक्षण हैं। उसी प्रकार मनुष्यों में भिन्न-भिन्न जातिमय लक्षण नहीं हैं ॥ १४ ॥

दूसरी जातियों की तरह न तो मनुष्यों के केशों में, न सर में, न कानों में, न आँखों में, न मुख में, न नाक में, न ओठों में, न भौंहों में, न गले में,

न गीवाय न अंसेहि, न उदरेन न पिट्टिया ।  
 न सोणिया न उरसा, न सम्बाधे न मेथुने ॥१६॥  
 न हत्थेहि न पादेहि, नाङ्गुलीहि नखेहि वा ।  
 न जङ्घाहि न ऊरुहि, न वण्णेन सरेन वा ।  
 लिङ्गं जातिमयं नेव, यथा अञ्जासु जातिसु ॥१७॥  
 पञ्चत्तं स सरीरेसु, मनुस्सेस्वेतं न विज्जति ।  
 वोकारं मनुस्सेसु, समञ्जाय पवुच्चति ॥१८॥  
 यो हि कोचि मनुस्सेसु, गोरक्खं उपजीवति ।  
 एवं वासेट्ठ जानाहि, कस्सको सो न ब्राह्मणो ॥१९॥  
 यो हि कोचि मनुस्सेसु, पुथु सिप्पेन जीवति ।  
 एवं वासेट्ठ जानाहि, सिप्पिको सो न ब्राह्मणो ॥२०॥  
 यो हि कोचि मनुस्सेसु, वोहारं उपजीवति ।  
 एवं वासेट्ठ जानाहि, वाणिजो सो न ब्राह्मणो ॥२१॥  
 यो हि कोचि मनुस्सेसु, परपेस्सेन जीवति ।  
 एवं वासेट्ठ जानाहि, पेस्सिको सो न ब्राह्मणो ॥२२॥  
 यो हि कोचि मनुस्सेसु, अदिन्नं उपजीवति ।  
 एवं वासेट्ठ जानाहि, चोरो एसो न ब्राह्मणो ॥२३॥  
 यो हि कोचि मनुस्सेसु, इस्सत्थं उप जीवति ।  
 एवं वासेट्ठ जानाहि, योधाजीवो न ब्राह्मणो ॥२४॥  
 यो हि कोचि मनुस्सेसु, पोरोहिच्चेन जीवति ।  
 एवं वासेट्ठ जानाहि, याजको सो न ब्राह्मणो ॥२५॥  
 यो हि कोचि मनुस्सेसु, गामं रट्ठं च भुञ्जति ।  
 एवं वासेट्ठ जानाहि, राजा एसो न ब्राह्मणो ॥२६॥  
 न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि, योनिजं मत्तिसम्भवं ।  
 भोवादि नाम सो होति, सचे होति सक्किञ्चनो ।  
 अक्किञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२७॥  
 सञ्चसंयोजनं छेत्वा, यो वे न परितस्सति ।  
 सङ्गातिगं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२८॥  
 छेत्वा नन्धि वरत्तं च, सन्दानं सहनुक्कमं ।  
 उक्खित्तपळिघं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२९॥  
 अक्कोसं बधबन्धं च, अदुट्ठो यो तित्तिक्खति ।  
 खन्तीबलं बलानीकं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३०॥

न अंशों में, न पेट में, न पीठ में, न श्रोणि में, न उर में, न योनि में, न मैथुन में, न हाथों, न पादों में, न अँगुलियों में, न नखों में, न जंघों में, न ऊरुओं में, न वर्ण में, न स्वर में जातिमय लक्षण हैं ॥ १५-१७ ॥

( प्राणियों की ) भिन्नता शरीरों में है, मनुष्य में वैसी बात नहीं है । मनुष्यों में भिन्नता नाममात्र की है ॥ १८ ॥

वासेट्ठ ! मनुष्यों में जो कोई गोरक्षा से जीविका करता है उसे कृषक जानो न कि ब्राह्मण ॥ १९ ॥

वासेट्ठ ! मनुष्यों में जो कोई नाना शिल्पों से जीविका करता है उसे शिल्पी जानो न कि ब्राह्मण ॥ २० ॥

वासेट्ठ ! मनुष्यों में जो कोई व्यापार से जीविका करता है उसे बनिया जानो न कि ब्राह्मण ॥ २१ ॥

वासेट्ठ ! मनुष्यों में जो कोई दूसरों की सेवा करके जीविका करता है उसे सेवक जानो न कि ब्राह्मण ॥ २२ ॥

वासेट्ठ ! मनुष्यों में जो कोई चोरी से जीविका करता है उसे चोर जानो न कि ब्राह्मण ।

वासेट्ठ ! मनुष्यों में जो कोई धनुर्विद्या से जीविका करता है उसे योद्धा जानो न कि ब्राह्मण ॥ २४ ॥

वासेट्ठ ! मनुष्यों में जो कोई पुरोहिताई से जीविका करता है उसे पुरोहित जानो न कि ब्राह्मण ॥ २५ ॥

वासेट्ठ ! मनुष्यों में जो कोई ग्राम या राष्ट्र का उपयोग करता है उसे राजा जानो न कि ब्राह्मण ॥ २६ ॥

ब्राह्मणी माता की योनि से उत्पन्न होने से ही मैं : ( किसी को ) ब्राह्मण नहीं कहता । जो सम्पत्तिशाली है ( वह ) धनी कहलाता है जो अकिंचन है, तृष्णा रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २७ ॥

जो सब बन्धनों को तोड़कर निर्भय रहता है, जो आपत्तियों से परे है और तृष्णारहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २८ ॥

जो रस्सी रूपी क्रोध को, पगहे रूपी तृष्णाको, मुँह पर के जालरूपी मिथ्या धारणाओं को और जुआ रूपी अविद्या को तोड़कर बुद्ध हुआ है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ २९ ॥

जो कटुवचन, वध और बन्धन के बिना द्वेष को सह लेता है, क्षमाशील, क्षमा ही जिसकी सेना और बल है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३० ॥

अक्कोधनं वतवन्तं, सीलवन्तं अनुस्सदं ।  
 दन्तं अन्तिमसारीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३१॥  
 वारि पोक्खरपत्तेव, आरग्गेरिव सासपो ।  
 यो न लिप्पति कामेसु, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३२॥  
 यो दुक्खस्स पजानाति, इधेव खयमत्तनो ।  
 पन्नभारं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३३॥  
 गम्भीरपब्बं मोधविं, भग्गामग्गस्स कोविदं ।  
 उत्तमत्थं अनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३४॥  
 असंसद्वं गहट्ठेहि, अनागारेहि चूभयं ।  
 अनोकसारिं अप्पिच्छं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३५॥  
 निधाय दण्डं भूतेसु, तसेसु थावरेसु च ।  
 यो न हन्ति न घातेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३६॥  
 अविरुद्धं विरुद्धेसु, अत्तदण्डेसु निब्बुत्तं ।  
 सादानेसु अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३७॥  
 यस्स रागो च दोसो च, मानो मक्खो च पातितो ।  
 सासपोरिव आरग्गा, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३८॥  
 अक्कसं विज्जापनिं, गिरं सच्चं उदीरये ।  
 याय नाभिसजे कच्चि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३९॥  
 यो च दीघं व रस्सं वा, अणुं थूलं सुभासुभं ।  
 लोके अदिन्नं नादियति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४०॥  
 आसा यस्स न विज्जन्ति, अस्मि लोके परमिह च ।  
 निरासयं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४१॥  
 यस्सालया न विज्जन्ति, अज्जाय अकथंकथी ।  
 अमतोगधं अनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४२॥  
 योध पुब्बं च पापं च, उभो सङ्गं उपच्चगा ।  
 असोकं विरजं सुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४३॥  
 चन्दं व विमलं सुद्धं, विप्पसन्नमनाविलं ।  
 नन्दीभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४४॥  
 यो इमं पलिपथं दुग्गं, संसारं मोहमच्चगा ।  
 तिण्णो पारगतो ज्ञायी, अनेजो अकथंकथी ।  
 अनुपादाय निब्बुतो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४५॥

जो क्रोध रहित है, व्रती है, शीलवान है, तृष्णारहित है, दान्त है, अन्तिम शरीर धारण करनेवाला है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३१ ॥

पानी में लिप्त न होनेवाले कमल की तरह और आरे की नोक पर न टिकने वाले सरसोंके दानेकी तरह जो विषयोंमें लिप्त नहीं होता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जो इसी जन्म में दुःख के क्षय को जानता है, जो वासना-भार और तृष्णा रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३२ ॥

गम्भीर प्रज्ञ, बुद्धिमान्, मार्गामार्ग को जानने वाले, उत्तमार्थ को प्राप्त, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३४ ॥

जो गृहस्थ प्रव्रजित दोनों से अलग है, जो बेघर हो विहरण करता है, जिसकी आवश्यकताएं थोड़ी हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३५ ॥

जो स्थावर और जङ्गम सब प्राणियों के प्रति दण्ड का त्याग कर न तो स्वयं उनका वध करता है और न दूसरों से ( वध ) कराता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३६ ॥

जो विरोधियों में अविरोध रहता है, हिंसकों में शान्त रहता है और आसक्तों में अनासक्त रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३७ ॥

आरे की नोक पर न टिकने वाले सरसों के दाने की तरह जिसके राग, द्वेष, अभिमान और म्रक्ष छूट गये हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३८ ॥

जो अकर्कश ज्ञानकारी सत्य बात बोलता है, जिससे किसीको चोट नहीं पहुँचती, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ३९ ॥

जो संसार में लम्बी या छोटी, पतली या मोटी, अच्छी या बुरी किसी चीज की चोरी नहीं करता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४० ॥

जिसे इस लोक या परलोक के विषय में तृष्णा नहीं रहती, तृष्णा रहित, आसक्ति रहित उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४१ ॥

जो आसक्ति रहित है, ज्ञान के कारण संशय रहित हो गया है और अमृत ( = निर्वाण ) को प्राप्त है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४२ ॥

जो दोनों पुण्य और पाप की आसक्तियों से परे है, शोक रहित, रज रहित, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४३ ॥

जो चन्द्रमा की तरह निर्मल है, शुद्ध है, स्वच्छ है, निर्लिप्त, भवतृष्णा रहित उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४४ ॥

जो इस संकटमय, दुर्गम संसार रूपी मोह से परे हो गया है, जो उसे तैर कर पार कर गया है, जो ध्यानी है, पाप रहित है, संशय रहित है, तृष्णा रहित हो शान्त हो गया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४५ ॥

योध कामे पहत्वान, अनागारो परिब्बजे ।  
 कामभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४६॥  
 योध तण्हं पहत्वान, अनागारो परिब्बजे ।  
 तण्हाभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४७॥  
 हित्वा मानुसकं योगं, दिब्बं योगं उपच्चगा ।  
 सब्बयोगविसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४८॥  
 हित्वा रतिं च अरतिं च, सीतिभूतं निरूपधिं ।  
 सब्बलोकाभिमुं वीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४९॥  
 चुतिं यो वेदि सत्तानं, उपपत्तिं च सब्बसो ।  
 असत्तं सुगतं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ५० ॥  
 यस्स गतिं न जानन्ति, देवा गन्धब्बमानुसा ।  
 खीणासवं अरहन्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ५१ ॥  
 यस्स पुरे च पच्छा च, मज्झे च नत्थि किञ्चनं ।  
 अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ५२ ॥  
 उसभं पवरं वीरं, महेसिं विजिताविनं ।  
 अनेजं नहातकं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ५३ ॥  
 पुब्बे निवासं यो वेदि, सग्गापायं च पस्सति ।  
 अथो जातिक्खयं पत्तो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ ५४ ॥  
 समब्बा हेसा लोकस्मिं, नामगोत्तं पकप्पितं ।  
 सम्मुच्चा समुदागतं, तत्थ तत्थ पकप्पितं ॥ ५५ ॥  
 दीघरत्तमनुसयितं, दिट्ठिगतमजानतं ।  
 अजानन्ता नोपब्रुन्ति, जातिया होति ब्राह्मणो ॥ ५६ ॥  
 न जच्चा ब्राह्मणो होति, न जक्का होति अब्राह्मणो ।  
 कम्मना ब्राह्मणो होति, कम्मना होति अब्राह्मणो ॥ ५७ ॥  
 कस्सको कम्मना होति, सिप्पिको होति कम्मना ।  
 वाणिजो कम्मना होति, पेस्सिको होति कम्मना ॥ ५८ ॥  
 चोरोपि कम्मना होति, योधाजीवोपि कम्मना ।  
 याजको कम्मना होति, राजापि होति कम्मना ॥ ५९ ॥  
 एवमेतं यथाभूतं, कम्मं पस्सन्ति पण्डिता ।  
 पटिच्चसमुप्पाददसा, कम्मविपाककोविदा ॥ ६० ॥  
 कम्मना वत्तती लोको, कम्मना वत्तती पजा ।  
 कम्मनिबन्धना सत्ता, रथास्साणीव यायतो ॥ ६१ ॥

जो विषयों को त्याग बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, काम-तृष्णा क्षीण उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४६ ॥

जो तृष्णा को त्याग बेघर हो प्रव्रजित हुआ है, तृष्णा क्षीण उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४७ ॥

जो मानुषिक तथा देव योगों से परे है, सब योगों में अलिप्त उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४८ ॥

जो रति और अरति को त्याग, शान्त हो बन्धन रहित हो गया है, जो सारे संसार का विजेता और वीर है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ४९ ॥

जिसने सर्व प्रकार से प्राणियों की मृत्यु और जन्म को जान लिया है, जो अनासक्त है, सुगत है, बुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ५० ॥

जिसकी गति को देवता, गान्धर्व और मनुष्य नहीं जानते, जो वासनाक्षीण और अर्हन्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ५१ ॥

जिसको भूत, वर्तमान या भविष्य में किसी प्रकार की आसक्ति नहीं रहती, जो परिग्रह और आसक्ति रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ५२ ॥

जो श्रेष्ठ, उत्तम, वीर, महर्षि, विजेता, स्थिर, स्नातक, बुद्ध हैं उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ५३ ॥

जिसने पूर्व जन्म के विषय में जान लिया है, जो स्वर्ग और नरक दोनों को देखाता है और जो जन्म-क्षय को प्राप्त है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ॥ ५४ ॥

संसार में नाम गोत्र कल्पित हैं और व्यवहार मात्र है। एक एक के लिए कल्पित ये नाम व्यवहार से चले आये हैं ॥ ५५ ॥

मिथ्या धारणावाले अज्ञों ( के मन ) में ये ( नाम ) घर कर गये हैं। ( इसलिए ) अज्ञ लोग हमें कहते हैं कि ब्राह्मण जन्म से होता है ॥ ५६ ॥

न ( कोई ) जन्म से ब्राह्मण होता है और न जन्म से अब्राह्मण। कर्म से होता है और अब्राह्मण भी कर्म से ॥ ५७ ॥

कृषक कर्म से होता है, शिल्पी कर्म से होता है, वणिक् कर्म से होता है ( और ) सेवक कर्म से ॥ ५८ ॥

चोर भी कर्म से होता है, योद्धा भी कर्म से होता है, याजक भी कर्म से होता है ( और ) राजा भी कर्म से होता है ॥ ५९ ॥

कर्म फल को जाननेवाले पण्डित हेतु से उत्पन्न कर्म को इस प्रकार यथार्थ रूप से देखते हैं ॥ ६० ॥

संसार कर्म से चलता है। प्रजा कर्म से चलती है। चालू रथ का चक्र जिस प्रकार आणी से बँधा रहता है उसी प्रकार प्राणी भी कर्म से बँधे रहते हैं।

तपेन ब्रह्मचरियेन, संयमेन दमेन च ।

एतेन ब्राह्मणो होति, एतं ब्राह्मणमुत्तमं ॥ ६२ ॥

तीहि विज्जाहि सम्पन्नो, सन्तो खीणपुनब्भवो ।

एवं वासेट्ठ जानाहि, ब्रह्मा सक्को विजानतन्ति ॥ ६३ ॥

एवं वुत्ते वासेट्ठभारद्वाजा माणवा भगवन्तं एतद्वोचुं—अभिक्कन्तं भो गोतम...पे०...एते मयं भगवन्तं गोतमं सरणं गच्छाम धम्मञ्च भिक्खुसङ्घञ्च, उपासके नो भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेते सरणं गतेति ।

वासेट्ठसुत्तं निवृत्तं ।



### ३६—कोकालिय-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथ-पिण्डिकस्स आरामे । अथ खो कोकालियो भिक्खु येन भगवा तेनुप-सङ्कमि, उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो खो कोकालियो भिक्खु भगवन्तं एतद्वोच—पापिच्छा भन्ते सारिपुत्तमोग्गल्लाना, पापिकानं इच्छानं वसं गताति । एवं वुत्ते भगवा कोकालियं भिक्खुं एतद्वोच—मा हेवं कोकालिय, मा हेवं कोकालिय, पसादेहि कोकालिय सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं, पेसल सारिपुत्तमोग्गल्लानाति । दुतियम्पि खो कोकालियो भिक्खु भगवन्तं एतद्वोच--किञ्चापि मे भन्ते भगवा सद्वायिको पञ्चयिको, अथ खो पापिच्छाव सारिपुत्तमोग्गल्लाना, पापिकानं इच्छानं वसं गताति । दुतियम्पि खो भगवा कोकालियं भिक्खुं एतद्वोच—मा हेवं कोकालिय, मा हेवं कोकालिय, पसादेहि कोकालिय सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं, पेसल सारिपुत्तमोग्गल्लानाति । ततियम्पि खो कोकालियो भिक्खु भगवन्तं एतद्वोच—किञ्चापि मे भन्ते भगवा सद्वायिको पञ्चयिको, अथ खो पापिच्छाव सारिपुत्तमोग्गल्लाना, पापिकानं इच्छानं वसंगताति । ततियम्पि खो भगवा कोकालियं

तप, ब्रह्मचर्य, संयम और दम—इससे ब्राह्मण होता है। यही उत्तम ब्राह्मण है ॥ ६२ ॥

जो त्रिविद्याओं से युक्त है, शान्त है और पुनर्जन्म क्षीण है, विशों के लिए ब्राह्मण है, वासेट्ट इस प्रकार जानो।

इस प्रकार कहने पर वासेट्ट और भारद्वाज माणव भगवान् से बोले—  
“आश्चर्य है ! हे गौतम ! आश्चर्य है ! हे गौतम ! हे गौतम ! जिस प्रकार औंधे को सीधा कर दे, ढँके को खोल दे, भटके को राह बता दे या अन्धकार में तेल-प्रदीप जलावे, जिससे कि आँखवाले रूप देख सकें, इसी प्रकार आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया। हम आप गौतम की शरण जाते हैं, धर्म तथा भिक्षु संघ की भी। आप गौतम हमें आज से जीवन-पर्यन्त शरणागत उपासक धारण करें।

वासेट्टसुत्त समाप्त।

### ३६—कोकालिय-सुत्त

[ सारिपुत्त तथा मोग्गल्लान के प्रति चित्त दूषित करने के कारण कोकालिय दुर्गति को प्राप्त होता है। इसलिए सन्तों की निन्दा करना महा पाप है। निन्दनीय की प्रशंसा करना और प्रशंसनीय की निन्दा करना दोनों एक प्रकार के दोष हैं—]

ऐसा मैंने सुना :—

एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। तब कोकालिय भिक्षु भगवान् के पास गया, जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे कोकालिय भिक्षु ने भगवान् से यह कहा—‘भन्ते ! सारिपुत्त और मोग्गल्लान पापेच्छुक हैं, पापी इच्छाओं के वशीभूत हैं।’ ऐसा कहने पर भगवान् कोकालिय भिक्षु से यह बोले—“कोकालिय ! ऐसा न कहो, कोकालिय ! ऐसा न कहो। कोकालिय ! सारिपुत्त और मोग्गल्लान के प्रति श्रद्धा रखो, सारिपुत्त और मोग्गल्लान प्रियशीली हैं।’

दूसरी बार भी कोकालिय भिक्षु ने भगवान् से यह कहा—‘भन्ते ! यद्यपि मैं भगवान् में श्रद्धा रखता हूँ और प्रसन्न हूँ फिर भी सारिपुत्त और मोग्गल्लान पापेच्छुक हैं, पापी इच्छाओं के वशीभूत हैं।’ दूसरी बार भी भगवान् कोकालिय भिक्षु से यह बोले—‘कोकालिय ! ऐसा न कहो, कोकालिय ! ऐसा न कहो। कोकालिय ! सारिपुत्त और मोग्गल्लान के प्रति श्रद्धा रखो, सारिपुत्त और मोग्गल्लान प्रियशीली हैं।’

भिक्षुं एतद्वोच—मा हेवं कोकालिय, मा हेवं कोकालिय, पसादेहि कोकालिय सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं, पेसला सारिपुत्तमोग्गल्लानाति । अथ खो कोकालियो भिक्षु उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि । अचिरपक्कन्तस्स च कोकालियस्स भिक्षुनो सासपमत्तीहि पिलकाहि सव्वो कायो फुट्ठो अहोसि, सासपमत्तियो हुत्वा मुग्गमत्तियो अहेसुं, मुग्गमत्तियो हुत्वा कळायमत्तियो अहेसुं, कळायमत्तियो हुत्वा कोलट्ठिमत्तियो अहेसुं, कोलट्ठिमत्तियो हुत्वा कोलमत्तियो अहेसुं, कोलमत्तियो हुत्वा आमलकमत्तियो अहेसुं, आमलकमत्तियो हुत्वा वेळुवसलाटुकामत्तियो अहेसुं, वेळुवसलाटुकामत्तियो हुत्वा विल्लिमत्तियो अहेसुं, विल्लिमत्तियो हुत्वा पभिज्जिसु, पुब्बं च लोहितं च पग्घरिंसु । अथ खो कोकालियो भिक्षु तेनेवावाघेन कालं अकासि । कालकतो च कोकालियो भिक्षु पटुमनिरयं उपपज्जि सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वा ।

अथ खो ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्गमि, उपसङ्गमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि । एकमन्तं ठितो खो ब्रह्मा सहम्पति भगवन्तं एतद्वोच—कोकालियो भन्ते भिक्षु कालकतो, कालकतो च भन्ते कोकालियो भिक्षु पटुमनिरयं उपपन्नो सारिपुत्तमोग्गल्लानेसु चित्तं आघातेत्वाति । इदं अवोच ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायि ।

अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चेयेन भिक्षू आमन्तेसि—इमं भिक्षवे रत्तिं ब्रह्मा सहम्पति अभिक्कन्ताय रत्तिया...पे०...आघातेत्वाति; इदं अवोच ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा यत्थेवन्तरधायीति । एवं वुत्ते अञ्जतरो भिक्षु भगवन्तं एतद्वोच—कीव दीघं नु खो भन्ते पटुमे निरये आयुप्पमाणन्ति । दीघं खो भिक्षु पटुमे निरये आयुप्पमाणं, तं न सुकरं सङ्घातुं एत्तकानि वस्सानीति वा, एत्तकानि वस्ससतानीति वा, एत्तकानि वस्ससतसहस्सानीति वाति । सक्का पन भन्ते उपमा कातुन्ति । सक्का भिक्षूति भगवा अवोच—सेय्यथापि भिक्षु वीसतिखारिको कोसलको तिलवाहो, ततो

तीसरी बार भी कोकालिय भिक्षु ने भगवान् से यह कहा—‘भन्ते ! यद्यपि मैं आप में श्रद्धा रखता हूँ फिर भी सारिपुत्त और मोग्गल्लान पापेच्छुक हैं, पापी इच्छाओं के वशीभूत हैं ।’ तीसरी बार भी भगवान् कोकालिय भिक्षु से यह बोले—कोकालिय ! ऐसा न कहो, कोकालिय ! ऐसा न कहो । कोकालिय ! सारिपुत्त और मोग्गल्लान के प्रति श्रद्धा रखो, सारिपुत्त और मोग्गल्लान प्रियशीली हैं ।’

तब कोकालिय भिक्षु आसन से उठकर भगवान् को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया । वहाँ से चले जाने के कुछ समय ही बाद कोकालिय भिक्षु का सारा शरीर सरसों जैसी कुंसियों से भर गया, सरसों जैसी कुंसियों से मूँग जैसी हुई, मूँग से चने जितनी हुई, चने से बेर के बिये जितनी हुई, बेर के बिये से बेर फल जितनी हुई, बेर फल से आँवले जितनी हुई, आँवले से छोटे बेल जितनी हुई, बड़े बेल जितनी होकर फूट गई और पीच तथा लहू बहने लगे । तब कोकालिय भिक्षु उसी रोग से चल बसा । सारिपुत्त और मोग्गल्लान में चित्त दूषित कर कोकालिय भिक्षु पदुम नरक में उत्पन्न हुआ ।

तब सहस्रपती ब्रह्मा उस रात्रि के बीतने पर अपनी कान्ति से सारे जेतवन को आलोकित कर भगवान् के पास गया, पास जा भगवान् को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया, एक ओर खड़े हो सहस्रपती ब्रह्मा ने भगवान् से यह कहा—‘भन्ते ! कोकालिय भिक्षु का देहात्त हो गया है; सारिपुत्त और मोग्गल्लान के प्रति चित्त दूषित कर कोकालिय भिक्षु पदुम नरक में उत्पन्न हुआ है । सहस्रपती ब्रह्मा ने यह कहा । यह कहकर सहस्रपती ब्रह्मा भगवान् को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया ।

उस रात्रि के बीतने पर भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया—‘भिक्षुओ ! ब्रह्मा सहस्रपति...पे...यह कह कर मुझे अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया ।

ऐसा कहने पर एक भिक्षु ने भगवान् से पूछा—‘भन्ते ! पदुम नरक की आयु कितनी लम्बी है ?’

‘भिक्षु ! पदुम नरक की आयु बड़ी लम्बी है ।’ वह इतने वर्ष हैं, इतने सहस्र वर्ष हैं, इतने लाख वर्ष हैं करके गिनना आसान नहीं ।’

‘भन्ते ! क्या कोई उपमा दे सकते हैं ?’

‘हाँ, भिक्षु ! उपमा दी जा सकती है । भिक्षु ! मान लो कि बीस खारि

पुरिसो वस्ससतस्स अञ्चयेन एकं एकं तिलं उद्धरेय्य, खिप्पतरं खो सो भिक्खु वीसतिखारिको कोसलको तिलवाहो इमिना उपक्कमेन परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य, न त्वेव एको अब्बुदो निरयो । सेय्यथापि भिक्खु वीसति अब्बुदा निरया एवं एको निरब्बुदो निरयो, सेय्यथापि भिक्खु वीसति निरब्बुदा निरया एवं एको अबबो निरयो, सेय्यथापि भिक्खु वीसति अबबा निरया एवं एको अहहो निरयो, सेय्यथापि भिक्खु वीसति अहहा निरया एवं एको अटटो निरयो, सेय्यथापि भिक्खु वीसति अटटा निरया एवं एको कुमुदो निरयो, सेय्यथापि वीसति कुमुदा निरया, एवं एको सोगन्धिको निरयो, सेय्यथापि भिक्खु वीसति सोगन्धिका निरया एवं एको उप्पलको निरयो, सेय्यथापि भिक्खु वीसति उप्पलका निरया, एवं एको पुण्डरिको निरयो, सेय्यथापि भिक्खु वीसति पुण्डरिका निरया, एवं एको पदुमो निरयो । पदुमं खो पन भिक्खु निरयं कोकालियो भिक्खु उपपन्नो सारिपुत्तमोग्गलानेसु चित्तं आघातेत्वाति । इदं अवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतद्वोच सत्था—

पुरिसस्स हि जातस्स, कुठारी जायते मुखे ।

याय छिन्दति अत्तानं, बालो दुब्भासितं भणं ॥१॥

यो निन्दियं पसंसति, तं वा निन्दति यो पसंसियो ।

विचिनाति मुखेन सो कलिं, कलिना तेन सुखं न विन्दति ॥२॥

अप्पमत्तो अयं कलि,

यो अक्खेसु धनपराजयो, सब्बस्सापि सहापि अत्तना ।

अयमेव महत्तरो कलि, यो सुगतेसु मनं पदोसये ॥३॥

सतं सहस्सानं निरब्बुदानं, छत्तिस च पञ्च च अब्बुदानि ।

यं अरियगरही निरयं उपेति, बाचं मनं च पणिधाय पापकं ॥४॥

अभूतवादी निरयं उपेति, यो वापि कत्वा न करोमीति चाह ।

उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति, निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥५॥

यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति, सुट्ठस्स पोसस्स अनङ्गणस्स ।

तमेव बालं पञ्चेति पापं, सुखुमो रजो पट्टिवातं खित्तो ॥६॥

( = उस समय की एक माप ) तिल अटने वाली कोशल की जो गाड़ी है, एक पुरुष एक हजार वर्ष के बीतने पर उसमें से एक तिल निकाल दे, इस क्रम से कालान्तर में बीस खारि तिल भरी वह गाड़ी खाली हो जायेगी, समाप्त हो जायेगी; लेकिन अब्बुद नरक के एक जीवन काल की आयु नहीं। भिक्षु ! अब्बुद नरक के बीस जीवनो की आयु के बराबर है निरब्बुद नरक का एक जीवन काल। भिक्षु ! निरब्बुद नरक के बीस जीवनो की आयु के बराबर है अबब नरक का एक जीवनकाल। भिक्षु ! अबब नरक के बीस जीवनो की आयु के बराबर है अहह नरक का एक जीवनकाल। भिक्षु ! अहह नरक के बीस जीवनो की आयु के बराबर है अटट नरक का एक जीवन काल। भिक्षु ! अटट नरक के बीस जीवनो की आयु के बराबर है कुमुद नरक का एक जीवन काल। भिक्षु ! कुमुद नरक के बीस जीवनो की आयु के बराबर है सोगन्धिक नरक का एक जीवन काल। भिक्षु ! सोगन्धिक नरक के बीस जीवनो के बराबर है उप्पल नरक का एक जीवन काल। उप्पल नरक के बीस जीवनो की आयु के बराबर है पुण्डरीक नरक का एक जीवन काल। पुण्डरीक नरक के बीस जीवनो की आयु के बराबर है पदुम नरक का एक जीवन काल। भिक्षु ! सारिपुत्त और मोग्गल्लान के विषय में चित्त दूषित कर कोकालिय भिक्षु पदुम नरक में उत्पन्न हुआ है। ऐसा कह कर भगवान् ने आगे यह कहा :—

( इस संसार में ) जन्मने वाले पुरुष के सुख में कुटारी उत्पन्न होती है। कटु भाषणभाषी मूर्ख उससे अपने को नाश कर देता है ॥ १ ॥

जो निन्दनीय की प्रशंसा करता है, प्रशंसनीय की निन्दा करता है, वह सुख से पाप करता है और उस पाप के कारण ( वह ) सुख को प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥

जुए में अपने को और अपने सर्वस्व को जो खोना है, वह थोड़ी हानि है। इसकी अपेक्षा सन्तों के प्रति मन को जो दूषित करना है—वह बहुत बड़ी हानि है ॥ ३ ॥

आर्य ( = सन्त ) पुरुष की निन्दा करनेवाला अपने मन और वचन को पाप में लगा कर उस नरक में उत्पन्न होता है जहाँ की आयु एक लाख निरब्बुद और इकतालीस अब्बुद है ॥ ४ ॥

असत्यवादी नरक को जाता है, और जो कोई काम करके कहता है कि मैंने ऐसा नहीं किया वह भी। हीन कर्म करने वाले वे दोनों मनुष्य परलोक में समान होते हैं ॥ ५ ॥

जो दोष रहित, शुद्ध, निर्मल पुरुष को दोष लगाता है ( उसका ) पाप उल्टी हवा में फेंकी सूक्ष्म धूल की तरह उसी मूर्ख पर पड़ता है ॥ ६ ॥

यो लोभगुणे अनुयुक्तो, सो वचसा परिभासति अञ्जे ।  
अस्सद्वो कदरियो अवदञ्जू, मच्छरी पेसुणियस्मि अनुयुक्तो ॥७॥  
मुखदुग्ग विभूतमनरियं, भूनहु पापक दुक्कतकारि ।  
पुरिसन्तकलि अवजात, मा बहु भाणिध नेरयिकोसि ॥८॥

रजमाकिरसि अहिताय, सन्ते गरहसि किब्बिसकारी ।  
बहूनि च दुच्चरितानि चरित्वा, गच्छिसि खो पततं चिररत्तं ॥९॥  
न हि नस्सति कस्सचि कम्मं, एति ह नं लभतेव सुवामि ।  
दुक्खं मन्दो परलोके, अत्तनि पस्सति किब्बिसकारी ॥१०॥  
अयोसङ्कुसमाहतट्टानं, तिण्हधारमयसूलमुपेति ।  
अथ तत्तअयोगुळसन्निभं, भोजनमत्थि तथा पतिरूपं ॥११॥

न हि वग्गु वदन्ति वदन्ता, नाभिजवन्ति न ताणमुपेन्ति ।  
अङ्गारे सन्थते सेन्ति, अग्निसमं जलितं पविसन्ति ॥१२॥  
जालेन च ओनहियाना, तत्थ हनन्ति अयोमयकूटेहि ।  
अन्धवं तिमिसमायन्ति, तं विततं हि यथा महिकायो ॥१३॥

अथ लोहमयं पन कुम्भि, अग्निसमं जलितं पविसन्ति ।  
पच्चन्ति हि तासु चिररत्तं, अग्निसमासु समुप्पिलवासो ॥ १४ ॥  
अथ पुब्बलोहितमिस्से, तत्थ किं पच्चति किब्बिसकारी ।  
यं यं दिसतं अधिसेति, तत्थ किलिस्सति सम्फुसमानो ॥ १५ ॥  
पुळवावसथे सलिलस्मिं, तत्थ किं पच्चति किब्बिसकारी ।  
गन्तुं न हि तीरमपत्थि, सब्बसमा हि समन्तकपल्ला ॥ १६ ॥

असिपत्तवनं पन तिण्हं, तं पविसन्ति समच्छिदगत्ता ।  
जिह्वं बळिसेन गहेत्वा, आरचया रचया विहनन्ति ॥ १७ ॥  
अथ वेतरणिं पन दुग्गं, तिण्हधारं खुरधारमुपेति ।  
तत्थ मन्दा पपतन्ति, पापकरा पापानि करित्वा ॥ १८ ॥  
खादन्ति हि तत्थ रुदन्ते, सामा सबला काकोलगणा च ।  
सोणा सिगाला पटिगिज्झा, कुलला वायसा च वितुदन्ति ॥ १९ ॥

किच्छा वतायं इध वुत्ति, यं जनो पस्सति किब्बिसकारी ।  
तस्मा इध जीवितसेसे, किञ्चकरो सिया नरो न च पमज्जे ॥ २० ॥

जो श्रद्धा रहित है, जो दूसरों को दान देना सह नहीं सकता, जो किसी की बात नहीं सुनता, कंजूस है, जुगलखोरी में लगा है और लोभ में पड़ा है, वह वचन से दूसरों की निन्दा करता है ॥ ७ ॥

दुर्वच, झूठे, अनार्य, मनहूस, पापी, बुरे कर्मवाले, दोषी, अधम और नीच ( तुम ) बहुत मत बोलो, तुम नरकगामी हो ॥ ८ ॥

पापकारी ( तुम ) सन्तों की निन्दा करके अपने अहित का कर्म करते हो । अनेक बुराईयाँ करके बहुत समय के लिए गड्ढे में गिरोगे ॥ ९ ॥

किसी का कर्म नष्ट नहीं होता । कर्त्ता उसे प्राप्त करता ही है । पापकारी मूर्ख अपने को परलोक में दुःख में पड़ा पाता है ॥ १० ॥

वह लोहे के काँटों और तीक्ष्ण धारवाली लोहे की बर्छियों से सताये जानेवाले नरक में गिरता है । वहाँ तपे लोहे के गोले के समान उसके अनुरूप भोजन है ॥ ११ ॥

( नरकपाल ) उनसे मीठी बातें नहीं करते । वे प्रसन्न मुख से रक्षार्थ उनके पास नहीं आते । ( वे ) बिछे हुए अंगार पर सोते हैं और भभकती हुई आग में प्रवेश करते हैं ॥ १२ ॥

( नरकपाल ) जाल से बन्द करके लोहे के हथौड़ों से उनको कूटते हैं । वे घोर अन्धकार में पड़ते हैं जो विस्तृत पृथ्वी की तरह फैला है ॥ १३ ॥

तब वे आग के समान जलते लोहे की कड़ाही में गिरते हैं और आग के समान उसमें चिरकाल तक ऊपर नीचे आते जाते पचते रहते हैं ॥ १४ ॥

तब पीव और लहू से लथपथ हो पापकारी किस प्रकार पचता है । जहाँ जहाँ वह लेटता है, वहाँ वहाँ उनसे लथपथ हो मलिन हो जाता है ॥ १५ ॥

पापकारी कीड़ों से भरे पानी में किस प्रकार पचता है । वह ( कहीं ) तीर को नहीं पा सकता, क्योंकि चारों ओर कड़ाह हैं ॥ १६ ॥

घायल शरीर हो वे तीक्ष्ण असिपत्र वन में प्रवेश करते हैं । नरकपाल उनकी जीभ को काँटों से पकड़ कर ( उनका ) वध करते हैं ॥ १७ ॥

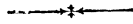
तब वे छूरे की धार के समान तीक्ष्ण धारा वाली दुस्तर वैतरणी ( नदी ) में गिरते हैं । मूर्ख पापकारी पाप कर उसी में गिरते हैं ॥ १८ ॥

वहाँ काले और चितकबरे बड़े कौवे उनको खा जाते हैं । कुत्ते, सियार, गृध्र, चील्ह और कौवे चाव के साथ उन्हें नोचते हैं ॥ १९ ॥

पापकारी मनुष्य नरक में जिस जीवन का अनुभव करता है, वह दुःखमय है । इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने शेष जीवन में अच्छे कर्म करे और प्रमाद न करे ॥ २० ॥

ते गणिता विदूहि तिलवाहा, ये पदुमे निरये उपनीता ।  
 नहुतानि हि कोटियो पञ्च भवन्ति, द्वादस कोटिसतानि पुनञ्चा ॥२१॥  
 यावदुक्खा निरया इध वुत्ता, तत्थपि ताव चिरं वसितब्बं ।  
 तस्मा सुचिपेसलसाधुगुणेषु, वाचं मनं सततं परिरक्खेति ॥ २२ ॥

कोकालिवसुत्तं निट्ठितं ।



### ३७—नाळक-सुत्तं

आनन्दजाते तिदसगणे पतीते, सक्कच्च इन्दं सुचिवसने च देवे ।  
 दुस्सं गहेत्वा अतिरिव थोमयन्ते, असितो इसि अहस दिवाविहारे ॥१॥  
 दिस्वान देवे मुदितमने उदग्गे, चित्तिं करित्वा इदमवोचासि तत्थ ।  
 किं देवसङ्घो अतिरिव कल्यरूपो, दुस्सं गहेत्वा भमयथा किं पटिच्च ॥२॥  
 यदापि आसि असुरेहि सङ्गमो, जयो सुरानं असुरा पराजिता ।  
 तदापि नेतादिसो लोमहंसनो, किं अब्भुतं दद्दु मरू पमोदिता ॥३॥  
 सेलेन्ति गायन्ति च वादयन्ति च, भुजानि पोढेन्ति च नच्चयन्ति च ।  
 पुच्छामि वोहं मेरुमुद्धवासिने, धुनाथ मे संसयं खिप्प मारिसा ॥४॥  
 सो बोधिसत्तो रतनवरो अतुल्यो, मनुस्सलोके हितसुखताय जातो ।  
 सक्कयानं गामे जनपदे लुम्बिनेय्ये, तेनम्ह तुट्ठा अतिरिव कल्यरूपा ॥५॥  
 सो सब्बसत्तुत्तमो अग्गपुग्गलो, नरासभो सब्बपजानं उत्तमो ।  
 वत्तेस्सति चक्कं इसिह्वये वने, नदंव सीहो बलवा मिगाभिभू ॥६॥

पदुम निरय में जो उत्पन्न होते हैं उनकी आयु पण्डितों की गिनती के अनुसार तिल के भार ( एक एक कर ) गिने जाने की तरह लम्बी है, जो पाँच नहुत कोटि और बारह सौ कोटि के बराबर है ॥ २१ ॥

यहाँ जितने भी नरक दुःख बताये गये हैं ( उसे ) इन सबको चिरकाल तक भोगना पड़ता है । इसलिए पवित्र, प्रियशील साधुओं के प्रति अपना मन और वचन संयत रखे ॥ २२ ॥

### कोकालियसुत्त समाप्त ।

### ३७—नालक-सुत्त

[ दिवा विहार के लिए तुषित देवलोक में गये असित ऋषि को देवताओं के जय-घोष से सिद्धार्थ की उत्पत्ति की सूचना मिलती है । वे सुद्धोदन राजा के महल में जा कर कुमार के विषय में भविष्यवाणी करते हैं । फिर ऋषि अपने मानजे नालक को सिद्धार्थ कुमार के भविष्य के विषय में सुनाते हैं और समय आने पर उसे शिष्य बनने का आदेश देते हैं । इस आदेश के अनुसार बाद में बालक भगवान् के पास जाता है और भगवान् उसे उपदेश देते हैं—]

दिवा विहार के लिए ( तुषित देवलोक में ) गये असित ऋषि ने आनन्द युक्त, प्रसुदित देवताओं और इन्द्र को युद्ध वस्त्र धारण किये कपड़े उछाल-उछाल कर सत्कार पूर्वक अत्यधिक गुणानुवाद करते देखा ॥ १ ॥

प्रसुदित हर्षित देवताओं को देख कर ( ऋषि ने ) आदर के साथ पूछा कि देवगण अत्यन्त प्रसन्न हो कपड़े क्यों उछालते हैं ? ॥ २ ॥

जिस समय असुरों से युद्ध हुआ था, जिसमें देवताओं की जय और असुरों की पराजय हुई थी, उस समय भी ऐसा आनन्दोत्सव नहीं हुआ था । फिर ( आप ) कौन सा आश्चर्य देख कर देवता प्रसुदित हैं ? ॥ ३ ॥

( देवता ) चिल्लाते हैं, गाते हैं, बजाते हैं, भुजाओं को ठोंकते हैं और नाचते हैं । मेरु पर रहने वाले आप लोगों से मैं पूछता हूँ, मार्ष ! जल्द मेरी शंका को दूर करें ॥ ४ ॥

प्राणियों के हित के लिए, सुख के लिए मनुष्य लोक में शाक्य जनपद के लुम्बिनी ग्राम में उत्तम, अतुल्य बोधिसत्व उत्पन्न हुए हैं; इसलिए हम अत्यन्त तुष्ट और प्रसन्न हैं ॥ ५ ॥

सब प्राणियों में उत्तम, नरश्रेष्ठ सारी प्रजा में उत्तम, वे महान् व्यक्ति गर्जनेवाले मृगराज सिंह की तरह ऋषिवन (= ऋषि पत्तन ) में धर्मचक्र का प्रवर्तन करेंगे ॥ ६ ॥

तं सहं सुत्वा तुरितमवंसरी सो, सुद्धोदनस्स तद भवनमुपागमि ।  
 निसज्ज तत्थ इदमवोचासि सक्खे, कुहिं कुमारो अहमपि दट्ठुकामो ॥७॥  
 ततो कुमारं जलितमिव सुवण्णं, उक्कामुखेव सुकुसलसम्पहट्ठं ।  
 तद्दह्ममानं सिरिंशो अनोमवण्णं, दस्सेसुं पुत्तं असितह्वयस्स सक्ख्या ॥८॥

दिस्वा कुमारं सिखिमिव पज्जलन्तं, तारासभं व नभसिगमं विसुद्धं ।  
 सुरियं तपन्तं सरदरिवब्भमुत्तं, आनन्दजातो विपुलमलत्थ पीतिं ॥९॥

अनेकसाखळ्च सहस्समण्डलं, छत्तं मरू धारयुं अन्तलिक्खे ।  
 सुवण्णदण्डा वीतिपतन्ति चामरा, न दिस्सरे चामरछत्तगाहका ॥१०॥

दिस्वा जटी कण्हसिरिह्वयो इसि, सुवण्णनिक्खं विय पण्डुकम्बले ।  
 सेतब्ब छत्तं धारयन्तं मुद्धनि, उदग्गचित्तो सुमनो पटिग्गहे ॥११॥

पटिग्गहेत्वा पन सक्ख्यपुङ्गवं, जिगिंसको लक्खणमन्तपारगू ।  
 पसन्नचित्तो गिरमब्भुदीरयि, अनुत्तरायं दिपदानमुत्तमो ॥१२॥

अथत्तनो गमनमनुस्सरन्तो, अकल्यरूपो गलयति अस्सुकानि ।  
 दिस्वान सक्ख्या इसिमवोचुं रुदन्तं, नो चे कुमारे भविस्सति अन्तरायो ॥१३॥

दिस्वान सक्खे इसिमवोच अकल्ये, नाहं कुमारे अहितमनुस्सरामि ।  
 न चापिमस्स भविस्सति अन्तरायो, न ओरकायं अधिमनसा भवाथ ॥१४॥

सम्बोधिगमं फुसिस्सतायं कुमारो, सो धम्मचक्रं परमविसुद्धदस्सी ।  
 वत्तेस्सतायं बहुजनहितानुकम्पी, वित्थारिकस्स भविस्सति ब्रह्मचरियं ॥१५॥

ममब्बायुं न चिरमिधावसेसो, अथन्तरा मे भविस्सति कालकिरिया ।  
 सोहं न सुस्सं असमधुरस्स धम्मं, तेनहि अट्ठो व्यसनगतो अघावी ॥१६॥

सो साकियानं विपुलं जनेत्व पीतिं, अन्तेपुरह्मा निगमा ब्रह्मचारी ।  
 सो भागिनेय्यं सयमनुकम्पमानो, समादपेसि असमधुरस्स धम्मो ॥१७॥

उस शब्द को सुनकर वह वहाँ से उत्तर कर शुद्धोदन के महल में पहुँचा । वहाँ बैठ कर शाक्यों से पूछा कि कुमार कहाँ हैं ? मैं भी उन्हें देखना चाहता हूँ ॥ ७ ॥

सुन्दर ढंग से निर्मित, चमकदार सुवर्ण की तरह कान्ति से जाज्वल्यमान उत्तम रूपवान् कुमार असित नामक ऋषि को दिखाया ॥ ८ ॥

जलती आग, आकाशगत निर्मल चन्द्रमा और मेष रहित शरदाकाशगत सूर्य जैसे शोभायमान कुमार को देख कर ऋषि को विपुल आनन्द हुआ, प्रीति हुई ॥ ९ ॥

आकाश में देवताओं ने अनेक शाखा और सहस्र मण्डलवाले छत्र को धारण किया और सोने की बेंट वाले चामर चलाये; लेकिन चामर और छत्र को धारण करनेवाले दिखाई नहीं दिये ॥ १० ॥

जटाधारी, असित नामक ऋषि ने पीतवर्ण कम्बल में रखी स्वर्णमुद्रा जैसे ( सुन्दर ), ऊपर स्वेत छत्रधारी कुमार को देख हर्षित और प्रसुदित मन हो. उन्हें ग्रहण किया ॥ ११ ॥

उत्तम शाक्य ( कुमार ) को ग्रहण कर 'लक्षण शास्त्र और वेद पारंगत दर्शनाभिलाषी ( ऋषि ) ने प्रसन्न चित्त होकर कहा कि यह ( कुमार ) मनुष्यों में उत्तम हैं, अतुल्य हैं ॥ १२ ॥

अपने ( परलोक ) गमन का स्मरण कर ( ऋषि ) आँसू बहाने लगे । ( ऋषि ) को रोते देख शाक्यों ने पूछा—'क्या कुमार को कोई अनिष्ट तो नहीं होने वाला है ? ॥ १३ ॥

ऋषि ने शाक्यों को दुःखित देख कर कहा कि मैं कुमार का कोई अहित नहीं देखता और न उन पर कोई विपत्ति ही आयेगी । ये साधारण मनुष्य नहीं, आप लोग प्रसन्न रहें ॥ १४ ॥

उत्तम, विशुद्धदर्शी यह कुमार सम्बोधि को प्राप्त करेंगे और बहुजनों के प्रति अनुकम्पा कर उन के हित के लिए धर्मचक्र का प्रवर्तन करेंगे, उनका ब्रह्मचर्य ( = धर्म ) फैलेगा ॥ १५ ॥

यहाँ मेरी आयु अधिक शेष नहीं रही । इसलिए बीच ही में मेरी मृत्यु होगी और मैं अतुल्य पराक्रमी के धर्म को सुनने नहीं पाऊँगा इसलिए अभागा मैं दुःखित हूँ ॥ १६ ॥

शाक्यों को विपुल आनन्द देकर वह ब्रह्मचारी अन्तःपुर से निकल गया । वह अपने भानजे पर अनुकम्पा करके उसे अतुल्य पराक्रमी ( = बुद्ध ) के धर्म में लगाया ॥ १७ ॥

बुद्धोति घोसं यद परतो सुणासि, सम्बोधिपत्तो विचरति धम्ममगं ।  
गन्वान तत्थ समयं परिपुच्छियानो  
चरस्सु तस्मिं भगवति ब्रह्मचरियं ॥ १८ ॥

तेनानुसिट्ठो हितमनसेन तादिना, अनागते परमविसुद्धदस्सिना ।  
सो नालको उपचितपुञ्जसञ्चयो,  
जिनं पतिकखं परिवसि रक्खितिन्द्रियो ॥ १९ ॥

सुत्वान घोसं जिनवरचक्कवत्तने, गन्वान दिस्वा इसिनिमभं पसन्नो ।  
मोनेय्यसेट्ठं मुनिपवरं अपुच्छि, समागते असितब्धयस्स सासनेति ॥ २० ॥

वत्थुगाथा निट्ठिता ।

अञ्जातमेतं वचनं, असितस्स यथातथं ।  
तं तं गोतम पुच्छाम, सब्बधम्मान पारगं ॥ २१ ॥

अनगारियुपेतस्स, भिक्खाचरियं जिगिंसतो ।  
मुनि पब्रूहि मे पुट्ठो, मोनेय्यं उत्तमं पदं ॥ २२ ॥

मोनेय्यं ते उपञ्जिस्सं ( ति भगवा ), दुक्करं दुरभिसम्भव ।  
हन्द ते नं पवक्खामि, सन्थम्भस्सु द्दहो भव ॥ २३ ॥

समानभावं कुब्बेथ, गामे अक्कुट्टवन्दितं ।  
मनोपदोसं रक्खेय्य, सन्तो अनुण्णतो चरे ॥ २४ ॥

उच्चावचा निच्छरन्ति, दाये अग्गिसिखूपमा ।  
नारियो मुनिं पलोभेन्ति, ता सु तं मा पलोभयुं ॥ २५ ॥

विरतो मेथुना धम्मा, हित्वा कामे परोवरे ।  
अविरुद्धो असारत्तो, पाणेषु तसथावरे ॥ २६ ॥

यथा अहं तथा एते, यथा एते तथा अहं ।  
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये ॥ २७ ॥

हित्वा इच्छञ्च लोभञ्च, यत्थ सत्तो पुथुज्जनो ।  
चक्खुमा पटिपज्जेय्य, तरेय्य नरकं इमं ॥ २८ ॥

ऊनूदरो मिताहारो, अप्पिच्छस्स अलोलुपो ।  
स वे इच्छाय निच्छातो, अनिच्छो होति निब्बुतो ॥ २९ ॥

सम्बोधिप्राप्त, धर्म मार्ग का उपदेश देने वाले 'बुद्ध' का घोष, जब दूसरे से सुनोगे तो उनके पास जा धर्म के विषय में पूछ कर उन भगवान् के पास ब्रह्मचर्य का पालन करो ॥ १८ ॥

हितैषीभाव पूर्वक स्थिर, उत्तम, विशुद्ध भविष्य द्रष्टा से उपदिष्ट पुण्यवान उस नालक ने जिन (=बुद्ध) की प्रतीक्षा में तपस्वी हो इन्द्रियों की रक्षा की ॥ १९ ॥

धर्मचक्र प्रवर्तन के समय जिन (=बुद्ध) का घोष के सुनकर, पास जा, श्रेष्ठ ऋषि को देख, धर्म के विषय में असित के सिखाये प्रश्न उत्तम प्रश्न श्रेष्ठ ज्ञानी से पूछे ॥ २० ॥

### वस्तुगाथा समाप्त ।

**नालकः—**

यह बात यथार्थ रूप से मैंने असित से जान ली । सब धर्मों में पारङ्गत आप गौतम से मैं इस विषय में पूछता हूँ ॥ २१ ॥

वेधर हो भिक्षा पर जीनेवाले मुझे प्रश्न करने पर उत्तम पद के विषय में मुनि बतावें ॥ २२ ॥

**बुद्धः—**

दुष्कर और कठिनता से प्राप्त ज्ञान मार्ग की मैं व्याख्या करूँगा । मैं अवश्य उसके विषय में तुम्हें बताऊँगा । ( इसलिए ) फिर और दृढ़ चित्त हो जाओ ॥ २३ ॥

ग्राम में आक्रोष तथा वन्दना के प्रति समान भाव रखे । मन को दूषित न होने दे और शान्त तथा विनीत हो विचरण करे ॥ २४ ॥

दावाग्नि की ज्वाला के समान इष्ट और अनिष्ट आरम्भण उपस्थित हो जाते हैं । स्त्रियाँ मुनि को प्रलोभन देती हैं, वे तुम को प्रलोभित न करें ॥ २५ ॥

मैथुन धर्म से विरत हो, उत्कृष्ट-निकृष्ट विषयों को त्याग, स्थावर और जङ्गम प्राणियों के प्रति विरोध भाव या आमक्ति रहित होवे ॥ २६ ॥

जैसा मैं हूँ, वैसे ये ( प्राणी ) हैं । जैसे ये प्राणी हैं, वैसा मैं हूँ । इस प्रकार अपने समान ( समझ ) कर न तो ( किसी का ) बध करे और न करावे ॥ २७ ॥

संसारी मनुष्य जिस इच्छा और लोभ में आसक्त है, उसे त्याग ज्ञान पूर्वक विचरण करे और इस नरक को पार करे ॥ २८ ॥

हलका पेट, मिताहारी, अस्पृच्छ, लोलुपता रहित वह इच्छा रहित हो, सन्तोषी हो उपशान्त होता है ॥ २९ ॥

स पिण्डचारं चरित्वा, वनन्तमभिहारये ।  
 उपद्वितो रुक्खमूलस्मि, आसनूपगतो मुनि ॥ ३० ॥  
 स ज्ञानपमुतो धीरो, वनन्ते रमितो सिया ।  
 ज्ञायेथ रुक्खमलस्मि, अत्तानं अभितोसयं ॥ ३१ ॥  
 ततो रत्त्या विवसने, गामन्तमभिहारये ।  
 अब्बानं नाभिनन्देय्य, अभिहारञ्चगामतो ॥ ३२ ॥  
 न मुनि गाममागम्म, कुलेसु सहसा चरे ।  
 घासेसनं छिन्नकथो, न वाचं पयुतं भणे ॥ ३३ ॥  
 अलत्थं यदिदं साधु, नालत्थं कुसलामिति ।  
 उभयेनेव सो तादी, रुक्खं उपनिवत्तति ॥ ३४ ॥  
 स पत्तापाणी विचरन्तो, अमूगो मूगसम्मतो ।  
 अप्पं दानं न हीलेय्य, दातारं नावजानिय ॥ ३५ ॥  
 उच्चावचा हि पटिपदा, समणेन पकासिता ।  
 न पारं दिगुणं यन्ति, न इदं एकगुणं मुतं ॥ ३६ ॥  
 यस्स च विसता नत्थि, छिन्नसोतस्स भिक्खुनो ।  
 किञ्चाकिञ्चप्पहीनस्स, परिज्झाहो न विज्जाति ॥ ३७ ॥  
 मोनेय्यं ते उपब्बिजस्सं ( ति भगवा ), खुरधारूपमो भवे ।  
 जिब्बाय तालुमाहञ्च, उदरे संयतो सिया ॥ ३८ ॥  
 अलीनचित्तो च सिया, न चापि बहु चिन्तये ।  
 निरामगन्धो असितो, ब्रह्मचरियपरायणो ॥ ३९ ॥  
 एकासनस्स सिक्खेथ, समणूपासनसस्स च ।  
 एकत्तं मोनमक्खातं, एको चे अभिरमिस्सति ॥ ४० ॥  
 अथ भासिहि दस दिसा;  
 सुत्वा धीरानं निग्घोसं, ज्ञायीनं कामचागीनं ।  
 ततो हिरिञ्च सद्धञ्च, भिय्यो कुब्बेथ मामको ॥ ४१ ॥  
 तं नदीहि विजानाथ, सोब्बेसु पदरेसु च ।  
 सणन्ता यन्ति कुस्सोब्भा, तुण्ही याति महोदधि ॥ ४२ ॥  
 यदूनकं तं सणति, यं पूरं सन्तमेव तं ।  
 अड्ढ कुम्भूपमो बालो, रहदो पूरोव पण्डितो ॥ ४३ ॥

भिक्षा करके वह मुनि वन के समीप जाय और पेड़ के नीचे पहुँच आसन लगा कर बैठे ॥ ३० ॥

वन में रमते हुए वह धीर ध्यान तत्पर होवे, अपने को सन्तोष प्रदान कर पेड़ के नीचे ध्यान करे ॥ ३१ ॥

रात्रि के बीतने पर ( सुबह भिक्षा के लिए ) गाँव में पैठे । वहाँ न तो किसी का निमन्त्रण स्वीकार करे और न किसी के द्वारा गाँव से लाये गये भोजन को ॥ ३३ ॥

न मुनि गाँव में आकर सहसा विचरण करे । चुपचाप भिक्षा करे और ( उसके लिए ) किसी भी प्रकार का संकेत करते हुए कोई बात न बोले ॥ ३३ ॥

यदि कुछ मिले तो अच्छा है और न मिले तो भी ठीक है । इस प्रकार दोनों अवस्थाओं में अविचलित वह पेड़ के पास ही लौट जाता है ॥ ३४ ॥

गूंगे की तरह मौन हो, हाथ में पात्र लेकर विचरने वाला वह थोड़ा दान मिलने पर उसकी अवहेलना न करे और न दाता का तिरस्कार करे ॥ ३५ ॥

श्रमण ( = बुद्ध ) ने उत्कृष्ट और निकृष्ट रूप से प्रतिपदा को दिखाया है । ( लोग ) दो बार ( संसार सागर के ) पार नहीं जाते । यह मुक्ति एक देशीय नहीं है ॥ ३६ ॥

जिसमें तृष्णा नहीं, जिस भिक्षु ने भवस्रोत को नष्ट कर दिया है, जो कार्याकार्य से परे है, उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं ॥ ३७ ॥

छुरे की धार की तरह तीक्ष्ण ज्ञानमार्ग को मैं बताऊँगा । जीभ से तालु दबा खान-पान में संयत रहे ॥ ३८ ॥

अनासक्त चित्तवाला होवे, कामनाओं का बहुत चिन्तन न करे; वासना और तृष्णा रहित हो ब्रह्मचर्यपरायण होवे ॥ ३९ ॥

श्रमणों के अन्तकूल एकान्तवास का अभ्यास करे । एकान्तवास 'मोनेय्य' कहा गया है; ( इसलिए ) एकान्तवास में अभिरमण करे ॥ ४० ॥

ध्यानी, विषय-त्यागी धीरों के घोष को सुनकर मेरा श्रावक दस दिशाओं में चमके, पापकर्म करने में लज्जा माने और श्रद्धा को अधिकाधिक बढ़ावे ॥ ४१ ॥

उसे पोखरों और नालों के बीच नदी समझे । छोटी नदियाँ आवाज करती हुई बहती हैं और सागर बिना आवाज के बहता है ॥ ४२ ॥

जो पूर्ण नहीं, वह आवाज करता है और जो पूर्ण है, वह शान्त रहता है । मूर्ख अर्धपूर्ण घड़े की तरह है और पण्डित भरा जलाशय की तरह है ॥ ४३ ॥

यं समणो बहु भासति, उपेतमत्थसंहितं ।  
जानं सो धम्मं देसेति, जानं सो बहु भासति ॥ ४४ ॥  
यो च जानं सयंतत्तो, जानं न बहु भासति ।  
स मुनि मोनमरहति, स मुनि मोनमज्झगाति ॥ ४५ ॥

नालकमुत्तं निवृत्तं ।

### ३८—द्वयतानुपस्सना-सुत्तं

एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे । तेन खो पन समयेन भगवा तद्दुपोसथे पण्णरसे पुण्णाय पुण्णमाय रत्तिया भिक्खुसङ्घपरिवुतो अब्भोकासे निसिन्नो होति । अथ खो भगवा तुण्हीभूतं तुण्हीभूतं भिक्खुसङ्घं अनुविलोकेत्वा भिक्खु आमन्तेसि—ये ते भिक्खवे कुसला धम्मा अरिया निय्यानिका सम्बोधगामिनो तेसं वो भिक्खवे कुसलानं धम्मानं अरियानं निय्यानिकानं सम्बोधगामीनं का उपनिसा सवनायाति, इति चे भिक्खवे पुच्छितारो अस्सु, ते एवं अस्सु वचनीया—यावदेव द्वयतानं धम्मानं यथाभूतं ज्ञाणायाति । किञ्च द्वयतं वदेथ—इदं दुक्खं, अयं दुक्खसमुदयोति अयं एकाणुपस्सना, अयं दुक्खनिरोधो, अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदाति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्माद्वयतानुपस्सिनो खो भिक्खवे भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो द्विन्नं फलानं अञ्जतरं फलं पाटिकङ्कं—दिट्ठेव धम्मे अञ्जा, सति वा उपादिसेसे अनागामिताति । इदमवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

ये दुक्खं नप्पजानन्ति, अथो दुक्खस्स सम्भवं ।

यत्थ च सब्बसो दुक्खं, असेसं उपरुज्झति ।

तच्च मगं न जानन्ति, दुक्खूपसमगामिनं ॥ १ ॥

चेतोविमुत्तिहीना ते, अथो पञ्चाविमुत्तिया ।

अभब्बा ते अन्तकिरियाय, ते वे जातिजरूपगा ॥ २ ॥

ये च दुक्खं पजानन्ति, अथो दुक्खस्स सम्भवं ।

यत्थ च सब्बसो दुक्खं, असेसं उपरुज्झति ।

तच्च मगं पजानन्ति, दुक्खूपसमगामिनं ॥ ३ ॥

चेतोविमुत्तिसम्पन्ना, अथो पञ्चाविमुत्तिया ।

भब्बा ते अन्तकिरियाय, न ते जातिजरूपगाति ॥ ४ ॥

जो श्रमण अर्थयुक्त बहुत बात बोलता है, वह जानते हुए धर्म का उपदेश देता है और जानते हुए ही बोलता है ।

जो जानते हुए भी संयम के कारण बहुत नहीं बोलता, वह मुनि मुनित्व के योग्य है; उस मुनि ने ज्ञान को प्राप्त कर लिया है ॥ ४५ ॥

नालकसुत्त समाप्त ।

### ३८—द्वयतानुपस्सना-सुत्त

[यहाँ प्रतीत्य समुत्पाद के अनुलोम क्रम से दुःख का समुदय और प्रतिलोम क्रम से दुःख का विरोध दिखाये हैं—]

ऐसा मैंने सुना—

एक समय भगवान् श्रावस्ती में भिगारमाता के प्रासाद पूर्वाराम में विहार करते थे । उस समय भगवान् उस पूर्णमासी के उपोसथ के दिन रात्रि में भिक्षु-संघ से धिरे खुली जगह में बैठे थे । तत्र भगवान् ने शान्त, निःशब्द बैठे भिक्षु-संघ को देखकर भिक्षुओं को सम्बोधित किया—‘भिक्षुओ ! ये जो आर्य उत्तम सम्बोधि की ओर ले जाने वाले कल्याणकारक धर्म हैं, आर्य, उत्तम सम्बोधि की ओर ले जाने वाले इन कल्याणकारक धर्मों को सुनने से क्या लाभ है ?—ऐसे पूछनेवाले हों तो तुम्हें उन लोगों को बताना चाहिए कि दो धर्मों के यथार्थ ज्ञान का लाभ होता है । कौन से दो धर्मों को बताना चाहिए ? यह दुःख और दुःख का हेतु—एक अनुपश्यना (= विचारणीय बात ) है, यह दुःख निरोध और दुःखनिरोध की ओर ले जानेवाला मार्ग—दूसरी अनुपश्यना है । भिक्षुओ ! इन दोनों बातों पर मनन करनेवाला, अप्रमत्त, प्रयत्नशील, तत्पर भिक्षु दो फलों में से एक की कामना कर सकता है—इसी जन्म में पूर्ण ज्ञान या वासनाओं के रोप रहने पर अनागामित्व<sup>४३</sup> यह कहकर भगवान् फिर बोले:—

जो दुःख, दुःख के हेतु, सर्वथा दुःख के अशेष निरोध और दुःख निरोध के मार्ग को नहीं जानते, मानसिक विमुक्ति से रहित, प्रज्ञा विमुक्ति से रहित, दुःख के अन्त करने में असमर्थ वे जन्म और जरा को प्राप्त होते हैं ॥ १-२ ॥

जो दुःख, दुःख के कारण, सर्वथा दुःख के अशेष निरोध और दुःख निरोध के मार्ग को जानते हैं, मानसिक विमुक्ति और प्रज्ञा विमुक्ति से युक्त वे दुःख के अन्त करने में समर्थ होते हैं, वे जन्म और जरा को प्राप्त नहीं होते ॥ ३-४ ॥

सिया अब्बेनपि परियायेन सम्माद्वयतानुपस्सनाति, इति चे भिक्खवे पुच्छितारो अस्सु, सियातिस्सु वचनीया । कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं उपधिपञ्चयाति अयं एकानुपस्सना, उपधोनं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा.....पे०.....अथापरं एतद्वोच सत्था—

उपधीनिदाना पभवन्ति दुक्खा, ये केचि लोकस्मि अनेकरूपा ।  
यो वे अविद्धा उपधिं करोति, पुनपुनं दुक्खमुपेति मन्दो ।

तस्मा पजानं उपधिं न कयिरा, दुक्खस्स जातिप्पभवानुपस्सीति ॥५॥

सिया अब्बेनपि परियायेन सम्माद्वयतानुपस्सनाति, इति चे भिक्खवे पुच्छितारो अस्सु, सियातिस्सु वचनीया, कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं अविज्जापच्चयाति अयं एकानुपस्सना, अविज्जायत्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा...पे०.....अथापरं एतद्वोच सत्था—

जातिमरणसंसारं, ये वजन्ति पुनपुनं ।

इत्थभावब्बथाभावं, अविज्जा येव सा गति ॥ ६ ॥

अविज्जा हयं महामोहो, येनिदं संसितं चिरं ।

विज्जागता च ये सत्ता, नागच्छन्ति पुनवभवन्ति ॥ ७ ॥

सिया अब्बेनपि.....पे०.....कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं सङ्खारपच्चयाति अयं एकानुपस्सना, सङ्खारानं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति अयं द्वितियानुपस्सना । एवं सम्मा...अथापरं एतद्वोच सत्था—

यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं सङ्खारपच्चया ।

सङ्खारानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति ॥ ८ ॥

एतं आदीनवं वत्वा, दुक्खं सङ्खारपच्चया ।

सव्वसङ्खारसमथा, सञ्जाय उपरोधना ।

एवं दुक्खक्खयो होति, एतं वत्वा यथातथं ॥९॥

सम्मद्वसा वेदगुणो, सम्मदब्बाय पण्डिता ।

अभिमुय्य मारसंयोगं, नागच्छन्ति, पुनवभवन्ति ॥१०॥

सिया अब्बेनपि.....कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं विज्जाणापञ्चयाति अयमेकानुपस्सना, विज्जाणस्स त्वेव असेसवि-

‘क्या कोई दूसरा क्रम भी है जिससे द्रव्यता की अनुपश्यना की जा सकती है ?’—ऐसे पूछने वालों को बताना चाहिए कि ‘है’ । वह कौन सी है ? जो कुछ दुःख है वह सब वासनाओं के कारण होता है, यह है एक अनुपश्यना । वासनाओं की निःशेष निवृत्ति और निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना ।...पे...यह कह कर भगवान् आगे बोले :—

संसार में जो अनेक प्रकार के दुःख हैं वे वासनाओं के कारण उत्पन्न होते हैं । जो अज्ञ वासनाओं को उत्पन्न करता है वह बारम्बार दुःख को प्राप्त होता है । इसलिए दुःख की उत्पत्ति और हेतु को देखते हुए लोगों को चाहिए कि वासनाएँ उत्पन्न न करें ॥ ५ ॥

क्या कोई दूसरा क्रम भी है जिससे द्रव्यता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछने वालों को बताना चाहिए कि ‘है’ । वह कौन सी है ? जो कुछ दुःख होता है वह सब अविद्या के कारण होता है, यह है एक अनुपश्यना । अविद्या के ही निःशेष निवृत्ति से, निरोध से दुःख उत्पन्न नहीं होता, यह है दूसरी अनुपश्यना ।...पे...भगवान् आगे बोले :—

अविद्या के कारण ही ( लोग ) बारम्बार जन्म-मृत्यु रूपी संसार में आते और एक गति से दूसरी गति ( को प्राप्त होते हैं ) ॥ ६ ॥

यह आविद्या महामोह है, जिसके आश्रित हो ( लोग ) संसार में आते हैं । जो लोग विद्या से युक्त हैं, वे पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते ॥ ७ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्रव्यता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछने वालों को बताना चाहिए कि ‘है’ । कौन सा है ? जो कुछ दुःख है वह संस्कारों के कारण ही होता है, यह एक अनुपश्यना है । संस्कारों के निःशेष निरोध से दुःख नहीं होता, यह दूसरी अनुपश्यना है । पे...भगवान् आगे बोले :— ॥७॥

जो कुछ दुःख होता है वह सब संस्कारों के कारण ही है । संस्कारों के निरोध से दुःख उत्पन्न नहीं होता ॥ ८ ॥

दुःख के हेतु भूत संस्कारों के दुष्परिणाम को जानकर सब संस्कारों के प्रहाण करने और वासनाओं के रोकने से दुःख का क्षय होता है, इस बात को यथार्थतः जानकर सम्यक् दर्शी पण्डित संसार को जीतकर पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते ॥ ९—१० ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्रव्यता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि ‘है’ । कौन सा है ? जो कुछ दुःख है वह सब विज्ञान के कारण होता है, यह है एक अनुपश्यना । विज्ञान की

रागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा.....अथापरं एतदवोच सत्था—

यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं विज्झाणपञ्चया ।

विज्झाणस्स निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥११॥

एतं आदीनवं वत्वा, दुक्खं विज्झाणपञ्चया ।

विज्झाणूपसमा भिक्खु, निच्छातो परिनिव्वुतोति ॥१२॥

सिया अब्जेनपि...कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं फस्सपञ्चयाति अयमेकानुपस्सना, फस्सस्सत्वेव असेसविरागनिरोधो नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा..... अथापरं एतदवोच सत्था—

तेसं फस्सपरेतानं, भवसोतानुसारिणं ।

कुम्भगापटिपन्नानं, आरा संयोजनक्खयो ॥१३॥

ये च फस्सं परिज्जाय, अब्बाय उपसमे रता ।

ते व फस्साभिसमया, निच्छाता परिनिव्वुताति ॥१४॥

सिया अब्जेनपि.....कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं वेदनापञ्चयाति अयमेकानुपस्सना । वेदनानं त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा... अथापरं एतदवोच सत्था—

सुखं वा यदि वा दुक्खं, अदुक्खमसुखं सह ।

अज्झत्तञ्च वहिद्धा च, यं किञ्चि अत्थि वेदितं ॥१५॥

एतं दुक्खन्ति वत्वान, मोसधम्मं पलोकितां ।

फुस्स फुस्स वयं पस्सं, एवं तत्थ विरज्जति ।

वेदनानं खया भिक्खु, निच्छातो परिनिव्वुतोति ॥१६॥

सिया अब्जेनपि...कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं तण्हापञ्चयाति अयमेकानुपस्सना, तण्हाय त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा.....अथापरं एतदवोच सत्था—

तण्हादुतियो पुरिसो, दीघमद्धान संसरं ।

इत्थभावब्बथाभावं, संसारं नातिवत्तती ॥१७॥

निःशेष निवृत्ति और निरोध से दुःख उत्पन्न नहीं होता, यह है दूसरी अनुपश्यना ।...पे०...भगवान् आगे बोले :—

जो कुछ दुःख होता है वह सब विज्ञान के कारण होता है । विज्ञान के निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती ॥ ११ ॥

दुःख के हेतुभूत विज्ञान के दुष्परिणाम को जानकर विज्ञान के निरोध से भिक्षु सन्तुष्ट और शान्त हो जाता है ॥ १२ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है' । कौन सा है ? जो कुछ दुःख है वह सब स्पर्श के कारण होता है, यह एक अनुपश्यना है । स्पर्श के निःशेष निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना । ...पे०...भगवान् आगे बोले ।

स्पर्श से अभिभूत भवस्रोतानुगामी और कुमार्ग पर आरुढ़ लोगों के लिए बन्धनों का क्षय अति दूर है ॥ १३ ॥

जो स्पर्श को अच्छी तरह जानकर ज्ञानपूर्वक उपशम (= निर्वाण) में रत हैं, वे स्पर्श के निरोध से तृष्णा रहित हो उपशान्त हो जाते हैं ॥ १४ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिये कि 'है' । कौन सा है ? जो कुछ दुःख है वह सब वेदना के कारण उत्पन्न होता है, यह है एक अनुपश्यना । वेदना के निःशेष निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना ।...पे०...भगवान् आगे बोले :—

मुख, दुःख और उपेक्षा के रूप में जो कुछ भी अन्दर और बाहर की वेदनायें हैं । नश्वर और भेद्य उन्हें दुःख जानकर जो उनके व्यय को अच्छी तरह देखता है, उसे उसमें वैराग्य होता है । वेदना के क्षय से भिक्षु तृष्णा रहित हो उपशान्त हो जाता है ॥ १५-१६ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है' । कौन सा है ? जो कुछ दुःख होता है, वह सब तृष्णा के कारण है, यह है एक अनुपश्यना । वेदना के निःशेष निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना ।...पे०...भगवान् आगे बोले :—

दीर्घकाल तक आबागमन में एक गति से दूसरी गति में जानेवाला तृष्णा-युक्त पुरुष संसार को पार नहीं कर सकता ॥ १७ ॥

एतं आदीनवं बत्वा, तण्हा दुक्खस्स सम्भवं ।

वीततण्हो अनादानो, सतो भिक्खु परिब्वजेति ॥१८॥

सिया अब्बेनपि...पे...कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं उपादानपञ्चयाति अयमेकानुपस्सना, उपादानानन्त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा . पे...अथापरं एतदवोच सत्था—

उपादानपञ्चया भवो, भूतो दुक्खं निगच्छति ।

जातस्स मरणं होति, एसो दुक्खस्स सम्भवो ॥१९॥

तस्मा उपादानक्खया, सम्मदब्बाय पण्डिता ।

जातिक्खयं अभिब्बाय, नागच्छन्ति पुनब्भवन्ति ॥२०॥

सिया अब्बेनपि....पे...कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं आरम्भपञ्चयाति अयमेकानुपस्सना, आरम्भानन्त्वेव असेसविराग-निरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा... पे...अथापरं एतदवोच सत्था—

यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आरम्भपञ्चया ।

आरम्भानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥२१॥

एतं आदीनवं बत्वा, दुक्खं आरम्भपञ्चया ।

सब्बारम्भं पटिनिस्सज्ज, अनारम्भे विमुत्तिनो ॥२२॥

उच्छिन्नभवतण्हस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो ।

वित्तिण्णो जातिसंसारो, नत्थि तस्स पुनब्भवोति ॥२३॥

सिया अब्बेनपि.....पे०.....कथञ्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आहारपञ्चयाति अयमेकानुपस्सना, आहारानन्त्वेव असेसविरागनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा...पे...अथापरं एतदवोच सत्था—

यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आहारपञ्चया ।

आहारानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥२४॥

एतं आदीनवं बत्वा, दुक्खं आहारपञ्चया ।

सब्बाहारं परिब्बाय, सब्बाहारमनिस्सितो ॥ २५ ॥

आरोग्यं सम्मदब्बाय, आसवानं परिक्खया ।

सङ्गाय सेवी धम्मट्ठो, सङ्गं नोपेति वेदगूति ॥ २६ ॥

१८—दुःख के हेतुभूत तृष्णा के इस दुष्परिणाम को जान कर भिक्षु तृष्णा रहित हो, आसक्ति रहित हो स्मृति से विचरण करे ॥ १८ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है' । कौन सा है ? जो कुछ दुःख है, वह सब आसक्ति के कारण उत्पन्न होता है, यह है एक अनुपश्यना । आसक्ति के अशेष निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना ।...पे०...भगवान् आगे बोले :—

आसक्ति के कारण प्राणी संसार में आकर दुःख को प्राप्त होता है; यह जन्म दुःख का हेतु है ॥ १९ ॥

इसलिए पण्डित आसक्ति के क्षय को जानकर जन्म-क्षय को भी अच्छी तरह जान पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते ॥ २० ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछने वालों को बताना चाहिए कि 'है' । कौन सा है ? जो कुछ दुःख है वह सब तृष्णा युक्त प्रयत्न से उत्पन्न होता है, यह है एक अनुपश्यना । तृष्णायुक्त प्रयत्न के अशेष निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना । ...पे०...भगवान् आगे बोले—

जो कुछ दुःख है, वह सब तृष्णा युक्त प्रयत्न से उत्पन्न होता है । प्रयत्न के निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती ॥ २१ ॥

दुःख के हेतुभूत तृष्णा युक्त प्रयत्न के दुष्परिणाम को जान कर सभी प्रकार के प्रयत्नों को त्याग निष्कामता द्वारा विमुक्त, भवतृष्णा नष्ट, शान्त-चित्त भिक्षु जन्म रूपी संसार से पार है और उसके लिए पुनर्जन्म नहीं ॥ २२-२३ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछनेवालों को बताना चाहिए कि 'है' । कौन सा है ? जो कुछ दुःख है वह सब आहार ( = विषय भोग ) के कारण होता है, यह है एक अनुपश्यना । आहारों के निःशेष निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना ।...पे०...भगवान् आगे बोले :—

जो कुछ दुःख है वह सब आहार के कारण उत्पन्न होता है । आहार के निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती ॥ २४ ॥

दुःख के हेतुभूत आहार के दुष्परिणाम को देखकर सब आहार को अच्छी तरह जान, सब आहार से विरक्त हो, वासनाओं के नाश से उत्पन्न आरोग्यता को अच्छी तरह जानकर विचार पूर्वक ( जीवन की आवश्यकताओं का ) सेवन करने वाला विज्ञ पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता ॥ २५-२६ ॥

सिया अब्बेनपि...पे०...कच्च सिया ? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति,  
सब्बं इञ्जितपच्चयाति अयमेकानुपस्सना, इञ्जितानन्त्वेव असेसविरा-  
गनिरोधा नत्थि दुक्खस्स सम्भवोति अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा...  
...पे...अथापरं एतदवोच सत्था—

यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं इञ्जितपच्चया ।

इञ्जितानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्स सम्भवो ॥ २७ ॥

एतं आदीनवं वत्वा, दुक्खं इञ्जितपच्चया ।

तस्मा एजं वोस्सज्ज, सङ्गारे उपरुन्धिय ।

अनेजो अनुपादानो, सतो भिक्खु परिव्वजेति ॥ २८ ॥

सिया अब्बेनपि...पे०...कथञ्च सिया ? निस्सितस्स चलितं  
होति अयमेकानुपस्सना, अनिस्सितो न चलति अयं दुतियानुपस्सना ।  
एवं सम्मा...पे...अथापरं एतदवोच सत्था—

अनिस्सितो न चलति, निस्सितो च उपादियं ।

इत्थभावब्बथा भावं, संसारं नातिवत्तती ॥ २९ ॥

एतं आदीनवं वत्वा, निस्सयेसु महब्भयं ।

अनिस्सितो अनुपादानो, सतो भिक्खु परिव्वजेति ॥ ३० ॥

सिया अब्बेनपि...पे०...कथञ्च सिया ? रूपेहि भिक्खवे आरुप्पा  
सन्ततराति अयमेकानुपस्सना, आरुप्पेहि निरोधो सन्ततरोति अयं  
दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा...पे...अथापरं एतदवोच सत्था—

ये च रूपपगा सत्ता, ये च आरुप्पवासिनो ।

निरोधं अप्पजानन्ता, आगन्तारो पुनब्भवं ॥ ३१ ॥

ये च रूपे परिव्वाय, अरूपेसु सुसण्ठिता ।

निरोधे ये विमुच्चन्ति, ते जना मच्चुहायिनोति ॥ ३२ ॥

सिया अब्बेनपि...पे०...कथञ्च सिया ? यं भिक्खवे सदेवकस्स  
लोकस्स समारकस्स सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय इदं  
सच्चन्ति उपनिञ्जायितं, तदमरियानं एतं मुसाति यथाभूतं सम्मप्प-  
ब्बाय सुहिट्ठं—अयमेकानुपस्सना; यं भिक्खवे सदेवकस्स पे०... सदेव-  
मनुस्साय इदं मुसाति उपनिञ्जायितं तदमरियानं एतं सच्चन्ति यथाभूतं  
सम्मप्पब्बाय सुहिट्ठं—अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्मा...पे.....  
अथापरं एतदवोच सत्था—

अनत्तनि अत्तमानि, पस्स लोकं सदेवकं ।

निविट्ठं नामरूपस्मि, इदं सच्चन्ति मब्बति ॥ ३३ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछने वालों को बताना चाहिए कि 'है' । कौन सा है ? जो कुछ दुःख है, वह सब चञ्चलता के कारण होता है, यह है एक अनुपश्यना । चञ्चलताओं के निःशेष निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं होती, यह है दूसरी अनुपश्यना ।...पे...भगवान् आगे बोले :—

जो कुछ दुःख है वह सब चञ्चलताओं के कारण उत्पन्न होता है, चञ्चलताओं के निरोध से दुःख की उत्पत्ति नहीं ॥ २७ ॥

दुःख के हेतुभूत चञ्चलता के दुष्परिणाम को जानकर उसे दूर करे और संस्कारों का अन्त कर, चञ्चलता और आसक्ति रहित हो भिक्षु स्मृतिमान् हो विचरण करे ॥ २८ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे कि द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछने वालों को बताना चाहिए कि 'है' । कौन सा है ? जो लिप्त रहता है उसमें चञ्चलता आ जाती है, यह है एक अनुपश्यना । जो निर्लिप्त रहता है उसमें चञ्चलता नहीं आती, यह है दूसरी अनुपश्यना ।...पे...भगवान् आगे बोले :—

जो लिप्ता रहित है, वह चञ्चल नहीं होता और जो चञ्चल है वह आसक्त है, वह एक गति से दूसरी गति में बदलने वाले संसार से पार नहीं होता ॥ २९ ॥

लिप्ता में इस महाभय को, दुष्परिणाम को देखकर भिक्षु लिप्ता रहित हो, आसक्ति रहित हो स्मृति के साथ विचरण करे ॥ ३० ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे कि द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछने वालों को बताना चाहिए कि 'है' । कौन सा है ? रूप लोकों से शान्ततर हैं अरूप लोक, यह है एक अनुपश्यना । अरूप लोकों से शान्ततर है निर्वाण, यह है दूसरी अनुपश्यना ।...पे...भगवान् आगे बोले :—

निर्वाण को न जानने वाले रूप योनियों में उत्पन्न और अरूप योनियों में वास करने वाले प्राणी पुनर्भव को प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥

जो रूप को जानते हैं, अरूपों में अनासक्त हैं, वे निर्वाण को प्राप्त हो मुक्त होते हैं और मृत्यु का अन्त कर देते हैं ॥ ३२ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे कि द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछने वालों को बताना चाहिए कि 'है' । कौन सा है ? भिक्षुओ ! देव, मार, ब्रह्म, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे सत्य मान लिया है, आर्यों ने सम्यक् प्रज्ञा से उसे यथार्थतः असत्य समझ लिया है, यह है एक अनुपश्यना । देव, मार, ब्रह्म, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे असत्य मान लिया है, आर्यों ने सम्यक् प्रज्ञा से उसे यथार्थतः सत्य समझ लिया है, यह है दूसरी अनुपश्यना ।...पे...भगवान् आगे बोले —

अनात्मा में आत्मा को मानने वाले देव सहित लोक को देखो । नाम और रूप में संलग्न प्राणी इसे सत्य मानता है ॥ ३३ ॥

येन येन हि मञ्ज्वन्ति, ततो तं होति अञ्जथा ।

तं हि तस्स मुसा होति, मोसधम्मं हि इत्तरं ॥ ३४ ॥

अमोसधम्मं निब्बाणं, तदरिया सक्कतो विदू ।

ते वे सक्काभिसमया, निच्छाता परिनिब्बुताति ॥ ३५ ॥

सिया अञ्जेनपि परियायेन सम्माद्वयतानुपस्सनाति इति चे भिक्खवे पुच्छितारो अस्सु, सियातिस्सु वचनीया । कथञ्च सिया ? यं भिक्खवे सदेवकस्स.....पे०.....सदेवमनुस्साय इदं सुखन्ति उपनिज्झायितं, तदमरियानं एतं दुक्खन्ति यथाभूतं सम्मपपञ्चाय सुद्धिट्ठं--अयमेकानुपस्सना, यं भिक्खवे सदेवकस्स.....पे०.....सदेवमनुस्साय इदं दुक्खन्ति उपनिज्झायितं, तदमरियानं एतं सुखन्ति यथाभूतं सम्मपपञ्चाय सुद्धिट्ठं--अयं दुतियानुपस्सना । एवं सम्माद्वयतानुपस्सिनो खो भिक्खवे भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो द्विन्नं फलानं अञ्जतरं फत्तं पाटिकङ्कं दिट्ठेव धम्मे अञ्जा, सति वा उपादिसेसे अनागासिताति । इदमवोच भगवा, इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

रूपा सद्दा रसा गन्धा, फस्सा धम्मा च केवला ।

इट्ठा कन्ता मनापा च, यावतत्थीति वुच्चति ॥ ३६ ॥

सदेवकस्स लोकस्स, एते वो सुखसम्मता ।

यत्थ चेते निरुज्झन्ति, तं तेसं दुक्खसम्मतं ॥ ३७ ॥

सुखन्ति दिट्ठमरियेहि, सक्कायस्सुपरोधनं ।

पक्कनीक इदं होति, सब्बलोकेन पस्सतं ॥ ३८ ॥

यं परे सुखतो आहु, तदरिया आहु दुक्खतो ।

यं परे दुक्खतो आहु, तदरिया सुखतो विदु ।

पस्स धम्मं दुराजानं, सम्पमूळहेत्थ अविद्दसु ॥ ३९ ॥

निवुतानं तमो होति, अन्धकारो अपस्सतं ।

सतञ्च विवटं होति, आलोको पस्सतं इव ।

सन्तिके न विजानन्ति, मगा धम्मस्स कोविदा ॥ ४० ॥

भवराग परेतेहि, भवसोतानुसारिहि ।

मारधेय्यानुपन्नेहि, नायं धम्मो सुसम्बुधो ॥ ४१ ॥

को नु अञ्जत्रमरियेहि, पदं सम्बुद्धमरहति ।

यं पदं सम्मदञ्जाय, परिनिब्बन्ति अनासवाति ॥ ४२ ॥

इदमवोच भगवा । अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दु । इमस्मिं खो पन वेय्याकरणस्मिं भञ्जमाने सट्ठिमत्तानं भिक्खूनं अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिसूति । द्वयतानुपस्सनासुत्तं निट्ठितं ।

( लोग ) जिसे जैसा मानते हैं, वह उससे भिन्न होता है । उनकी यह ( धारणा ) असत्य होती है । जो असत्य है, वह नश्वर है ॥ ३४ ॥

निर्वाण अनश्वर है । आर्यों ने उसे सत्य जान लिया है । सत्य को जानने वाले वे तृष्णा रहित हो उपाशान्त हो जाते हैं ॥ ३५ ॥

क्या कोई दूसरा भी क्रम है जिससे कि द्वयता की अनुपश्यना की जा सकती है ? ऐसे पूछने वालों को बताना चाहिए कि 'है' । कौन सा है ? भिक्षुओ ! देव, मार, ब्रह्म, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे सुख मान लिया है आर्यों ने सम्यक् प्रज्ञा से उसे यथार्थतः दुःख समझ लिया है, यह है एक अनुपश्यना । देव, मार, ब्रह्म, श्रमण तथा ब्राह्मण सहित सारे प्राणी समूह ने जिसे दुःख मान लिया है आर्यों ने उसे दुःख समझा है, यह है दूसरी अनुपश्यना । भिक्षुओ ! इन दोनों बातों पर मनन करने वाला अप्रमत्त, प्रयत्नशील तत्पर भिक्षु दो फलों में से एक की कामना कर सकता है—इसी जन्म में पूर्णज्ञान या वासनाओं के शेष रहने पर अनागामित्व । यह कहकर भगवान् आगे बोले:—

जितने भी इष्ट, प्रिय और मनाप रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श हैं, उन्हें देव सहित लोक ने सुख मान लिया है और जहां उनका निरोध होता है, उसे दुःख मान लिया है ॥ ३६-३७ ॥

पाँच स्कन्धों के निरोध को आर्यों ने सुख जान लिया है; सम्यक् दर्शकों का यह अनुभव ( सांसारिक अनुभव से ) भिन्न है ॥ ३८ ॥

दूसरों ने जिसे सुख कहा है, आर्यों ने उसे दुःख कहा है और दूसरों ने जिसे दुःख कहा है, आर्यों ने उसे सुख जान लिया है । जानने में दुष्कर इस धर्म को देखो । अज्ञ जन इस विषय में सर्वथा मूढ़ हैं ॥ ३९ ॥

मोहितों के लिए ( सब कुछ ) तम है । अदर्शकों के लिए ( सब कुछ ) अन्धकार है । जिस प्रकार आँख वालों को सब कुछ मालूम होता है, उसी प्रकार सन्तों के लिए ( सब कुछ ) प्रकट है । धर्म को न जानने वाले लोग पास रहने पर भी सत्य नहीं पहचानते ॥ ४० ॥

भवराग के वशीभूत, भवस्रोत में पड़े और मार (= कामदेव ) के अधीन लोगों के लिए यह धर्म समझना आसान नहीं है ॥ ४१ ॥

आर्यों के अतिरिक्त और कौन उस सम्बोधि पद के योग्य हैं जिसे अच्छी तरह समझ कर ( वे ) वासना रहित हो उपाशान्त हो जाते हैं ? ॥ ४२ ॥

भगवान् ने यह कहा । प्रसन्न भिक्षुओं ने भगवान् के उपदेश का अभिनन्दन किया । इस उपदेश के देते समय साठ भिक्षुओं के चित्त समूह वासनाओं से मुक्त हो गये ।

द्वयतानुपस्सनासुत्त समाप्त ।

## ४—अट्टकवग्गो

### ३९—काम-सुत्तं

कामं कामयमानस्स, तस्स चेतं समिज्झति ।  
अद्धा पीतिमनो होति, लद्धा मच्चो यदिच्छति ॥ १ ॥

तस्स चे कामयमानस्स, छन्दजातस्स जन्तुनो ।  
ते कामा परिहायन्ति, सल्लविद्धोव रुपति ॥ २ ॥

यो कामे परिवज्जेति, सप्पस्सेव पदा सिरो ।  
सो इमं विसत्तिकं लोके, सतो समतिवत्तति ॥ ३ ॥

खेत्तं वत्थुं हिरब्बं वा, गवास्सं दासपोरिसं ।  
थियो बन्धु पुथू कामे, यो नरो अनुगिज्झति ॥ ४ ॥

अबलानं बलीयन्ति, महन्ते नं परिस्सया ।  
ततो नं दुक्खमन्वेति, नावं भिन्नमिवोदकं ॥ ५ ॥

तस्मा जन्तु सदा सतो, कामानि परिवज्जये ।  
ते पहाय तरे ओघं, नावं सिञ्चित्व पारगूति ॥ ६ ॥

कामसुत्तं निव्वितं ।

### ४०—गुहट्टक-सुत्तं

सत्तो गुहायं बहुनाभिछन्नो, तिट्ठं नरो मोहनस्मि पगाळ्हो ।  
दूरे विवेका हि तथाविधो सो, कामा हि लोके न हि सुप्पहाया ॥ १ ॥

इच्छानिदाना भवसातवद्धा, ते दुप्पमुञ्चा न हि अब्बमोक्खा ।  
पच्छा पुरे वापि अपेक्खमाना, इमेव कामे पुरिमेव जप्पं ॥ २ ॥

## ४—अट्टकवग्ग

### ३९—काम-सुत्त

[ इस सूत्र में काम-तृष्णा के दुष्परिणाम वर्णित हैं— ]

यदि कामनाओं की इच्छा करने वाले की वे इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं, तो वह मनुष्य अवश्य प्रसन्नचित्त हो जाता है ॥ १ ॥

यदि तृष्णा के वशीभूत कामना वाले मनुष्य की वे कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तो वह तीर लगे ( मनुष्य ) की तरह दुःखित होता है ॥ २ ॥

जिस प्रकार पैर साँप को बचाते हैं, उसी प्रकार जो विषयों को त्याग देता है, वह स्मृतिमान् इस संसार में तृष्णा पर विजय पा लेता है ॥ ३ ॥

जो मनुष्य खेती, वस्तु, हिरण्य, गौ, अश्व, दास, स्त्री, बन्धु ( इत्यादि ) अनेक कामों की लालसा करता है, उसे वासनाएँ दबाती हैं और बाधाएँ मर्दन करती हैं । तब पानी में टूटी नाव की तरह वह दुःख में पड़ता है ॥ ४-५ ॥

इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि सदा स्मृतिमान् हो कामों का त्याग करें उनका त्याग कर भरी नाव को खालीकर भव-सागर को पार करें ॥ ६ ॥

कामसुत्त समाप्त ।



### ४०—गुहट्टक-सुत्त

[ इस सूत्र में संसार की असारता को जानकर निर्वाण को प्राप्त करने का उपदेश है— ]

शरीर में आसक्त, अनेक कामनाओं से आच्छादित, मोह में संलग्न नर शान्ति से बहुत दूर है । सांसारिक कामों को त्यागना सुकर नहीं ॥ १ ॥

जो इच्छाओं के वशीभूत हैं, सांसारिक सुखों में बद्ध हैं, उनकी मुक्ति अति कठिन है; क्योंकि वे दूसरों से मुक्त नहीं किये जा सकते । वे भूत और भविष्य की बातों की अपेक्षा करते हैं; वर्तमान कामनाओं की तरह उनके लिए भी तरसते हैं ॥ २ ॥

कामेसु गिद्धा पसुता पमूळ्हा, अवदानिया ते विसमे निविद्धा ।  
दुक्खूपनीता परिदेवयन्ति, किंसु भविस्साम इतो चुतासे ॥ ३ ॥

तस्मा हि सिक्खेथ इधेव जन्तु, यं किञ्चि जब्बा विसमन्ति लोके ।  
न तस्स हेतु विसमं चरेय्य, अप्पं हिदं जीवितमाहु धीरा ॥ ४ ॥

पस्सामि लोके परिफन्दमानं, पजं इमं तण्हागतं भवेसु ।  
हीना नरा मच्चुमुखे लपन्ति, अवीततण्हासे भवाभवेसु ॥ ५ ॥

ममायिते पस्सथ फन्दमाने, मच्छेव अप्पोदके खीणसोते ।  
एतम्पि दिस्वा अममो चरेय्य, भवेसु आसत्तिमकुब्बमानो ॥ ६ ॥

उभोसु अन्तेसु विनेय्य छन्दं, फस्सं परिब्बाय अनानुगिद्धो ।  
यदत्तगरही तदकुब्बमानो, न लिप्पति दिट्ठसुतेसु धीरो ॥ ७ ॥

सब्बं परिब्बा वितरेय्य ओघं, परिग्गहेसु मुनि नोपलित्तो ।  
अब्बूळ्हसल्लो चरमप्पमत्तो, नासिंसति लोकमिमं परच्चारति ॥ ८ ॥

गुहट्टकमुत्तं निद्धितं ।

### ४१--दुट्ठक-सुत्तं

वदन्ति वे दुट्ठमनापि एके, अथोपि वे सच्चमना वदन्ति ।  
वादब्ब जातं मुनि नो उपेति, तस्मा मुनि नत्थि खिलो कुहिञ्चि ॥ १ ॥

सकब्धि दिट्ठिं कथमच्चयेय्य, छन्दानुनीतो रुचिया निविद्धो ।  
सयं समत्तानि पकुब्बमानो, यथा हि जानेय्य तथा वदेय्य ॥ २ ॥

यो अत्तनो सीलवतानि जन्तु, अनानुपुट्ठो च परेस पावा ।  
अनरियधम्मं कुसला तमाहु, यो आतुमानं सयमेव पावा ॥ ३ ॥

सन्तो च भिक्खु अभिनिब्बुतत्तो, इतिहन्ति सीलेसु अकत्थमानो ।  
तमरिय्यधम्मं कुसला वदन्ति, यस्सुस्सदा नत्थि कुहिञ्चि लोके ॥ ४ ॥

जो कामों की लालसा करते हैं, उनमें लग्न हैं और उनसे मोहित हैं जो कंजूस हैं और विषमता में निविष्ट हैं वे दुःख में पड़कर विलाप करते हैं कि मृत्यु के बाद हम क्या होंगे ॥ ३॥

इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि संसार में जो कुछ विषमता है, उसे इसी जीवन में जान ( दुःख का ख्यालकर ) विषमता का आचरण न करें; क्यों-कि धीरों ने इस जीवन को अल्प कहा है ॥ ४ ॥

संसार में तृष्णा के वशीभूत हो छटपटानेवाली इस प्रजा को देखता हूँ । सांसारिक विषयों में तृष्णा सहित हीन नर मृत्यु के मुख में पड़कर विलाप करते हैं ॥ ५ ॥

अल्प जलवाले क्षीण जलाशय की मछलियों की तरह तृष्णा के वशीभूत हो छटपटाने वालों को देखो । इसको देखकर सांसारिक विषयों में आसक्ति न रखते हुए तृष्णा रहित हो विचरण करे ॥ ६ ॥

दोनों अन्तों में इच्छा को दूरकर, स्पर्श को अच्छी तरह जान, लालायित न हो, आत्म-निन्दा की बात न करते हुए धीर दृष्टियों तथा श्रुतियों में लिप्त नहीं होता ॥ ७ ॥

मुनि परिग्रह में लिप्त न हो, संज्ञा को अच्छी तरह जान, भव-सागर को तर जाय । ( वासना रूपी ) तीर को निकाल कर, अप्रमत्त हो विचरनेवाला इस लोक या परलोक की इच्छा नहीं करता ॥ ८ ॥

गुह्यद्वयसुत्त समाप्त ।



## ४१-दुष्टद्वय-सुत्त

[ मुनि किसी दृष्टि-विशेष में न पड़कर स्वतन्त्र रूप से विचरण करते हैं - ]

कुछ लोग दुष्ट मन से विवाद करते हैं और कुछ लोग विवाद करते हैं सच्चे मन से । मुनि विवाद में नहीं पड़ते, इसलिए वे ( मुनि ) कहीं संकीर्ण नहीं होते ॥ १ ॥

इच्छा को वशीभूत, रुचि में विनिष्ट ( मनुष्य ) अपनी दृष्टि को किस प्रकार त्याग सकता है ? अपने को पूर्ण घोषित करते हुए जो जाने वही बतावे ॥ २ ॥

जो मनुष्य बिना पूछे अपने शील-व्रतों की चर्चा करता है, आत्म-प्रशंसा करता है, उसे कुशलों ने अनार्य धर्म कहा है ॥ ३ ॥

जो भिक्षु शान्त है, उपशान्त है और अपने शील की चर्चा नहीं करता, जिसे संसार में कहीं तृष्णा नहीं, उसे कुशलों ने आर्यधर्म कहा है ॥ ४ ॥

पकप्पिता सङ्गता यस्स धम्मा, पुरेक्खता सन्ति अवीवदाता ।  
यदत्तनि पस्सति आनिसंसं, तं निस्सितो कुप्पपटिच्च सन्ति ॥ ५ ॥  
दिट्ठि निवेस्सा न हि स्वातिवत्ता, धम्मेसु निच्छेय्य समुग्गहीतं ।  
तस्मा नरो तेसु निवेसनेसु, निरस्सति आदियतिच्चधम्मं ॥ ६ ॥  
धोनस्स हि नत्थि कुह्मिच्च लोके, पकप्पिता दिट्ठि भवाभवेसु ।  
मायञ्च मानञ्च पहाय धोनो, स केन गच्छेय्य अनूपयो सो ॥ ७ ॥  
उपयो हि धम्मेसु उपेति वादं, अनूपयं केन कथं वदेय्य ।  
अत्तं निरत्तं न हि तस्स अत्थि, अधोसि सो दिट्ठिमिधेव सञ्चन्ति ॥ ८ ॥

दुट्ठकसुत्तं निट्ठितं ।



## ४२—सुद्धक-सुत्तं

पस्सामि सुद्धं परमं अरोगं, दिट्ठेन संसुद्धि नरस्स होति ।  
एताभिजानं परमन्ति वत्वा, सुद्धानुपस्सीति पच्चेति वाणं ॥ १ ॥  
दिट्ठेन चे सुद्धि नरस्स होति, वाणेन वा सो पजहाति दुक्खं ।  
अब्बेन सो सुज्झति सोपधीको, दिट्ठीहि नं पाव तथा वदानं ॥ २ ॥  
न ब्राह्मणो अब्बतो सुद्धिमाह, दिट्ठे सुते सीलवत्ते मुते वा ।  
पुब्बे च पापे च अनूपलित्तो, अत्तञ्जहो नयिध पकुब्बमानो ॥ ३ ॥  
पुरिमं पहाय अपरं सितासे, एजानुगा ते न तरन्ति सङ्गं ।  
ते उग्गहायन्ति निरस्सजन्ति, कपीव साखं पमुखं गहाय ॥ ४ ॥

जिसकी दृष्टियाँ कल्पित हैं, कृत हैं, तृष्णा से उत्पन्न हैं तथा उलझी हुई हैं और जो अपनी ( ऐसी ) दृष्टि में गुण देखता है, वह कृत और प्रतीत्य समुत्पन्न धर्मों पर आश्रित हैं ॥ ५ ॥

दृष्टि की आसक्ति को त्यागना सुकर नहीं, क्योंकि विचार के बाद कोई दृष्टि ग्रहण की जाती है । इसलिए मनुष्य धर्म विषयक उन दृष्टियों को ( बारबार ) छोड़ता और ग्रहण करता है ॥ ६ ॥

शुद्ध पुरुष संसार में कहीं भी कल्पित दृष्टि नहीं रखता; क्योंकि शुद्ध पुरुष ने माया और अभिमान को त्याग दिया है । इसलिए वासना रहित वह किस कारण विवाद में पड़े ? ॥ ७ ॥

वासना युक्त मनुष्य ही धर्म विषयक विवाद में पड़ता है । वासना रहित मनुष्य किस लिए विवाद में पड़े ? वह अपनत्व-परत्व के फेर में नहीं पड़ता, क्योंकि उसने यहाँ सभी दृष्टियों को त्याग दिया है ॥ ८ ॥

दुद्धटकसुत्त समाप्त ।

## ४२—दुद्धटक-सुत्त

[ मुक्ति किसी दृष्टि सम्बन्धी कोरे ज्ञान से नहीं, अपितु प्रज्ञा से उत्पन्न अनासक्ति से होती है— ]

( मैं ) विशुद्ध, परम, नीरोग्ग ( पुरुष ) को देखता हूँ । दृष्टि से मनुष्य की शुद्धि नहीं होती । जो दृष्टि को सर्वश्रेष्ठ मान लेता है, शुद्धि-आकांक्षी वह उसे परम ज्ञान ( = प्रज्ञा ) समझता है ॥ १ ॥

‘यदि दृष्टि से मनुष्य की शुद्धि नहीं होती और ( दृष्टि सम्बन्धी ) ‘ज्ञान’ से दुःख से मुक्ति नहीं होती, तो वासना युक्त मनुष्य की शुद्धि के लिए दूसरा मार्ग नहीं है’—जो इस प्रकार कहता है, वह किसी दृष्टि के फेर में पड़कर ही ऐसा कहता है ॥ २ ॥

दृष्टि, श्रुति, शील-व्रत और विचार में से किसी एक के द्वारा ब्राह्मण ने शुद्धि नहीं कही है । ( शुद्ध वही है ) जो कि पुण्य-पाप में अलित है और अहंकार तथा संस्कार रहित है ॥ ३ ॥

( लोग ) एक दृष्टि को छोड़ दूसरी दृष्टि को ग्रहण करते हैं । तृष्णा के वशी-भूत वे आसक्ति को पार नहीं कर सकते । वे ( पीछे की शाखा को छोड़ ) आगे की शाखा को पकड़नेवाले बन्दर की तरह एक दृष्टि को छोड़ दूसरी को ग्रहण करते हैं ॥ ४ ॥

सद्यं समादाय वतानि जन्तु, उच्चावचं गच्छति सञ्जसत्तो ।

विद्वा च वेदेहि समेच्च धम्मं, न उच्चावचं गच्छति भूरिपञ्चो ॥ ५ ॥

स सञ्जधम्मेषु विसेनिभूतो, यं किञ्चि दिट्ठं व सुतं सुतं वा ।

तमेव दर्सि स विवटं चरन्तं, केनीध लोकस्मि विकल्पयेय्य ॥ ६ ॥

न कप्पयन्ति न पुरेक्खरोन्ति, अञ्चन्तसुद्धीति न ते वदन्ति ।

आदानगन्थं गथितं विसज्ज, आसं न कुब्बन्ति कुहिञ्चि लोके ॥ ७ ॥

सीमातिगो ब्राह्मणो तस्स नत्थि, अत्वा'व दिस्वा'व समुग्गहीतं ।

न रागरागी नपि रागरत्तो, तस्सीध नत्थि परमुग्गहीतन्ति ॥ ८ ॥

मुद्धट्ठकमुत्तं निट्ठितं ।

### ४३—परमट्ठक-मुत्तं

परमन्ति दिट्ठीसु परिब्बसानो, यदुत्तरिं कुरुते जन्तु लोके ।

होनाति अञ्जे ततो सञ्जमाह, तस्मा विवादानि अवीतिवत्तो ॥ १ ॥

यदत्तनि पस्सति आनिसंसं, दिट्ठे सुते सीलवते सुते वा ।

तदेव सो तत्थ समुग्गहाय, निहीनतो पस्सति सञ्जमञ्जं ॥ २ ॥

तं वापि गन्थं कुसला वदन्ति, यं निस्सितो पस्सति हीनमञ्जं ।

तस्मा हि दिट्ठं व सुतं सुतं वा, सीलब्धतं भिक्खु न निस्सयेय्य ॥ ३ ॥

दिट्ठिम्पि लोकस्मि न कप्पयेय्य, ज्ञाणेन वा सीलवतेन वापि ।

समोति अत्तानमनूपनेय्य, हीनो न मञ्जेथ विसेसि वापि ॥ ४ ॥

अत्तं पहाय अनुपादियानो, ज्ञाणेपि सो निस्सयं नो करोति ।

स वे वियत्तेसु न वग्गसारी, दिट्ठिम्पि सो न पच्चेति किञ्चि ॥ ५ ॥

यस्सूभयन्ते पणिधीध नत्थि, भवाभवाय इध वा दुरं वा ।

निवेसना तस्स न सन्ति केचि, धम्मेषु निच्छेय्य समुग्गहीता ॥ ६ ॥

( साधारण ) मनुष्य स्वयं व्रतों को धारण कर, संज्ञाओं में आसक्त हो ऊँच-नीच के फेर में पड़ता है । ( लेकिन ) जिसने अच्छी तरह धर्म को समझ लिया है, वह महाप्रज्ञ ऊँच नीच ( के फेर ) में नहीं पड़ता ॥ ५ ॥

वह ( महाप्रज्ञ ) धर्म सम्बन्धी किसी दृष्टि, श्रुति या विचार में पक्षग्राही नहीं होते । केवल सत्य को देखकर स्वतन्त्र रूप से विचरण करनेवाले उन्हें संसार में कौन विलिप्त कर सकता है ? ॥ ६ ॥

न तो वे किसी दृष्टि के पक्ष में बोलते हैं, न किसी की प्रशंसा में बोलते हैं और न किसी को अत्यन्त शुद्ध ही बताते हैं । वे कट्टरता रूपी ग्रंथित ग्रन्थि को त्याग कर संसार में कहीं भी तृष्णा नहीं करते ॥ ७ ॥

जो ब्राह्मण ( = श्रेष्ठ पुरुष ) वासना रूपी सीमाओं के परे हैं, उन्हें ज्ञान या दृष्टि के विषय में दृढ़ ग्राह नहीं है । न तो वे राग में रत हैं और न वैराग्य में आसक्त हैं । यहाँ उनके सीखने के लिए कुछ बाकी नहीं है ॥ ८ ॥

### सुदृढकमुत्त समाप्त ।

### ४३—परमदृढक-मुत्त

[ जिसने सत्य को जान लिया है, वह दार्शनिक वाद-विवाद में नहीं पड़ता ]

इस संसार में जो अपनी दृष्टि को उत्तम मान बैठता है, उसकी बड़ाई करता है और दूसरों को नीच समझता है वह विवादों के परे नहीं है ॥ १ ॥

जो अपनी दृष्टि, श्रुति, शील-व्रत और विचार में गुण देखता है, वह उसी के फेर में पड़कर और सबको नीच देखता है ॥ २ ॥

जो अपनी दृष्टि के फेर में पड़कर दूसरे को नीच देखता है कुशलों ने उसे ग्रन्थि कहा है । इसलिए भिक्षु दृष्टि, श्रुति, विचार या शील-व्रत के फेर में न पड़े ॥ ३ ॥

संसार में ज्ञान या शील-व्रत के विषय में किसी प्रकार का मत कल्पित न करे । न तो अपने को दूसरों के समान समझे और न उनसे नीच या श्रेष्ठ समझे ॥ ४ ॥

जो अहंकार को त्याग तृष्णा रहित हो गया है, वह ज्ञान के फेर में भी नहीं पड़ता । वह दलबन्धियों में किसी का साथ नहीं देता और न वह किसी दृष्टि में आ पड़ता है ॥ ५ ॥

जिसे दोनों अन्तों में और इस लोक या परलोक में पुनर्जन्म के लिए तृष्णा नहीं रहती, उसे धार्मिक बात सम्बन्धी दृढ़ ग्राह से उत्पन्न असक्तियाँ नहीं होती ॥ ६ ॥

तस्सीध दिद्रे व मुते मुते वा, पक्कप्पिता नत्थि अणूपि सब्बा ।  
 तं ब्राह्मणं दिट्ठिमनादियानं, केनीध लोकस्मिं विकप्पयेय्य ॥ ७ ॥  
 न कप्पयन्ति न पुरेक्खरोन्ति, धम्मापि तेसं न पटिच्छितासे ।  
 न ब्राह्मणो सीलवतेन नेय्यो, पारं गतो न पच्चेति तादीति ॥ ८ ॥  
 परमद्वकसुत्तं निट्ठितं ।

### ४४—जरा-सुत्तं

अण्णं वत जीवितं इदं, ओरं वस्ससतापि मिय्यति ।  
 यो चेपि अतिच्च जीवति, अथ खो सो जरसापि मिय्यति ॥ १ ॥  
 सोचन्ति जना ममायिते, न हि सन्ति निच्चा वरिग्गहा ।  
 विनाभावसन्तमेविदं, इति दिस्वा नागारमावसे ॥ २ ॥  
 मरणेनपि नं पहीयति, यं पुरिसो ममयिदन्ति मब्बति ।  
 एवम्पि विदित्वा पण्डितो, न ममत्ताय नमेथ मामको ॥ ३ ॥  
 सुपिनेन यथापि सङ्गतं, पटिबुद्धो पुरिसो न पस्सति ।  
 एवम्पि पियायितं जनं, पेतं कालकतं न पस्सति ॥ ४ ॥  
 दिट्ठापि सुतापि ते जना, एसं नाममिदं पवुच्चति ।  
 नामेवावसिस्सति, अक्खेय्यं पेतस्स जन्तुनो ॥ ५ ॥  
 सोकपरिदेवमच्छरं, न जहन्ति गिद्धा ममायिते ।  
 तस्मा सुनयो परिग्गहं, हित्वा अचरिंसु खेमदस्सिनो ॥ ६ ॥  
 पतिलीनचरस्स भिक्खुनो, भजमानस्स विवित्तमानसं ।  
 सामगियमाहु तस्स तं, यो अत्तानं भवने न दस्सये ॥ ७ ॥  
 सब्बत्थ मुनि अनिस्सितो, न पिंयं कुब्बति नोपि अप्पियं ।  
 तस्मिं परिदेवमच्छरं, पण्णे वारि यथा न लिप्पति ॥ ८ ॥  
 उदबिंदु यथापि पोक्खरे, पदुमे वारि यथा न लिप्पति ।  
 एवं मुनि नोपलिप्पति, यदिदं दिट्ठ सुतं मुतेसु वा ॥ ९ ॥  
 धोनो न हि तेन मब्बति, यदिदं दिट्ठसुतं मुतेसु वा ।  
 न अब्बेन विसुद्धिमिच्छति, न हि सो रज्जति नो विरज्जतीति ॥ १० ॥  
 जरासुत्तं निट्ठितं ।

उन्हें किसी दृष्टि, श्रुति या विचार के विषय में अणुमात्र भी कल्पित धारणा नहीं रहती। किसी दृष्टि में अनासक्त उस ब्राह्मण को इस संसार में कौन विचलित कर सकता ? ॥ ७ ॥

वे किसी धर्म के फेर में पड़कर न तो उसके विषय में कोई मत देते हैं, न उसकी कोई बढ़ाई करते हैं। भवसागर के पार गये हुए स्थिर ब्राह्मण फिर किसी शील-व्रत के फेर में नहीं आ पड़ते ॥ ८ ॥

**परमदृकसुत्त समाप्त ।**

### ४४-जरा-सुत्त

[ तृष्णा से दुःख उत्पन्न होता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने इस लघु जीवन में तृष्णा का नाशकर मुक्ति को प्राप्त करे—]

यह जीवन लघु है। सौ वर्ष के पहले भी ( मनुष्य ) मरता है। जो इससे भी अधिक जीता है वह जरा को प्राप्त होकर मरता है ॥ २ ॥

तृष्णायुक्त लोग विलाप करते हैं कि उनके परिग्रह नित्य नहीं हैं। जीवन में वियोग ही है। यह जानकर यह में वास न करे ॥ २ ॥

मनुष्य जिसे अपनाता है मृत्यु के समय उसे छोड़ जाता है। इस बात को जाननेवाला मेरा पण्डित शिष्य तृष्णा की ओर न झुके ॥ ३ ॥

जिम प्रकार स्वप्न में प्राप्त वस्तु को मनुष्य जागने पर नहीं देखता उसी प्रकार ( वह ) मृत, प्रिय प्रेत जन को नहीं देखता ॥ ४ ॥

जो देखे और सुने जाते हैं उनकी चर्चा होती है। मृत मनुष्य का नाम मात्र अवशेष रह जाता है ॥ ५ ॥

तृष्णा युक्त लोभी (जन) शोक, विलाप और कंजूसी को नहीं छोड़ते। इसलिए मुनि लोग परिग्रह को छोड़ निर्वाणदर्शी हो विचरते थे ॥ ६ ॥

कामना रहित हो विचरनेवाले, अनासक्त, चित्त का अभ्यास करनेवाले भिक्षु को चाहिये कि फिर अपने को संसार में प्रकट न करे ॥ ७ ॥

सर्वत्र अनासक्त मुनि न तो किसी से प्रेम करता है और न द्वेष। जिस प्रकार पानी कमल के पत्ते पर असर नहीं करता, उसी प्रकार विलाप और कंजूसी उसपर असर नहीं करते ॥ ८ ॥

जिस प्रकार कमल का या पद्म के पत्ते पर पानी नहीं टिकता, उसी प्रकार मुनि दृष्टि, श्रुति या धारणा में आसक्त नहीं होता ॥ ९ ॥

शुद्ध पुरुष दृष्टि, श्रुति या धारणा को नहीं अपनाता। वह दूसरे की सहायता से शुद्धि की इच्छा नहीं करता। वह न तो कहीं रत है और न विरत है ॥ १० ॥

**जरासुत्त समाप्त ।**

### ४५—तिस्समेत्तेय्य-सुत्तं

मेथुनमनुयुत्तस्स ( इच्छायस्मा तिस्सो मेत्तेयो ), विघातं ब्रूहि मारिस ।  
सुत्वान तव सासनं, विवेके सिक्खेस्सामसे ॥ १ ॥

मेथुनमनुयुत्तस्स ( मेत्तेय्याति भगवा ), मुस्सतेवापि सासनं ।  
मिच्छा च पटिपज्जति, एतं तस्मि अनारियं ॥ २ ॥

एको पुब्बे चरित्वान, मेथुनं यो निसेवति ।  
यानं भन्तं तं लोके, हीनमाहु पुथुज्जनं ॥ ३ ॥

यसो कित्तिञ्च या पुब्बे, हायते वापि तस्स सा ।  
एतम्पि दिस्वा सिक्खेथ, मेथुनं विप्पहातवे ॥ ४ ॥

संकप्पेहि परेतो यो, कपणो विद्य ज्ञायति ।  
सुत्वा परेसं निग्घोसं, मंकु होति तथाविधो ॥ ५ ॥

अथ सत्थानि कुरुते, परवादेहि चोदितो ।  
एस ख्वस्स महागेधो, मोसवज्जं पगाहति ॥ ६ ॥

पण्डितोति समञ्जातो, एकचरियं अधिट्ठितो ।  
अथापि मेथुने युत्तो, मन्दोव परिकिस्सति ॥ ७ ॥

एतमादीनवं अत्वा, मुनि पुब्बापरे इधे ।  
एकचरियं दळ्हं कयिरा, न निसेवेथ मेथुनं ॥ ८ ॥

विवेकं येव सिक्खेथ, एतदरियानमुत्तमं ।  
तेन सेट्ठो न मञ्जेथ, स वे निब्बानसन्तिके ॥ ९ ॥

रित्तस्स मुनिनो चरतो, कामेसु अनपेक्खिनो ।  
ओघतिण्णस्स पिहयन्ति, कामेसु गथिता पजाति ॥ १० ॥

तिस्समेत्तेय्यसुत्तं निद्धितं ।

### ४६—पसूर-सुत्तं

इधेव सुद्धिं इति वादियन्ति, नाञ्जेसु धम्मेषु विसुद्धिमाहु ।  
यं निस्सिता तत्थ सुभं वदाना, पच्चेकसच्चेसु पुथू निविट्ठा ॥ १ ॥

### ४५—तिस्समेत्तेय्य-सुत्त

[ मुनि को चाहिए कि मैथुन से विरत हो अकेले विचरण करे—

**तिस्स मेत्तेय्यः—**

हे महान् ! यह बतावें कि मैथुन में आसक्त मनुष्यकी अवनति किस प्रकाश होती है ? आप के अनुशासन को सुनकर हम एकान्तवासकी शिक्षा ग्रहण करेंगे ॥

**भगवान्—**

मैथुन में अनुरक्त मनुष्य की शिक्षा निष्फल होती है । वह गलत राह पर चलता है और उसके विषय में यह निकृष्ट बात है ॥ २ ॥

जो पहले अकेला विचरण कर फिर मैथुन का सेवन करता है, वह हीन साधारण मनुष्य इस संसार में भ्रान्त रथ की तरह है ॥ ३ ॥

पहले उसकी जो यश और कीर्ति रही है, वह नष्ट हो जाती है । यह बात जानकर मैथुन त्याग के लिए शिक्षा ग्रहण करे ॥ ४ ॥

चिन्ताओं के वशीभूत हो वह कृपण की तरह सोच में पड़ता है । ऐसा मनुष्य दूसरों की निन्दा को सुनकर उदास हो जाता है ॥ ५ ॥

दूसरों के अपवादों से उत्तेजित हो वह ( अपनी रक्षा के लिए ) शस्त्र तैयार करता है । इस प्रकार विषम तृष्णा के कारण वह मिथ्या भाषण में पड़ता है ॥ ६ ॥

पण्डित के रूप में प्रसिद्ध और एकचर्या में प्रतिष्ठित जो मनुष्य फिर मैथुन में आसक्त होता है, वह मूर्ख की तरह अवनति को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

आरम्भ और अन्त में इस दुष्परिणाम को देखकर मुनि दृढ़ता के साथ अकेले विचरे और मैथुन का सेवन न करे ॥ ८ ॥

एकान्त का ही सेवन करे । आर्यों में यही उत्तम बात है । जो इस बात के कारण अपने को श्रेष्ठ नहीं मानता, वह निर्वाण के निकट है ॥ ९ ॥

चिन्ता रहित, कामों की अपेक्षा न करनेवाले, भवसागर पारङ्गत मुनि की स्पृहा विषय भोग में आसक्त लोग करते हैं ॥ १० ॥

**तिस्समेत्तेय्यसुत्त समाप्त ।**

### ४६—पसूर-सुत्त

[ लोग प्रशंसा के इच्छुक हो धर्म सम्बन्धी वाद-विवाद में पड़ते हैं । मुक्त पुरुष विवाद में नहीं पड़ते— ]

लोग विवाद करते हैं कि शुद्धि यहीं ( = अपने धर्म में ) है और विशुद्धि दूसरे धर्मों में नहीं है । वे अपने मत में आसक्त हो उसी का गुण गाते हैं । ( मनुष्य ) अलग-अलग धर्मों में निविष्ट हैं ॥ १ ॥

ते वादकामा परिसं विगय्ह, बालं दहन्ति मिथु अळ्वमळ्वं ।  
वदन्ति ते अळ्वसिता कथोज्जं, पसंसकामा कुसला वदाना ॥ २ ॥

युत्तो कथायं परिसाय मज्झे, पसंसमिच्छं विनिघाति होति ।  
अपाहतस्मि पन मंकु होति, निन्दाय सो कुप्पति रन्धमेसी ॥ ३ ॥

यमस्स वादं परिहीनमाहु, अपाहतं पव्हवीमंसकासे ।  
परिदेवति सोचति हीनवादो, उपच्चगा मन्ति अनुत्थुनाति ॥ ४ ॥

एते विवादा समणेसु जाता, एतेसु उग्घाति निघाति होति ।  
एतम्पि दिस्वा विरमे कथोज्जं, न हळ्वदत्थस्थि पसंसलाभा ॥ ५ ॥

पसंसितो वा पन तत्थ होति, अक्खाय वादं परिसाय मज्झे ।  
सो हस्सति उण्णमतिच्च तेन, पप्पुय्य तमत्थं यथामनो अहु ॥ ६ ॥

या उण्णति सास्स विघात्तभूमि, मानातिमानं वदते पनेसो ।  
एतम्पि दिस्वा न विवादयेथ, न हि तेन सुद्धिं कुसला वदन्ति ॥ ७ ॥

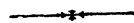
सूरो यथा राजखादाय पुट्ठो, अभिगज्जमेति पटिसूरमिच्छं ।  
येनेव सो तेन पलेहि सूर, पुब्बेव नत्थि यदिदं युधाय ॥ ८ ॥

ये दिट्ठिमुगय्ह विवादियन्ति, इदमेव सच्चन्ति च वादियन्ति ।  
ते त्वं वदस्सु न हि तेध अत्थि, वादस्मि जाते पटिसेनिकत्ता । ९ ॥

विसेनि कत्वा पन ये चरन्ति, दिट्ठीहि दिट्ठिं अविरुज्झमाना ।  
तेसु त्वं किं लभेथ पसूर, येसीध नत्थि परमुग्गहीतं ॥ १० ॥

अथ तं पवितक्कमागमा, मनसा दिट्ठिगतानि चिन्तयन्तो ।  
धोनेन युगं समागमा, न हि त्वं सग्घसि सम्पयातवे'ति ॥ ११ ॥

पसूरमुत्तं निट्ठितं ।



विवाद के इच्छुक वे परिषद् में जाकर एक दूसरे को मूर्ख बताते हैं । प्रशंसा के इच्छुक वे अपने को कुशलवादी समझकर अपने धर्म में आसक्त हो विवाद में पड़ते हैं ॥ २ ॥

प्रशंसा के इच्छुक हो परिषद् के बीच में पड़ने पर संघर्ष होता है । रन्ध्र-गवेषी दोष दिखाने पर उदास होता है और निन्दा से कुपित होता है ॥ ३ ॥

प्रश्न पूछने वालों से पराजित हो, पराजय को दिखाने पर वह परास्त मनुष्य विलाप करता है, पछतावा करता है और वह दुःखित होता है कि उसने मुझे हराया है ॥ ४ ॥

ये विवाद श्रमणों में उठते हैं और उनमें प्रहार तथा प्रतिप्रहार होते हैं । इस बात को देखकर विवाद से विरत रहे । विवाद में प्रशंसा प्राप्ति के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं है ॥ ५ ॥

वह परिषद् के बीच अपने मत का समर्थन कर प्रशंसित होता है । वह मन के अनुसार इच्छा को पूरा कर उससे फूल कर हँसता है ॥ ६ ॥

विवाद में मानातिमान रूपी जो फूलना है, वह उसकी पराजय-भूमि भी है । इस बात को भी देखकर विवाद न करे । कुशल लोग इससे शुद्धि नहीं बताते ॥ ७ ॥

राजभोजन से पुष्ट पहलवान् की तरह ( प्रतिवादी के लिए ) ललकारने वाले वादी को उस जैसे वादी के पास भेजना चाहिए; क्योंकि मुक्त पुरुषों के पास विवाद रूपी युद्ध के लिए कोई कारण ही शेष नहीं रहा ॥ ८ ॥

जो किसी दृष्टि को ग्रहणकर विवाद करते हैं और अपने मत को ही सत्य बताते हैं, उन्हें कहना चाहिए कि विवाद उत्पन्न होने पर तुम्हारे साथ बहस करने को यहाँ कोई नहीं है ॥ ९ ॥

जो लोग एक दृष्टि से दूसरी दृष्टि का विरोध न करते हुए प्रतिवादी रहित हो विचरण करते हैं, क्या परस्पर शिक्षा समाप्त उन्हें तुम विवाद में जा सकते हो ॥ १० ॥

अपनी दृष्टि के समर्थन में अनेक बातें सोचते हुए जब तुम शुद्ध पुरुष के पास पहुँचते हो तो विवाद में तुम उसे नहीं पा सकते ॥ ११ ॥

पक्षरसुत्त समाप्त ।



### ४७-मागन्दिन्य-सुत्तं

दिस्वान तण्हं अरतिं रगञ्च, नाहोसि छन्दो अपि मेथुनस्मि ।

किमेविदं मुत्तकरीसपुण्णं, पादापि नं सम्फुसितुं न इच्छे ॥ १ ॥

एतादिसं चे रतनं न इच्छसि, नारिं नरिन्देहि बहूहि पत्थितं ।

दिट्ठिगतं सीलवतानुजीवितं, भवूपपत्तिञ्च वदेसि कीदिसं ॥ २ ॥

इदं वदामीति न तस्स होति ( मागन्दिन्याति भगवा ),

धम्मेषु निच्छेय्य समुग्गहीतं ।

पस्सञ्च दिट्ठीसु अनुग्गहाय, अज्झत्तसन्ति पचिनमदस्सं ॥ ३ ॥

विनिच्छया यानि पकप्पितानि ( इति मागन्दिन्यो ),

ते वे मुनि ब्रूसि अनुग्गहाय ।

अज्झत्तसन्तीति यमेतमत्थं, कथन्नु धीरेहि पवेदितं तं ॥ ४ ॥

न दिट्ठिया न सुतिया न व्याणेन ( मागन्दिन्याति भगवा ),

सीलव्वतेनापि न सुद्धिमाह ।

अदिट्ठिया अस्सुतिया अब्बाणा, असीलता अब्बता नोपि तेन ।

एते च निस्सज्ज अनुग्गहाय, सन्तो अनिस्साय भवं न जप्पे ॥ ५ ॥

नो चे किर दिट्ठिया न सुतिया न व्याणेन ( इति मागन्दिन्यो ),

सीलव्वतेनापि विसुद्धिमाह ।

अदिट्ठिया अस्सुतिया अब्बाणा, असीलता अब्बता नोपि तेन ।

मब्बामहं मोमुहमेव धम्मं, दिट्ठिया एके पच्चेन्ति सुद्धिं ॥ ६ ॥

दिट्ठिञ्च निस्साय अनुपुच्छमानो ( मागन्दिन्याति भगवा ),

समुग्गहीतेसु पमोहमागा ।

इतो च नादक्खि अणुम्पि सब्बं, तस्मा तुवं मोमुहतो दहासि ॥ ७ ॥

### ४७—मागन्दिय-सुत्त

[ मागन्दिय ब्राह्मण भगवान् के रूप सौन्दर्य को देखकर अपनी कन्या का विवाह उनसे करना चाहता है; फिर उनकी निष्कामता को जानकर दृष्टिवाद के विषय में भगवान् से प्रश्न करता है । भगवान् दृष्टिवाद का खण्डन कर प्रज्ञा, द्वारा मुक्ति साधना का मार्ग बताते हैं—]

**बुद्ध —**

तण्हा, अरति और रगा को देखकर भी मैथुन की इच्छा नहीं हुई । मल-मूत्र से भरा हुआ यह शरीर क्या है ? इसे पैरों से भी छूना नहीं चाहता ॥ १ ॥

**मागन्दियः—**

बहुत से नरेन्द्रों से इच्छित इस प्रकार के स्त्री-रत्न को यदि आप नहीं चाहते हैं तो बतावें कि आप दृष्टि, शील, व्रत, जीवन और पुनर्जन्म विषयक आपके विचार क्या है ? ॥ २ ॥

**बुद्धः —**

धर्मों की परीक्षा के बाद ( मैं जैसा ) मुक्त पुरुष किसी मत को नहीं अपनाता । दृष्टियों के दुष्परिणाम को देखकर उनमें आसक्त न हो मैंने आध्यात्मिक शान्ति की गवेषणा की और उसे पाया ॥ ३ ॥

**मागन्दियः—**

हे मुनि ! मतों में आसक्त न हो उनके विषय में आप ने अनुग्रह पूर्वक अपने निर्णय बताये हैं । ( अब बतावें कि ) शान्तियों ने आध्यात्मिक शान्ति को किस प्रकार प्रकट किया है ? ॥ ४ ॥

**बुद्धः—**

न तो दृष्टि से, न श्रुति से, न ज्ञान से, न शील से, न व्रत से, और न अश्रुति से, अज्ञान से, अशील से और अव्रत से ही शुद्धि कही गई है । इनका त्याग कर, इनमें आसक्त न हो शान्त पुरुष कहीं भी लिप्त न हो पुनर्जन्म की इच्छा न करे ॥ ५ ॥

**मागन्दियः—**

यदि दृष्टि, श्रुति, ज्ञान, शील और व्रत से या अदृष्टि, अश्रुति, अज्ञान, अशील और अव्रत से शुद्धि न होती हो, तो मैं इस धर्म को भ्रमात्मक मानता हूँ; क्योंकि कुछ लोग दृष्टि से शुद्धि बताते हैं ॥ ६ ॥

**बुद्धः—**

( मागन्दिय ) दृष्टि में आश्रित हो, आसक्त हो और मोहित हो प्रश्न करते हो । तुम्हें आध्यात्मिक शान्ति का जरा भी पता नहीं । इसलिए तुम इसे भ्रमात्मक समझते हो ॥ ७ ॥

समो विसेसी उद वा निहीनो, यो मब्बति सो विवदेथ तेन ।  
 तीसु विधासु अविकम्पमानो, समो विसेसीति न तस्स होति ॥ ८ ॥

सच्चन्ति सो ब्राह्मणो किं वदेय्य, मुसाति वा सो विवदेथ केन ।  
 यस्मिं समं विसमञ्चापि नत्थि, सो केन वादं पटिसंयुजेय्य ॥ ९ ॥

ओकं पहाय अनिकेतसारी, गामे अकुब्बं मुनि सन्थवानि ।  
 कामेहि रिक्तो अपुरेक्खरानो, कथं न विग्गय्ह जनेन कयिरा ॥ १० ॥

येहि विवित्तो विचरेय्य लोके, न तानि उग्गय्ह वदेय्य नागो ।  
 एलम्बुजं कण्टकं वारिजं यथा, जलेन पङ्केन च नूपलित्तं ।  
 एवं मुनी सन्तिवादो अगिद्धो, कामे च लोके च अनूपलित्तो ॥ ११ ॥

न वेदगू दिट्ठिया न मुतिया, समानमेति न हि तम्मयो सो ।  
 नक्कम्मना नोपि सुतेन नेय्यो, अनूपनीतो सो निवेसनेसु ॥ १२ ॥

सब्बाविरत्तस्स न सन्ति गन्था, पब्बाविमुत्तस्स न सन्ति मोहा ।  
 सब्बञ्च दिट्ठिञ्च ये अग्गहेसुं, ते घट्टयन्ता विचरन्ति लोके ॥ १३ ॥

मागन्दियसुत्तं निट्ठितं ।

### ४८-पुराभेद-सुत्तं

कथंदस्सी कथंसीलो, उपसन्तोति वुच्चति ।  
 तं मे गोतम पब्रूहि, पुच्छितो उत्तमंनरं ॥ १ ॥

वीततण्हो पुरा भेदा ( ति भगवा ), पुब्बमन्तमनिसिस्तो ।  
 वेमज्जे नूपसङ्खेय्यो, तस्स नत्थि पुरेक्खतं ॥ २ ॥

अक्कोधनो असन्तासी, अविकत्थी अकुक्कुचो ।  
 मन्तभाणी अनुद्धतो, स वे वाचायतो मुनि ॥ ३ ॥

जो अपने को दूसरों के समान, उनसे उत्तम या हीन समझता है, उसके कारण वह विवाद में पड़ता है। जो इन तीनों अवस्थाओं में अविचलित रहता है, उसे समानता या उत्तमता का ख्याल नहीं रहता ॥ ८ ॥

जिसमें ममता या असमता का ख्याल नहीं है, वह ब्राह्मण किसे सत्य या असत्य सिद्ध करने को बहस करे ? वह किस के साथ विवाद करे ? ॥ ९ ॥

घर का त्याग कर बेघर हो विचरण करनेवाला गाँव में अनासक्त, विषयों से रहित पुनर्जन्म की इच्छा न करनेवाला मुनि लोगों के साथ विवादात्मक बात न करे ॥ १० ॥

उत्तम पुरुष जिन दृष्टियों से अलग हो विचरता है, फिर वह उनके फेर में पड़कर विवाद न करे। जिस प्रकार जलज और कंटकमय कमल जल और पंक से अलित है, उसी प्रकार शान्तिवादी तृष्णा रहित मुनि विषयों और संसार में लित नहीं होता ॥ ११ ॥

वह किसी ज्ञान, दृष्टि या विचार के कारण अभिमान नहीं करता और न वह उसमें लित हो होता है। वह किसी कर्म-विशेष या श्रुति के फेर में भी नहीं पड़ता; क्योंकि वह दृष्टियों के अधीन नहीं है ॥ १२ ॥

विषय विमुक्त मनुष्य के लिए ग्रन्थियों नहीं हैं। प्रश्न द्वारा विमुक्त पुरुष के लिए मोह नहीं है। जो विषय और दृष्टि में लित हैं, वे घर्षण करते हुए संसार में विचरण करते हैं।

मागन्दियसुत्त समाप्त ।

## ४८—पुराभेद-पुत्त

[ इस सूत्र में शान्त पुरुष का परिचय है— ]

देवता :—

किस प्रकार का दर्शनवाला और किस प्रकार का स्वभाववाला उपशान्त कहलाता है। गौतम ! पूछने पर मुझे उत्तम मनुष्य के विषय में बतावें ॥ १ ॥

बुद्ध :—

जो इस शरीर के त्यागने के पहले ही तृष्णा रहित हो गया है, जो भूत तथा भविष्य पर आश्रित नहीं है और न आश्रित है वर्तमान पर ही, उसके लिए कहीं आसक्ति नहीं है ॥ २ ॥

जो क्रोध, त्रास, आत्म-प्रशंसा और चंचलता रहित है, जो विचारपूर्वक बोलनेवाला है, जो गर्व रहित है और वचन में संयमी है, वह मुनि है ॥ ३ ॥

निरासत्ति अनागते, अतीतं नानुसोचति ।  
 विवेकदस्ती फस्सेसु, दिट्ठीसु च न निर्ययति ॥ ४ ॥  
 पतिलीनो अकुहको, अपिहालु अमच्छरी ।  
 अप्पगम्भो अजेगुच्छो, पेसुणेय्ये च नो युतो ॥ ५ ॥  
 सात्तियेसु अनस्सावी, अतिमाने च नो युतो ।  
 सण्हो च पटिभानवा, न सद्धो न विरज्जति ॥ ६ ॥  
 लाभकम्या न सिक्खति, अलाभे न च कुप्पति ।  
 अविरुद्धो च तण्हाय, रसे च नानुगिज्झति ॥ ७ ॥  
 उपेक्खको सदा सतो, न लोके मञ्जते समं ।  
 न विसेसी न नीचेय्यो, तस्स न सन्ति उस्सदा ॥ ८ ॥  
 यस्स निस्सयता नत्थि, बत्त्वा धम्मं अनिस्सितो ।  
 भवाय विभवाय वा, तण्हा यस्स न विज्जति ॥ ९ ॥  
 तं ब्रूमि उपसन्तोति, कामेसु अनपेक्खन ।  
 गन्था तस्स न विज्जन्ति, अतारि सो विसत्तिकं ॥ १० ॥  
 न तस्स पुत्ता पसवो वा, खेत्तं वत्थुं न विज्जति ।  
 अत्तं वापि निरत्तं वा, न तस्मिं उपलब्धति ॥ ११ ॥  
 येन नं वज्जु पुथुज्जना, अथो समणब्राह्मणा ।  
 तं तस्स अपुरेक्खतं, तस्मा वादेसु नेजति ॥ १२ ॥  
 वीतगेधो अमच्छरी, न उस्सेसु वदते मुनि ।  
 न समेसु न ओमेसु, कप्पं नेति अकप्पियो ॥ १३ ॥  
 यस्स लोके सकं नत्थि, असता च न सोचति ।  
 धम्मेषु च न गच्छति, स वे सन्तोति वुच्चतीति ॥ १४ ॥  
 पुराभेदसुत्तं निद्धितं ।

### ४९-कलहविवाद-सुत्तं

कुतो पहूता कलहा विवादा, परिदेवसोका सह मच्छरा च ।  
 मानातिमाना सह पेसुणा च, कुतो पहूता ते तदिङ्घं ब्रूहि ।

जो भविष्य के विषय में आसक्ति नहीं रखता और न भूत के विषय में पछतावा करता और जो स्पर्शों में भी रत नहीं होता, वह दृष्टियों के फेर में नहीं पड़ता ॥ ४ ॥

जो आसक्ति, ढोंग, स्पृहा और मात्सर्य से रहित है। जो प्रगल्भी नहीं है, घृणा रहित है और चुगलखोरी में नहीं लगता, जो प्रिय वस्तुओं में रत नहीं होता और अभिमान रहित है, जो शान्त और प्रतिभाशाली है, वह न तो अति श्रद्धालु होता है और न किसी से उदास ही रहता है ॥ ५-६ ॥

वह लाभ की इच्छा से शिक्षा प्राप्त नहीं करता और अलोभ के कारण कुपित भी नहीं होता। विरोधभाव रहित वह तृष्णा के वशीभूत हो स्वाद में संलग्न नहीं होता ॥ ७ ॥

जो उपेक्षावान् है, सदा जागरूक है और संसार में किसी को समान, श्रेष्ठ या नीच नहीं मानता उसमें तृष्णा नहीं है ॥ ८ ॥

जो अनासक्ति भाव को जानकर आसक्ति रहित हो गया है, जिसमें भव या विभव के प्रति तृष्णा नहीं है, विषयों के प्रति उपेक्षावान् उसे मैं उपशान्त बताता हूँ। उसके लिए ग्रन्थियाँ नहीं हैं, क्योंकि वह तृष्णा से परे हो गया है ॥ ९-१० ॥

उसके पुत्र, पशु, खेत या धन नहीं हैं और न उसके लिए कुछ अपना या पराया है ॥ ११ ॥

जिस बात में साधारण मनुष्य, श्रमण और ब्राह्मण उसे दोषी ठहराते हैं, वह उसमें दोषी नहीं है। इसलिए वह अपवाद से विचलित नहीं होता ॥ १२ ॥

तृष्णा और मात्सर्य रहित मुनि अपने को श्रेष्ठ, समान या निम्न लोगों में नहीं गिनता। समय के परे होकर वह उसके भेद को भी नहीं मानता ॥ १३ ॥

जिसका संसार में कुछ अपना नहीं, जो व्यतीत बात के लिए पछतावा नहीं करता और जो धर्मों के फेर में नहीं पड़ता, वह उपशान्त कहलाता है।

**पुराभेदसुत्त समाप्त ।**

## ४९—कलहविवाद-सुत्त

[ इस सूत्र में कलह तथा वाद-विवाद इत्यादि के कारण दिखाये गये हैं— ]

कृपया यह बतावें कि कलह, विवाद, विलाप, शोक, मात्सर्य, मान, अभिमान तथा चुगली कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? ॥ १ ॥

पिया पहूता कलहा विवादा, परिदेवसोका सह मच्छरा च ।

मानातिमाना सह पेसुणा च, मच्छरिययुत्ता कलहा विवादा ।

विवादजातेसु च पेसुणानि ॥ २ ॥

पिया सु लोकस्मिं कुतो निदाना, ये वापि लोभा विचरन्ति लोके ।

आसा च निट्ठा च कुतो निदाना, ये सम्परायाय नरस्स होन्ति ॥३॥

छन्दानिदानानि पियानि लोके, ये वापि लोभा विचरन्ति लोके ।

आसा च निट्ठा च इतो निदाना, ये सम्परायाय नरस्स होन्ति ॥४॥

छन्दो नु लोकस्मिं कुतोनिदानो, विनिच्छया वापि कुतो पहूता ।

कोधो मोसवज्जञ्च कथंकथा च, ये वापि धम्मा समणेन वुत्ता ॥५॥

सातं असातन्ति यमाहु लोके, तमूपनिस्साय प्होति छन्दो ।

रूपेसु दिस्वा विभवं भवञ्च, विनिच्छयं कुरुते जन्तु लोके ॥ ६ ॥

कोधो मोसवज्जञ्च कथंकथा च, एतेपि धम्मा द्वयमेव सन्ते ।

कथंकथी वाणपथाय सिकखे, वत्वा पवुत्ता समणेन धम्मा ॥ ७ ॥

सातं असातञ्च कुतो निदाना, किस्मिं असन्ते न भवन्ति हेते ।

विभवं भवञ्चापि यमेतमत्थं, एतं मे पब्रूहि यतो निदानं ॥ ८ ॥

फस्सनिदानं सातं असातं, फस्से असन्ते न भवन्ति हेते ।

विभवं भवञ्चापि यमेतमत्थं, एतं ते पब्रूमि इतो निदानं ॥ ९ ॥

फस्सो नु लोकस्मिं कुतो निदानो, परिग्गहा चापि कुतो पहूता ।

किस्मिं असन्ते न ममत्तमत्थि, किस्मिं विभूते न फुसन्ति फस्सा ॥१०॥

नामञ्च रूपञ्च पटिच्च फस्सा, इच्छानिदानानि परिग्गहानि ।

इच्छा न सन्त्या न ममत्तमत्थि, रूपे विभूते न फुसन्ति फस्सा ॥११॥

कथं समेतस्स विभोति रूपं, सुखं दुखं वापि कथं विभोति ।

एतं मे पब्रूहि यथा विभोति, तं जानियाम इति मे मनो अहु ॥ १२ ॥

कलह, विवाद, विलाप, शोक, मात्सर्य, मान, अभिमान तथा चुगली प्रिय वस्तु से उत्पन्न होती हैं। कलह, विवाद मात्सर्य युक्त हैं और विवादों में चुगली होती है ॥ २ ॥

संसार में प्रिय वस्तु कहाँ से उत्पन्न हो सकती है और किस कारण लोग लोभ के वशीभूत हो विचरते हैं ? तृष्णा और उसकी पूर्ति कैसे होती है, जो मनुष्य के पुनर्जन्म के कारण होते हैं ? ॥ ३ ॥

प्रिय वस्तुओं का निदान इच्छा है और इसके कारण लोग लोभ के वशीभूत हो संसार में विचरते हैं। तृष्णा और उसकी पूर्ति का हेतु भी यही है, जो मनुष्य के पुनर्जन्म के कारण होते हैं ॥ ४ ॥

संसार में इच्छा का क्या निदान है और श्रमण (= बुद्ध) के बताये विनिश्चय क्रोध, मिथ्या भाषण तथा शंका जैसी बातें कहाँ से उत्पन्न होती हैं ? ॥ ५ ॥

संसार में जो प्रिय और अप्रिय वस्तु हैं, उन्हीं के कारण इच्छा होती है। रूप के विनाश और उत्पत्ति को देखकर लोग यहाँ ( जीवन सम्बन्धी ) किसी निश्चय पर पहुँचते हैं ॥ ६ ॥

क्रोध, मिथ्या और शंका—ये धर्म भी ( प्रिय और अप्रिय ) दोनों बातों से उत्पन्न होते हैं। संशय युक्त मनुष्य को चाहिए कि ज्ञान-पथ पर चलकर शिक्षा ले; क्योंकि श्रमण (= बुद्ध ) ने जानकर ही इन बातों को कहा है ॥ ७ ॥

प्रिय भाव और अप्रिय भाव कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? किसके न होने पर ये सब नहीं होते ? जो नाश और उत्पत्ति कही गई हैं, मुझे इसका निदान भी यथारूप बतावें ॥ ८ ॥

प्रिय भाव और अप्रिय भाव का निदान स्पर्श है। स्पर्श के न होने से ये सब उत्पन्न नहीं होते। जो विनाश और उत्पत्ति कही गई है—इसका निदान भा यही बताता हूँ ॥ ९ ॥

संसार में स्पर्श कहाँ से उत्पन्न होता है ? परिग्रह कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? किसके न होने से ममता नहीं होती ? और किसके न होने से स्पर्श नहीं होते ? ॥ १० ॥

स्पर्श नाम और रूप के कारण होते हैं। इच्छा ही परिग्रहों का निदान है। इच्छा के न होने से ममता नहीं होती। रूप के न होने से स्पर्श भी नहीं होते ॥ ११ ॥

किस अवस्था में रूप का निरोध होता है और सुख दुःख का निरोध किस प्रकार होता है ? उसका निरोध यथार्थ रूप से मुझे बतावें; मुझे उसे जानने का मन हुआ ॥ १२ ॥

न सञ्जसञ्जी न विसञ्जसञ्जी, नोपि असञ्जी न विभूतसञ्जी ।  
एवं समेतस्स विभोति रूपं, सञ्जानिदाना हि पपञ्चसङ्गा ॥ १३ ॥

यं तं अपुच्छिम्ह अकित्तयी नो, अञ्जं तं पुच्छाम तदिङ्ग ब्रूहि ।  
एत्तावतगं नो वदन्ति हेके, यक्खस्स सुद्धि इध पण्डितासे ।  
उदाहु अञ्जम्पि वदन्ति एत्तो ॥ १४ ॥

एत्तावतगम्पि वदन्ति हेके, यक्खस्स सुद्धि इध पण्डितासे ।  
तेसं पुनेके समयं वदन्ति, अनुपादिसेसे कुसला वदाना ॥ १५ ॥  
एते च वत्वा उपनिसिताति, वत्वा मुनी निस्सये सो विमंसी ।  
वत्वा विमुत्तो न विवादमेति, भवाभवाय न समेति धीरोति ॥ १६ ॥

कलहविवादसुत्तं निवृत्तं ।

### ५०—चूलवियूह-सुत्तं

सकं सकं दिट्ठि परिब्बसाना, विग्गय्ह नाना कुसला वदन्ति ।  
“यो एवं जानाति स वेदि धम्मं, इदं पटिक्कोसमकेवली सो” ॥ १ ॥  
एवम्पि विग्गय्ह विवादियन्ति, बालो परो अकुसलोति चाहु ।  
सच्चो नु वादो कतमो इमेसं, सब्बेव हिमे कुसला वदाना ॥ २ ॥  
परस्स वे धम्ममनानुजानं, बालो मगो होति निहीनपब्बो ।  
सब्बेव बाला सुनिहीनपब्बा, सब्बेविमे दिट्ठिपरिब्बसाना ॥ ३ ॥  
सन्दिट्ठिया चे पन वीवदाता, संसुद्धपब्बा कुसला मुतीमा ।  
न तेसं कोचि परिहीनपब्बो, दिट्ठी हि तेसम्पि तथा समत्ता ॥ ४ ॥  
न चाहमेतं तथियन्ति ब्रूमि, यमाहु बाला मिथु अञ्जमञ्जं ।  
सकं सकं दिट्ठीमकंसु सच्चं, तस्मा हि बालोति परं दहन्ति ॥ ५ ॥  
यमाहु सच्चं तथियन्ति एके, तमाहु अञ्जे तुच्छं मुसाति ।  
एवम्पि विग्गय्ह विवादियन्ति, कस्मा न एकं समणा वदन्ति ॥ ६ ॥

प्रकृत चित्त, विकृति चित्त, विलीन चित्त और व्यापक चित्त की अवस्थाओं से जो रहित है, उसमें रूप का निरोध होता है। सब प्रपञ्च चित्त से उत्पन्न हैं ॥ १३ ॥

हमने जो कुछ पूछा है, उसे आपने हमें बताया। आपसे दूसरी बात पूछना चाहता हूँ, कृपया बतावें। कुछ पण्डित प्राणी की अन्तिम शुद्धि इसी (अरूप समाधि) में बताते हैं। क्या इससे आगे भी शुद्धि बतानेवाले हैं ? ॥ १४ ॥

कुछ पण्डित इसी में प्राणी की अन्तिम शुद्धि बताते हैं। उनमें से कुछ लोग (प्राणी के) उच्छेद को बताते हैं। लेकिन कुशल जन निर्वाण को ही अन्तिम शुद्धि बताते हैं ॥ १५ ॥

जो मुनि विवेक पूर्वक इन बातों को दृष्टि आश्रित जानकर मुक्त हुआ है वह फिर विवाद में नहीं पड़ता और न वह पुनर्जन्म में ही आ पड़ता है ॥ १६ ॥

**कलहविवादसुत्त समाप्त ।**

### ५०—चूलवियूढ—सुत्त

[ लोग मतों के कारण विवाद करते हैं और नाना सत्तों को बताते हैं। सत्तों तो एक ही है। जो धारणाओं को छोड़ता है, वह विवाद में नहीं पड़ता—]

(लोग) अपनी-अपनी दृष्टि में स्थिर हो, विवाद में पड़कर अनेक प्रकार से अपने को कुशल बताते हैं (और कहते हैं कि) जो इसे जानता है, वह धर्म को जानता है, जो इसकी निन्दा करता है, वह केवली नहीं है ॥ १ ॥

विग्रह में पड़कर वे इस प्रकार भी विवाद करते हैं। वे बताते हैं कि जो विरोधी है, वह मूर्ख है और अकुशल है। इनमें कौन वाद सत्य है ? सभी अपने को कुशल बताते हैं ॥ २ ॥

जो दूसरे के धर्म को स्थान नहीं देता, वह मूर्ख, पशु और प्रज्ञाहीन बनाया जाता है। सभी मूर्ख हैं, प्रज्ञाहीन हैं। ये सभी दृष्टियों में स्थित हैं ॥ ३ ॥

यदि (लोग) अपनी दृष्टि से पवित्र होते हैं, तो वे शुद्ध प्रज्ञ कुशल हैं, और मतिमान हैं। उनमें कोई प्रज्ञाहीन नहीं, क्योंकि उनकी दृष्टि परिपूर्ण है ॥ ४ ॥

मैं यह नहीं कहता कि 'यही सत्य है' जिस बात को लेकर लोग एक दूसरे को मूर्ख बताते हैं (वे) अपनी-अपनी दृष्टि को सत्य सिद्ध करते हैं और एक दूसरे को मूर्ख बताते हैं ॥ ५ ॥

कुछ लोग जिसे सत्य कहते हैं और लोग उसे प्रलाप और असत्य बताते हैं। इस प्रकार भी वे विग्रह में पड़कर विवाद करते हैं। श्रमण एक ही बात क्यों नहीं बताते ? ॥ ६ ॥

एकं हि सच्चं न दुतियमत्थि, यस्मिं पजानो विवदे पजानं ।  
 नाना ते सच्चानि सयं थुनन्ति, तस्मा न एकं समणा वदन्ति ॥ ७ ॥  
 कस्मा नु सच्चानि वदन्ति नाना, पवादियासे कुसला वदाना ।  
 सच्चानि सुतानि बहूनि नाना, उदाहु ते तक्कमनुस्सरन्ति ॥ ८ ॥  
 न हेव सच्चानि बहूनि नाना, अब्बत्र सब्बाय निच्चानि लोके ।  
 तक्कञ्च दिट्ठीसु पक्कणयित्वा, सच्चं मुसाति द्वयधम्ममाहु ॥ ९ ॥  
 दिट्ठे सुते सीलवते मुते वा, एते च निस्साय विमानदस्सी ।  
 विनिच्छये ठत्वा पद्दसमानो, बालो परो अकुसलोति चाह ॥ १० ॥  
 येनेव बालोति परं दहाति, तेनातुमानं कुसलोति चाह ।  
 सयमत्तना सो कुसलो वदानो, अब्बं विमानेति तथेव पावा ॥ ११ ॥  
 अतिसारदिट्ठिया सो समत्तो, मानेन सत्तो परिपुण्णमानी ।  
 सयमेव सामं मनसाभिसित्तो, दिट्ठी हि सा तस्स तथा समत्ता ॥ १२ ॥  
 परस्स चे हि वचसा निहीनो, तुमो सहा होति निहीनपब्बो ।  
 अथ चे सयं वेदगू होति धीरो, न कोचि बालो समणेसु अत्थि ॥ १३ ॥  
 अब्बं इतो याभिवदन्ति धम्मं, अपरद्धा सुद्धिमवकेलीनो ।  
 एवं हि तिथ्या पुथुसो वदन्ति, सन्दिट्ठि रागेन हि तेभिरत्ता ॥ १४ ॥  
 इधेव सुद्धिमिति वादियन्ति, नाब्बेसु धम्मेसु विमुद्धिमाहु ।  
 एवम्पि तिथ्या पुथुसो निविट्ठा, सकायने तत्थ दळ्हं वदाना ॥ १५ ॥  
 सकायने चापि दळ्हं वदानो, कमेत्थ बालोति परं दहेय्य ।  
 सयमेव सो मेधकं आवहेय्य, परं वदं बालमसुद्धधम्मं ॥ १६ ॥  
 विनिच्छये ठत्वा सयं पमाय, उद्धं सो लोकस्मिं विवादमेति ।  
 हित्वान सब्बानि विनिच्छयानि, न मेधकं कुरुते जन्तु लोकेति ॥ १७ ॥

सत्य एक ही है दूसरा नहीं, जिसके विषय में मनुष्य मनुष्य से विवाद करे । वे नाना सत्त्यों की प्रशंसा करते हैं; इसलिए श्रमण एक ही बात नहीं बताते ॥ ७ ॥

(लोग) नाना सत्त्यों को क्यों बताते हैं ? वे (अपने को) कुशल कहकर विवाद क्यों करते हैं ! क्या नाना और बहुत से सत्य सुने जाते हैं अथवा वे तर्क का अनुसरण करते हैं ? ॥ ८ ॥

धारणा के अतिरिक्त संसार में नित्य, नाना और बहुत सत्य हैं ही नहीं । दृष्टियों के विषय में तर्क लगाकर वे सत्य, असत्य—दो धर्मों को बताते हैं ॥ ९ ॥

दृष्टि, श्रुति, शील-व्रत, धारणा—इनके कारण दूसरे के प्रति अवज्ञा युक्त हो, हर्ष से किसी धारणा पर स्थित हो (लोग) [दूसरे को मूर्ख, अकुशल बनाते हैं ॥ १० ॥

(मनुष्य) जिसके कारण दूसरे को मूर्ख बताता है, उसी कारण अपने को कुशल बताता है । अपने को कुशल बतानेवाला वह उसी कारण दूसरे की अवज्ञा करता है ॥ ११ ॥

वह सारातिरेक से पूर्ण है, मानमत्त है, पूर्ण अभिमानी है । वह स्वयं अपने मन से (पाण्डित्य में) अभिप्रेत है; क्योंकि उसकी दृष्टि पूर्ण है ॥ १२ ॥

यदि दूसरे के कहने से ही न हो सके तो वह भी हीन प्रज्ञ हो सकता है । यदि अपने (कहने से) कोई ज्ञान-पारङ्गत और बुद्धिमान हो सके, तो श्रमणों में कोई भी मूर्ख नहीं होता ॥ १३ ॥

‘जो इस धर्म के बाहर शुद्धि बताते हैं, वे अकेवली हैं’—इस प्रकार तैर्थिक प्रायः कहते हैं; क्योंकि वे दृष्टि राग में रत हैं ॥ १४ ॥

‘शुद्धि यहीं है, दूसरे धर्मों में शुद्धि नहीं है’—इस प्रकार अपनी दृष्टि में अति विनिष्ट, दृढ़ग्राही तैर्थिक बताते हैं ॥ १५ ॥

जो अपनी दृष्टि के दृढ़ग्राही हो, दूसरे को मूर्ख बताता है, दूसरे धर्म को मूर्ख और अशुद्ध बतानेवाला वह स्वयं कलह का आह्वान करता है ॥ १६ ॥

किसी धारणा पर स्थित हो, उसकी तुलना कर वह संसार में विवाद करता है । जो सभी धारणाओं को त्याग देता है वह मनुष्य संसार में कलह नहीं करता ॥ १७ ॥

चूलविग्रहसुप्त समाप्त ।



### ५१—महाविग्रह-सुत्तं

ये केचिऽमे दिट्ठिपरिब्बसाना, इदमेव सच्चं ति विवादियन्ति ।  
 सब्बेऽव ते निन्दमन्वानयन्ति, अथो पसंसंऽपि लभन्ति तत्थ ॥ १ ॥  
 अप्पं हि एतं न अलं समाय, दुवे विवादस्स फलानि ब्रूमि ।  
 एवं पि दिस्वा न विवादियेथ, खेमाभिपस्सं अविवादभूमिं ॥ २ ॥  
 या काचिऽमा सम्मुतियो पुथुज्जा, सब्बाऽव एता न उपेति विट्ठा ।  
 अनूपयो सो उपयं किमेय्य, दिट्ठे सुते खन्तिमकुब्बमानो ॥ ३ ॥  
 सीलुत्तमा संयमेनाहु सुद्धिं, वतं समादाय उपट्ठितासे ।  
 इधेव सिकखेम अथऽस्स सुद्धिं, भवूपनीता कुसला वदाना ॥ ४ ॥  
 स चे चुतो सीलवतातो होति, स वेधति कम्मं विराधयित्वा ।  
 स जप्पति पत्थयतीध सुद्धिं, सत्थाऽव हीनो पवसं घरम्हा ॥ ५ ॥  
 सीलब्बतं वाऽपि पहाय सब्बं, कम्मं च सावज्जनवज्जमेतं ।  
 सुद्धिं असुद्धिंऽति अपत्थयानो, विरतो चरे सन्तिमनुग्गाय ॥ ६ ॥  
 तपूपनिस्साय जिगुच्छितं वा, अथ वाऽपि दिट्ठंऽव सुतं सुतं वा ।  
 उद्धंसरा सुद्धमनुत्थुनन्ति, अवीततण्हासे भवाभवेसु ॥ ७ ॥  
 पत्थयमानस्स हि जप्पितानि, संवेदितं चापि पक्खितेसु ।  
 चुतूपपातो इध यस्स नत्थि, स केन वेधेय्य कुहिं चि जप्पे ॥ ८ ॥  
 यमाहु धम्मं परमंऽति एके, तमेव हीनंऽति पनाहु अब्बे ।  
 सच्चो नु वादो कतमो इमेसं, सब्बेऽव हीमे कुसला वदाना ॥ ९ ॥  
 सकं हि धम्मं परिपुण्णमाहु, अब्बस्स धम्मं पन हीनमाहु ।  
 एवंऽपि विग्गय्ह विवादियन्ति, सकंसकं सम्मुतिमाहु सच्चं ॥ १० ॥  
 परस्स चे वंभयितेन हीनो, न कोचि धम्मसेसु विसेसि अस्स ।  
 पुथू हि अब्बस्स वदन्ति धम्मं, नहीनतो सग्धि दल्ल्हं वदाना ॥ ११ ॥  
 सद्धम्मपूजा च पना तथेव, यथा पसंसन्ति सकायनानि ।  
 सब्बे पवादा तथिवा भवेय्युं, सुद्धि हि तेसं पच्चत्तमेव ॥ १२ ॥

## ५१—महावियूह सुत्त

[ जो लोग दृष्टिवाद में पड़ते हैं वे शुद्धि को प्राप्त नहीं करते । सत्यदर्शी दृष्टिवाद को त्याग कर शान्ति को प्राप्त करते हैं । ]

जो इस दृष्टियों पर स्थित हो विवाद कहते हैं कि 'यहीं सत्य है' वे सभी इसमें निन्दा पाते हैं और प्रशंसा भी पाते हैं ॥ १ ॥

यह अल्प है और शान्ति के लिए पर्याप्त नहीं । मैं विवाद के दो फल बताता हूँ । निर्वाण को निर्विवाद भूमि समझनेवाले यह भी देखकर विवाद न करें ॥ २ ॥

साधारण मनुष्यों की जो कुछ दृष्टियाँ हैं, पण्डित इन सब में नहीं पड़ता । दृष्टि और श्रुति को ग्रहण न करनेवाला, आसक्ति रहित वह क्या ग्रहण करें ॥ ३ ॥

शील को उत्तम माननेवाले संयम से शुद्धि बताते हैं । वे व्रत ग्रहण कर बताते हैं कि उसकी शुद्धि यहीं सीखें । भव में पड़े लोग अपने को कुशल बताते हैं ॥ ४ ॥

यदि वह शील-व्रत से गिरता है तो वह अपना कर्म बिगड़ा समझ कम्पित होता है । काफिले से बिछुड़े या घर से भटके की तरह वह शोक करता है और शुद्धि की कामना करता है ॥ ५ ॥

सभी शील-व्रत तथा सदोष, निर्दोष कर्म त्याग कर, शुद्धि-अशुद्धि की कामना न करते हुए शान्ति के लिए विरति के साथ विचरण करे ॥ ६ ॥

कुछ लोग तप या घृणित काम द्वारा अथवा दृष्टि, श्रुति या धारणा द्वारा पुनर्जन्म की तृष्णा को बिना छोड़े ही, उच्चस्वर से शुद्धि को बताते हैं ॥ ७ ॥

आकांक्षा वाले को ही तृष्णा होती है । जो उपाय करता है वही कम्पित रहता है । जिसे मृत्यु और जन्म नहीं है वह किसलिए और कहाँ कम्पित होवे, तृष्णा करे ॥ ८ ॥

जिसे कुछ लोग उत्तम धर्म बताते हैं उसी को दूसरे लोग नीच बताते हैं । इनमें कौन वाद सत्य है ? ये सभी ( अपने को ) कुशल बताते हैं ॥ ९ ॥

( लोग ) अपने धर्म को परिपूर्ण बताते हैं और दूसरे के धर्म को हीन बताते हैं । इस प्रकार भिन्न मतवाले हो विवाद करते हैं और अपनी धारणा को सत्य बताते हैं ॥ १० ॥

यदि दूसरे की अवज्ञा से हीन हो जाय तो धर्मों में कोई श्रेष्ठ नहीं होता । सभी दूसरे के धर्म को हीन बताते हैं और अपने को ठोस बताते हैं ॥ ११ ॥

( लोग ) जिस प्रकार अपने धर्म-मार्गों की प्रशंसा करते हैं—उसी प्रकार उनकी पूजा भी करते हैं । ( यदि इसे सत्य का प्रमाण मान लें तो ) सभी वाद सत्य होंगे और उनकी शुद्धि भी अलग-अलग होगी ॥ १२ ॥

न ब्राह्मणस्त परनेय्यमत्थि, धम्मेसु निच्छेय्य समुग्गहीतं ।  
तस्मा विवादानि उपातिवत्तो, न हि सेट्ठतो पस्सति धम्ममञ्जं ॥ १३ ॥  
जानामि पस्सामि तथेव एतं, दिट्ठिया एके पच्चेन्ति सुद्धिं ।  
अहक्खि चे किं हि तुमस्स तेन, अतिसित्वा अञ्जेन वदन्ति सुद्धिं ॥ १४ ॥  
पस्सं नरो दक्खिन्ति नामरूपं, दिस्वान वा वस्सति तानिमेव ।  
कामं बहुं पस्सतु अप्पकं वा, न हि तेन सुद्धिं कुसला वदन्ति ॥ १५ ॥  
निविस्सवादी न हि सुद्धिनायो, पक्कपितं दिट्ठि पुरेक्खरानो ।  
यं निस्सितो तत्थ सुभं वदानो, सुद्धिवदो तत्थ तथहसा सो ॥ १६ ॥  
न ब्राह्मणो कप्पमुपेति संखं, न हि दिट्ठिसारी नऽपि व्याणबन्धु ।  
वत्वा च सो सम्भुतियो पुथुज्जा, उपेक्खति उग्गहणन्तमञ्जे ॥ १७ ॥  
विसज्ज गन्थानि मुनीध लोके, विवादजातेसु न वग्गसारी ।  
सन्तो असन्तेसु उपेक्खको सो, अनुग्गहो उग्गहणन्त मञ्जे ॥ १८ ॥  
पुब्बासवे हित्वा नवे अकुब्बं, न छन्दगू नोऽपि निविस्सवादो ।  
स विप्पमुत्तो दिट्ठिगतेहि धीरो, न लिप्पति लोके अनत्तगरही ॥ १९ ॥  
स सब्बधम्मेसु विसेनिभूतो, यं किं चि दिट्ठं व सुतं मुतं वा ।  
स पन्नभारो मुनि विप्पमुत्तो,  
न कप्पियो नूपरतो न पत्थियोऽति ( भगवाऽति ) ॥ २० ॥  
महाविग्रहसुत्तं निट्ठितं ।

## ५२—तुवटक-सुत्तं

पुच्छामि तं आदिच्चबन्धुं, विवेकं सन्तिपदं च महेसिं ।  
कथं दिस्वा निव्वाति भिक्खु, अनुपादियानो लोकस्मिं किंचि ॥ १ ॥  
मूलं पपञ्चसंखाया ( ति भगवा ), मन्ता अस्मीति सब्बमुपरुन्धे ।  
या काचि तण्हा अज्झतं । तासं विनया सदा सतो सिक्खे ॥ २ ॥

ब्राह्मण ( सत्य के लिए ) दूसरे पर निर्भर नहीं रहता । विचार के बाद धर्मों में से किसी को ग्रहण नहीं करता । इसलिए वह विवादों से परे है और ( सत्य को छोड़ ) किसी दूसरे धर्म को श्रेष्ठ नहीं समझता ॥ १३ ॥

‘( मैं ) इसे वैसा ही जानता और देखता हूँ’—( इस प्रकार ) कुछ लोग दृष्टि से शुद्धि बताते हैं । यदि उसने देखा तो क्या देखा ? ( वे ) यथार्थ मार्ग को छोड़ कर दूसरे क्रम से शुद्धि बताते हैं ॥ १४ ॥

देखने वाला मनुष्य नाम रूप को देखता है, देखकर उन्हीं को मान लेता है । वह भले ही बहुत या कम देखे । कुशल जन इसी से शुद्धि नहीं बताते ॥ १५ ॥

जो किसी वाद में आसक्त है वह शुद्धि को प्राप्त नहीं होता ; क्योंकि वह किस दृष्टि को मानता है । मनुष्य जिसमें आसक्त है उसी को शुभ बताता है और जिसे शुद्धि बताता है उसे सत्य मानता है ॥ १६ ॥

ब्राह्मण विवेकी हो तृष्ण-दृष्टि में नहीं पड़ता । वह दृष्टि का अनुसरण नहीं करता और न ज्ञान-बन्धु है । वह साधारण जनों की धारणाओं को, जिन्हें और लोग ग्रहण करते हैं, जान कर उनकी उपेक्षा करता है ॥ १७ ॥

मुनि इस संसार में ग्रन्थियों को छोड़कर वादियों में पक्षपाती नहीं होता । अशान्तां में शान्त वह जिसे और लोग ग्रहण करते हैं उसकी उपेक्षा करता है ॥ १८ ॥

जो पूर्व वासनाओं को छोड़कर नई वासनाओं को उत्पन्न नहीं करता, इच्छा रहित, वाद में अनासक्त, दृष्टियों से पूर्ण रूप से मुक्त वह धीर संसार में लीन नहीं होता और वह अपनी गद्दी नहीं करता ॥ १९ ॥

जो कुछ दृष्टि, श्रुति या विचार हैं उन सब पर वह विजयी है । पूर्ण रूप से मुक्त, भार त्यक्त वह संस्कार, उपरति तथा तृष्णा रहित है ॥ २० ॥

**महाविपूहसुक्त समाप्त ।**

५२—तुवटक सुत

[ इस सूत्र में यह दिखाया गया है कि शान्ति की प्राप्ति के लिए भिक्षु को क्या करना चाहिए ]

आदित्य बन्धु, महर्षि आप से मैं विवेक तथा शान्ति पद के विषय में पूछता हूँ । उसके दर्शन से संसार में किसी में भी अनासक्त हो, भिक्षु किस प्रकार शान्त होता है ॥ १ ॥

**बुद्धः—**

प्रपञ्च का मूल अहं भाव समझकर ज्ञानी सर्व प्रकार उसका अन्त कर दे । भीतर जो कुछ तृष्णाएँ हैं स्मृतिमान् हो सदा उनके उपराम को सीखे ॥ २ ॥

यं किञ्चि धम्ममभिजञ्जा, अञ्जत्तं अथ वाऽपि बहिद्वा ।  
 न तेन मानं कुब्बेथ, न हि सा निब्बुति सतं वुत्ता ॥ ३ ॥  
 सेय्यो न तेन मञ्जेय्य, नीचेय्यो अथ वाऽपि सरिक्खो ।  
 फुट्ठो अनेकरूपेहि, नातुमानं विकप्पयं तिट्ठे ॥ ४ ॥  
 अञ्जत्तमेव उपसमे, नाञ्जतो भिक्खु सन्तिमेसेय्य ।  
 अञ्जत्तं उपसन्तस्स, नत्थि अत्तं कुतो निरत्तं वा ॥ ५ ॥  
 मज्झे यथा समुदस्स, ऊमि नो जायति ठितो होति ।  
 एवं ठितो अनेज्जस्स, उस्सदं भिक्खु न करेय्य कुहिं चि ॥ ६ ॥  
 अकित्तिथि विवटचक्खु, सांखधम्मं परिस्सयविनयं ।  
 पटिपदं वदेहि भहं ते, पातिमोक्खं अथ वाऽपि समाधिं ॥ ७ ॥  
 चक्खूहि नेव लोलस्स, गामकथाय आवरये सोतं ।  
 रसे च नातुगिञ्जेय्य, न च ममायेथ किञ्चि लोकस्मि ॥ ८ ॥  
 फस्सेन यदा फुट्ठस्स, परिदेवं भिक्खु न करेय्य कुहिं चि ।  
 भवं च नाभिजप्पेय्य, भेरवेसु च न संपवेधेय्य ॥ ९ ॥  
 अन्नानमथो पानानं, खादनीयानमथोऽपि वत्थानं ।  
 लद्धा न सन्निधिं कयिरा, न च परित्तसे तानि अलभमानो ॥ १० ॥  
 झायी न पादलोलस्स, विरमे कुक्कुञ्जा नप्पमज्जेय्य ।  
 अथ आसनेसु सयनेसु, अप्पसद्देसु भिक्खु विहरेय्य ॥ ११ ॥  
 निहं न बहुलाकरेय्य, जागरियं भजेय्य आत्तापी ।  
 तदिं मायं हस्सं खिड्डं, मेथुनं विप्पजहं सविभूंसं ॥ १२ ॥  
 आथब्बणं सुपिनं लक्खणं, नो विदहे अथो पि नक्खत्तं ।  
 विरुत्तं च गढभकरणं, तिकिच्छं मामको न सेवेय्य ॥ १३ ॥  
 निन्दाय नप्पवेधेय्य, न उण्णमेय्य पसंसितो भिक्खू ।  
 लोभं सह मच्छरियेन, कोधं पेसुनियं च पनुदेय्य ॥ १४ ॥  
 कय विककये न तिट्ठेय्य, उपवादं भिक्खु न करेय्य कुहिं चि ।  
 गामे च नाभिसज्जेय्य, लाभकम्मा जनं न लापयेय्य ॥ १५ ॥  
 न च कत्थिता सिया भिक्खु, न च वाचं पयुतं भासेय्य ।  
 पागब्भियं न सिक्खेय्य, कथं विग्गाहिकं न कथयेय्य ॥ १६ ॥  
 मोसवज्जे न निय्येथ, संपजानो सठानि न कयिरा ।  
 अथ जीवितेन पब्बाय, सीलब्बतेन नाञ्जमतिमब्बे ॥ १७ ॥  
 सुत्वा रुसितो बहुं वाचं, समणानं पुथुवचनानं ।  
 फरुसेन ते न पतिवज्जा, न हि सन्तो पटिसेनिकरोन्ति ॥ १८ ॥

( अपने ) भीतर या बाहर जो कुछ गुण हैं उसे जानकर उसके कारण गर्व न करे; क्योंकि साधु जन उसे शान्ति नहीं बताते ॥ ३ ॥

उसके कारण न ( दूसरे से ) श्रेष्ठ समझे, न नीच और न समान । अनेक प्रकार का स्पर्ष पा कर भी अपने को विकल्प में न डाले ॥ ४ ॥

अपने भीतर को शान्त करे । भिक्षु दूसरे उपाय से शान्ति की गवेषणा न करे । जिसका भीतर शान्त है उसमें अपनत्व नहीं, फिर परत्व कहाँ से ? ॥ ५ ॥

जिस प्रकार समुद्र के बीच लहर नहीं उठती बल्कि स्थिरता रहती है उसी प्रकार स्थिर, चञ्चलता रहित भिक्षु कहीं तृष्णा न करे ॥ ६ ॥

उन्मीलित चक्षु ! ( आप ने ) बाधाओं को दूर करने के लिए साक्षात् धर्म बताया है । अपनी भद्र प्रतिपदा को बतावें जो कि प्रातिमोक्ष या समाधि है ॥ ७ ॥

चक्षु के विषय में लोलुपता न करे । गांवार बात से कान को बन्द रखे । स्वाद की लोलुपता न करे और न संसार में कुछ अपनावे ॥ ८ ॥

( दुःखद ) स्पर्ष पा कर भिक्षु कहीं विलाप न करे, भव की घृष्णा न करे और भव से कम्पित न होवे ॥ ९ ॥

अन्न अथवा पान, खाद्य अथवा वस्त्र के मिलने पर उनका संग्रह न करे । उनके न मिलने पर चिन्ता न करे ॥ १० ॥

ध्यानी घुमकड़ न बने, व्याकुलता से विरत रहे, प्रमाद न करे । भिक्षु एकान्त स्थानों में विहार करे ॥ ११ ॥

निद्रा को न बढ़ावे, प्रयत्नशील हो जागरण का अभ्यास करे । तंद्रा, छल, हँसी, क्रीड़ा, मैथुन, तंद्रा, शृंगार को दूर करे ॥ १२ ॥

मेरा शिष्य मंत्र, स्वप्न, लक्षण तथा ज्योतिष का अभ्यास न करे और पक्षिरव, गर्भकरण तथा चिकित्सा का अभ्यास भी न करे ॥ १३ ॥

भिक्षु निन्दा से विचलित न होवे, प्रशंसा से न फूले और लोभ, कञ्जूसी, क्रोध तथा चुगली को दूर करे ॥ १४ ॥

भिक्षु क्रय विक्रय में न लगे, कहीं किसी को दोष न दे, गाँव में ( किसी को ) गाली न दे और लाभ की इच्छा से लोगों से न बोले ॥ १५ ॥

भिक्षु आत्म प्रशंसी न बने, स्वार्थ की बात न करे, प्रगल्भता को न सीखे और कलह की बात न करे ॥ १६ ॥

मिथ्या भाषण में न पड़े, जान बूझ कर कपट न करे, फिर जीविका, प्रज्ञा, शील-व्रत के विषय में दूसरे की अवज्ञा न करे ॥ १७ ॥

बहुभाषी श्रमणों की दोष युक्त बहुत सी बातों को सुन कर उनको कठोर जवाब न दे, साधु जन प्रतिहिंसक नहीं होते ॥ १८ ॥

एतं च धम्ममब्जाय, विचिनं भिक्खु सदा सतो सिक्खे ।  
 सन्तीति निब्बुतिं अत्वा, सासने गोतमस्स नप्पमज्जेय्य ॥ १९ ॥  
 अभिभू हि सो अनभिभूतो, सक्खिधम्मं अनीतिहमदस्सी ।  
 तस्मा हि तस्स भगवतो,  
 सासने अप्पमत्तो सदा नमस्समनुसिक्खेऽति ( भगवा ति ) ॥ २० ॥

तुवट्ठसुत्तं निद्वितं ।

### ५३—अत्तदण्ड-सुत्तं

अत्तदण्डा भयं जातं जनं पस्सथ मेधकं ।  
 संवेगं कित्तिस्सामि यथा संविजितं मया ॥ १ ॥  
 फन्दमानं पजं दिस्वा मच्छे अप्पोदके यथा ।  
 अब्बमब्बेहि व्यारुद्धे दिस्वा मं भयमाविसि ॥ २ ॥  
 समन्तमसरो लोको दिसा सब्बा समेरिता ।  
 इच्छं भवनमत्तनो नाहसार्सि अनोसितं ॥ ३ ॥  
 ओसाने त्वेव व्यारुद्धे दिस्वा मे अरति अहु ।  
 अथेत्थ सल्लमद्दक्खिं दुद्दसं हृदयनिस्सितं ॥ ४ ॥  
 येन सल्लेन ओतिण्णो दिसा सब्बा विधावति ।  
 तमेव सल्लं अब्बुह न धावति निसीदति ॥ ५ ॥  
 तत्थ सिक्खानुगीयन्ति (यानि लोके गथितानि) न तेसु पसुतो सिया ।  
 निब्बिज्झ सब्बसो कामे सिक्खे निब्बाणमत्तनो ॥ ६ ॥  
 सच्चो सिया अप्पगब्भो अमायो रित्तपेसुणो ।  
 अक्कोधनो लोभपापं वेविच्छं वितरे मुनि ॥ ७ ॥  
 निहं तन्दि सहे थीनं पमादेन न संवसे ।  
 अतिमाने न तिट्ठेय्य निब्बाणमनसो नरो ॥ ८ ॥  
 मोसवज्जे न निय्येथ रूपे स्नेहं न कुब्बये ।  
 मानं च परिजानेय्य साहसा विरतो चरे ॥ ९ ॥  
 पुराणं नाभिनन्देय्य नवे खन्ति न कुब्बये ।  
 हीयमाने न सोचेय्य आकासं न सितो सिया ॥ १० ॥  
 गेधं ब्रूमि महोघो ति आजवं ब्रूमि जप्पनं ।  
 आरम्भणं पक्कप्पनं कामपंको दुरच्चयो ॥ ११ ॥

इस धर्म को जानकर विवेकी भिक्षु सदा स्मृतिमान् हो सीखे । निर्वाणको शान्ति जानकर गौतम की शिक्षा में प्रमाद न करे ॥ १९ ॥

उन विजयी ने अजेय हो धर्म को साक्षात् जान लिया है । इसलिए अप्रमत्त हो उन भगवान् की शिक्षा को सम्मान पूर्वक सीखे ॥ २० ॥

तुवटकसुत्त समाप्त ।

### ५३—अत्तदण्ड-सुत्त

[ यहाँ भगवान् अपने वैराग्य का कारण बताते हैं और वितृष्ण हो निर्वाण प्राप्त करने का मार्ग दिखाते हैं । ]

आत्म दोष से भय उत्पन्न होता है । कलहकारी मनुष्यों को देखो । जैसा कि मैंने जाना है वैसा ही संविग्रता का वर्णन करूँगा ॥ १ ॥

अल्प जल में रहनेवाली मछलियों की तरह व्याकुल एक दूसरे के विरुद्ध लोगों को देख कर मुझे भय लगा ॥ २ ॥

सारा संसार असार है, सभी दिशाएँ विचलित हैं । अपने लिए क्षेम स्थान की इच्छा करते हुए मैंने कहीं आपत्तियों से खाली नहीं पाया ॥ ३ ॥

अन्त में ( सर्वत्र ) विरोध भाव को देख कर मुझे वैराग्य हुआ । तब मैं ने यहाँ देखने में दुष्कर हृदय में लगे तीर को देखा ॥ ४ ॥

( तृष्णा रूपी ) जिस तीर के लगने से ( प्राणी ) सभी दिशाओं में दौड़ता है उसके निकालने से वह न तो दौड़ता है न ब्रैटता है ॥ ५ ॥

यहाँ संसार में आसक्तिजनक बहुत सी शिक्षाएँ दी जाती हैं, उनमें न लगे । सर्वथा कामनाओं की ओर से उदास हो अपनी मुक्ति के लिए सीखें ॥ ६ ॥

मुनि सत्यवादी हो, प्रगल्भी न हो, कपट न हो, चुगलखोर न हो, क्रोध, लोभ, पाप तथा मात्सर्य रहित हो विचरण करे ॥ ७ ॥

निर्वाणापेक्षी मनुष्य निद्रा, तंद्रा तथा आलस्य को जीते, प्रमाद में न रहे, अभिमान में न पड़े ॥ ८ ॥

मिथ्या भाषण में न पड़े, रूप की लालसा न करे, अभिमान को जानकर हिंसा से विरत हो विचरण करे ॥ ९ ॥

पुराने का अभिनन्दन न करे, नये की अपेक्षा न करे, खोये की चिन्ता न करे और तृष्णा में लिप्त न होवे ॥ १० ॥

मैं लोभ को महा जलाशय बताता हूँ, आसक्ति को दौड़ बताता हूँ । आलम्बन कम्पन है, काम रूपी पंक दुस्तर है ॥ ११ ॥

सञ्चा अवोक्कम्म मुनि थले तिट्ठति ब्राह्मणो ।  
 सब्बं सो पटिनिस्सज्ज स वे सन्तो ति वुच्चति ॥ १२ ॥  
 स वे विट्ठा स वेदगु वत्वा धम्मं अनिस्सितो ।  
 सम्मा सो लोके इरियानो न पिहेतीध कस्सचि ॥ १३ ॥  
 योऽध कामे अच्चतरि संगं लोके दुरच्चयं ।  
 न सो सोचति नाज्झेति छिन्नसोतो अबन्धनो ॥ १४ ॥  
 यं पुब्बे तं विसोसेहि पच्छा ते माऽहु किञ्चनं ।  
 मज्झे वे नो गहेस्ससि उपसन्तो चरिस्ससि ॥ १५ ॥  
 सब्बसो नामरूपस्मिं यस्स नत्थि ममायितं ।  
 असता च न सोचति स वे लोके न जिय्यति ॥ १६ ॥  
 यस्स नत्थि इदं मेऽति परेसं वाऽपि किञ्चनं ।  
 ममत्तं सो असंविन्दं नत्थि मेऽति न सोचति ॥ १७ ॥  
 अनिट्ठुरी अननुगिद्धो अनेजो सब्बधीसमो ।  
 तमानिसंसं पन्नूमि पुच्छितो अविकम्पिनं ॥ १८ ॥  
 अनेजस्स विजानतो नत्थि काचि निसंखिति ।  
 विरतो सो वियारंभा खेमं पस्सति सब्बधी ॥ १९ ॥  
 न समेसु न ओमेसु न उस्सेसु वदते मुनि ।  
 सन्तो सो वीतमच्छरो नादति न निरस्सतीति (भगवाऽति) ॥ २० ॥

अत्तदण्डसुत्तं निट्ठितं ।

### ५४—सारिपुत्त-मुत्तं

न मे दिट्ठो इतो पुब्बे (इच्छायस्मा सारिपुत्तो) नस्सुतो उद कस्सचि ।  
 एवं वग्गुवदो सत्था तुसितो गणिमागतो ॥ १ ॥  
 सदेवकस्स लोकस्स यथा दिस्सति चक्खुमा ।  
 सब्बं तमं विनोदेत्वा एको चरति रतिमज्झगा ॥ २ ॥  
 तं बुद्धं असितं तादिं अकुहं गणिमागतं ।  
 बहुन्नमिध बद्धानं अत्थि पञ्हेन आगमं ॥ ३ ॥  
 भिक्खुनो विजिगुच्छतो भजतो रित्तमासनं ।  
 रुक्खमूलं सुसानं वा पब्बतानं गुहासु वा ॥ ४ ॥  
 उच्चावचेसु सयनेसु कीवन्तो तत्थ भेरवा ।  
 येहि भिक्खु न वेधेय्य निग्घोसे सयनासने ॥ ५ ॥

श्रेष्ठ मुनि सत्य से न हट कर ( निर्वाण रूपी ) स्थल पर स्थित है । सर्व त्यागी वह अवश्य शान्त कहलाता है ॥ १२ ॥

विद्वान्, ज्ञानी, अनासक्त वह धर्म को जानकर सम्यक् रूप से संसार में विचरता है और किसी से स्पृहा नहीं करता ॥ १३ ॥

संसार में आसक्ति रूपी दुस्तर कामों को जो तर गया है वह धारा को काटकर, बन्धन रहित हो, शोचन नहीं करता, चिन्ता नहीं करता ॥ १४ ॥

पहले को त्याग दो, बाद को न अपनाओ, बीच में ग्रहण न करो; ( इस प्रकार ) उपशान्त हो विचरण करोगे ॥ १५ ॥

जिसे सर्व प्रकार से नाम और रूप में आसक्ति नहीं है, जो अविद्यमान का शोचन नहीं करता वह संसार में जन्म ग्रहण नहीं करता ॥ १६ ॥

जिसे किसी वस्तु के विषय में यह ( भाव ) नहीं होता कि यह मेरी या पराये की है, ममता रहित वह अभाव में शोचन नहीं करता ॥ १७ ॥

अनिष्टुरता, निर्लोभिता, वितृष्णा, सर्वत्र समता—इसे मैं, पूछने पर, निर्भयता का सुपरिणाम बताता हूँ ॥ १८ ॥

तृष्णा रहित विज्ञ को कोई संस्कार नहीं होता । प्रयत्न से विरत वह सर्वत्र क्षेम रखता है ॥ १९ ॥

मुनि समानों, नीचों या श्रेष्ठों में अपने को नहीं बताता । शान्त मात्सर्य रहित वह न तो किसी को ग्रहण करता है, न छोड़ता है ॥ २० ॥

अत्तदण्डसुत्त समाप्त ।

## ५४—सारिपुत्त सुत्त

[ सारिपुत्र के पूछने पर भगवान् भिक्षु जीवन का मार्ग निर्देश करते हैं ]

सारिपुत्तः

तुशित (देवलोक) से मनुष्यों के बीच आये, सुन्दर भाषी शास्ता जैसे किसी को इसके पूर्व न मैं ने देखा है, न सुना है ॥ १ ॥

देवता सहित संसार को चक्षुमान् एकी रूप में दिखाई देते हैं । ( वे ) सारे अन्धकार को दूर कर, मुक्ति सुख को प्राप्त हो अकेले विचरते हैं ॥ २ ॥

मनुष्यों के बीच आये अनासक्त, स्थिर, निष्कपट बुद्ध से बहुत से ब्रह्म प्राणियों की ओर से प्रश्न करने आया हूँ ॥ ३ ॥

वृक्ष मूलों, इमशानों, पर्वतों तथा गुफाओं में विविक्त चित्त का अभ्यास करनेवाले अनासक्त भिक्षु को विविध स्थानों में कितने भय जनक शब्द होते हैं जिनसे कि एकान्त स्थान में रहनेवाला भिक्षु कम्पित न हो ॥ ४ ॥ ५ ॥

कति परिस्सया लोके गच्छतो अमतं दिसं ।

ये भिक्खु अभिसंभवे पन्तम्हि सयनासने ॥ ६ ॥

क्यास्स व्यप्पथयो अस्सु क्यास्ससु इध गोचरा ।

कानि सीलब्बतानस्सु पहितत्तस्स भिक्खुनो ॥ ७ ॥

कं सो सिक्खं समादाय एकोदि निपको सतो ।

कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो ॥ ८ ॥

विजिगुच्छमानस्स यदिदं फासु ( सारिपुत्ता ति भगवा ),

सयनं रिक्तासनं सेवतो चे ॥

सम्बोधिकामस्स यथानुधम्मं,

तं ते पवक्खामि यथा पजानं ॥ ९ ॥

पञ्चन्न धीरो भयानं न भाये, भिक्खु सतो सपरियन्तचारो ।

डंसाधिपातानं सिरिंसपानं, मनुस्सफस्सानं चतुप्पदानं ॥ १० ॥

परधम्मिकानं न सन्तसेय्य, दिस्वाऽपि तेसं बहुभेरवानी ।

अथापरानि अभिसम्भवेय्य, परिस्सयानि कुसलानुपसी ॥ ११ ॥

आतंकफस्सेन खुदाय फुट्ठो, सीतं अच्चुण्हं अधिवासयेय्य ।

सो तेहि फुट्ठो बहुधा अनोको, विरियं परक्कम्म दळ्हं करेय्य ॥ १२ ॥

थेय्यं न करेय्य न मुसा भणेय्य, मेत्ताय फस्से तसथावरानि ।

यदाविलत्तं मनसो विजब्बा, कग्गहस्स पक्खोति विनोदयेय्य ॥ १३ ॥

कोधातिमानस्स वसं न गच्छे, मूलंपि तेसं पलिखब्ब तिट्ठे ।

यथप्पियं वा पन अप्पियं वा, अट्ठाभवन्तो अभिसंभवेय्य ॥ १४ ॥

पब्बं पुरक्खत्वा कल्याणपीति, विक्खंभये तानि परिस्सयानि ।

अरतिं सहेथ सयनम्हि पन्ते, चतुरो सहेथ परिदेवधम्मे ॥ १५ ॥

किं सु असिस्सामि कुवं वा असिस्सं, दुक्खं वत सेत्थ कुवज्ज सेस्सं ।

एते वितक्के परिदेवनेय्ये, विनयेथ सेखो अनिकेतसारी ॥ १६ ॥

अन्नं च लट्ठा वसनं च काले, मत्तं स जब्बा इध तोसनत्थं ।

सो तेसु गुत्तो यतचारि गामे, रुसितोऽपि वाचं फरुसं न वज्जा ॥ १७ ॥

ओक्खित्त चक्खु न च पादलोलो, ज्ञानानुयुत्तो बहुजागरस्स ।

उपेक्खमारब्भ समाहितत्तो, तक्कासय कुक्कुच्चियूप छिन्दे ॥ १८ ॥

अमृत (= निर्वाण) की ओर जानेवाले ( के मार्ग ) में कितनी बाधाएँ हैं जिनको कि एकान्त स्थान में भिक्षु दूर करे ॥ ६ ॥

सत्य गवेषणा में रत भिक्षु के वाक्य कौन से हैं ? विषय कौन से हैं ? और शील-व्रत कौन से हैं ? ॥ ७ ॥

समाधिस्थ, ज्ञानी, स्मृतिमान् वह कौन सी शिक्षा को ग्रहण कर अपने मल को ( वैसे ही ) दूर करे जैसे कि सोनार चाँदी को ( साफ करता है ) ॥ ८ ॥

**बुद्धः—**

विरक्त-चित्त, एकान्त स्थान सेवी, धर्मानुसार सम्बोधि की इच्छा करनेवाले के लिए जो अनुकूल है उस के विषय में अनुभव के अनुसार तुम्हें बताता हूँ ॥ ९ ॥

धीर, स्मृतिमान्, संयत आचरणवाला भिक्षु पांच भयों से भीत न होवे; डसनेवाली मन्त्रिखों से, सपों से, ( पापी ) मनुष्यों के स्पर्श से तथा चतुष्पदों से ॥ १० ॥

जो दूसरे धर्मावलम्बी हैं उनके बहुत से भयावह भेषों को देखकर न डरे । कुशल गवेषक दूसरी बाधाओं का भी सामना करे ॥ ११ ॥

रोग पीड़ा, भूख-वेदना, शीत ( तथा ) अधिक उष्ण को सहे । वह अनेक प्रकार से पीड़ित हो, वेधर हो वीर्य तथा पराक्रम को दृढ़ करे ॥ १२ ॥

सौरी न करे, असत्य न बोले, दुर्बलों तथा सबलों के प्राति मैत्री करे । यदि मन को व्याकुल जाने तो ( उसे ) मार का पक्षपाती जान दूर करे ॥ १३ ॥

क्रोध तथा अभिमान् के वश में न आवे, उनके मूल को उखाड़ दे । अवश्य वे प्रिय अप्रिय दोनों को दूर करे ॥ १४ ॥

प्रज्ञा पूर्वक कल्याणरत हो उन बाधाओं को दूर करे । एकान्त स्थान में अरति पर विजय पा ले, चार विलाप की बातों पर विजय पा ले ॥ १५ ॥

क्या खाऊँ ? कहाँ खाऊँ ? ( कल ) दुःख से सोया था, आज कहाँ सोऊँ ?—परिदेवनीय इन वितर्कों को वेधर हो विचरनेवाला शिष्य दूर करे ॥ १६ ॥

समय पर अन्न तथा वस्त्र पा कर वह वहाँ अपने संतोष की मात्रा को जान ले । वह उनके विषय में संयत हो, संयम से गांव में विचरे । रुष्ट होने पर भी कठोर बात न करे ॥ १७ ॥

नीचे की हुई आंख हो, घुमक्कड़ न हो, ध्यानानुरत हो, सदा जागरूक हो, उपेक्षावान् हो, समाधिस्थ हो, संशय के आश्रय तथा व्याकुलता का नाश करे ॥ १८ ॥

चुदितो वचीहि सतिमाभिनन्दे, सत्रह्यचारीसु खिलं पभिन्दे ।  
वाचं पमुञ्चे कुसलं नातिवेलं, जनवादधम्माय न चेतयेय्य ॥ १९ ॥

अथापरं पञ्च रजानि लोके, येसं सतिमा विनयाय सिक्खे ।  
रूपेसु सहेसु अथो रसेसु, गन्धेसु फस्सेसु सहेथ रागं ॥ २० ॥

एतेसु धम्मेसु विनेय्य छन्दं, भिक्खु सतीमा सुविमुत्तचित्तो ।  
कालेन सो सम्मा धम्मं परिवीमंसमानो,  
एकोदिभूतो विहने तमं सोऽति ( भगवाऽति ) ॥ २१ ॥

सारिपुत्तसुत्तं निट्ठितं ।



( आचार्यादि द्वारा ) दोष दिखाने पर स्मृतिमान् ( उनका ) अभिनन्दन करे, साथी ब्रह्मचारियों की चित्त शिथिलता का नाश करे, कल्याणकारी वचन कहे जो कि असङ्गत न हो, लोगों में विवाद उठाने को न सोचे ॥ १९ ॥

संसार में और पांच रज हैं जिनको दूर करना स्मृतिमान् सीखे । रूप, शब्द, रस, गन्ध तथा स्पर्श के राग पर विजय पा ले ॥ २० ॥

इन बातों के प्रति अनुराग त्याग कर भिक्षु स्मृतिमान् तथा विमुक्त चित्त बने । वह समय पर धर्म का अनुशीलन कर, एकाग्र चित्त हो अन्धकार का नाश करे ॥ २१ ॥

सारिपुत्तसुत्त समाप्त ।



## ५—पारायणवग्गो

### ५५—वत्थुगाथा

कोसलानं पुरा रम्मा अगमा दक्खिणापथं ।  
आकिञ्चब्बं पत्थयानो ब्राह्मणो मन्तपारगू ॥१॥  
सो अस्सकस्स विसये अळकस्स समासने ।  
वसी गोधावरी कूले उळ्ळेन च फलेन च ॥२॥  
तस्सेव उपनिस्साय गामो च विपुलो अहु ।  
ततो जातेन आयेन महायब्बं अकप्पयि ॥३॥  
महायब्बं यजित्वान पुन पाविसि अस्समं ।  
तस्मिं पतिपविट्ठम्हि अब्बो आगळ्ळि ब्राह्मणो ॥४॥  
उग्घट्टपादो तसितो पंकदन्तो रजस्सिरो ।  
सो च न उपसंकम्म सतानि पञ्च याचति ॥५॥  
तमेनं बावरी दिस्वा आसनेन निमन्तयि ।  
सुखं च कुसलं पुच्छि इदं वचनमब्रवि ॥६॥  
यं खो ममं देय्यधम्मं सब्बं विस्सज्जितं मया ।  
अनुजानाहि मे ब्रह्मे नत्थि पञ्च सतानि मे ॥७॥  
सचे मे याचमानस्स भवं नानूपदस्सति ।  
सत्तमे दिवसे तुय्हं मुद्धा फलतु सत्तथा ॥८॥  
अभिसंखरित्वा कुहको भेरवं सो अकित्तयि ।  
तस्स तं वचनं सुत्वा बावरी दुक्खितो अहु ॥९॥

## ५-पारायण वर्ग

५५--वत्थु-गाथ ।

[ इस वर्ग में बावारी ब्राह्मण के शिष्य द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर हैं ।  
कोशलदेशवासी बावारी ब्राह्मण दक्षिणपथ में गोदावरी के तट पर एक आश्रम बनाकर रहता था । एक दिन बावारी ने महायज्ञ किया । यज्ञ के बाद ही दूसरे ब्राह्मण ने आकर धन मांगा । बावारी ने कहा कि सब धन यज्ञ में खर्च हो गया है । तिस पर वह ब्राह्मण बावारी को शाप देकर चला गया । बावारी चिंता में पड़ गया । उस समय एक देवता ने बावारी को समझाया कि उक्त ब्राह्मण एक ढोंगी है । तब उसने उत्तरपथ में उत्पन्न भगवान् बुद्ध की चर्चा की । यह शुभ समाचार पा कर बावारी ने अपने सोलह शिष्यों को भगवान् के पास भेजा । वे पारी पारी से भगवान् से प्रश्न करते गये और भगवान् उत्तर देते गये ।

मंत्र पारङ्गत एक ब्राह्मण अकिञ्चनत्व की कामना करता हुआ कोशल-वासियों के रम्य नगर ( श्रावस्ती ) से दक्षिणपथ में गया ॥ १ ॥

अलक निकटस्थ अस्सक के राज्य के मध्य गोदावरी के तट पर ( वह ) उल्ल तथा फल से जीता था ॥ २ ॥

उसके पास एक बड़ा गाँव था और उससे उत्पन्न आमदनी से ( उसने ) महायज्ञ किया ॥ ३ ॥

महायज्ञ करके ( उसने ) फिर आश्रम में प्रवेश किया । उसके प्रविष्ट होने पर दूसरा ब्राह्मण वहाँ पहुँचा ॥ ४ ॥

घिसे पैर, कम्पित ( शरीर ), मैले दांत, धूमरित सरवाले उसने ( बावारी ) के पास जाकर पाँच सौ ( कर्पापण ) मांगे ॥ ५ ॥

उसे देखकर बावारी ने आसन दिया और कुशल मङ्गल पूछ कर यह बात कही ॥ ६ ॥ १

जो दक्षिणा थी वह सब मैंने दान की । ब्राह्मण ! मेरी क्षमा करें, मेरे पास पाँच सौ ( कर्पापण ) नहीं हैं ॥ ७ ॥

ब्राह्मणः—

यदि याचनेवाले मुझे तुम न दोगे तो सातवें दिन तुम्हारा सर सात टुकड़ों में फूट जाय ॥ ८ ॥

ढोंगी बनावटी क्रिया करके भय दिखाकर ( कुछ ) बोला । उसकी उस बात को सुनकर बावारी दुःखित हुआ ॥ ९ ॥

उस्सुस्सति अनाहारो सोकसल्लसमप्पितो ।  
 अथोऽपि एवं चित्तस्स ज्ञाने न रमती मनो ॥१०॥  
 उत्रस्तं दुक्खितं दिस्वा देवता अत्थकामिनी ।  
 बावरिं उपसंकम्म इदं वचनमब्रवी ॥११॥  
 न सो मुद्धं पजानाति कुहको सो धनत्थिको ।  
 मुद्धान् मुद्ध पाते वा ज्ञाणं तस्स न विज्जति ॥१२॥  
 भोती चरहि जानाति तं मे अक्खाहि पुच्छिता ।  
 मुद्धं मुद्धाधिपातं च तं सुणोम वचो तव ॥१३॥  
 अहंऽपेतं न जानामि ज्ञाणं मेऽत्थ न विज्जति ।  
 मुद्धं मुद्धाधिपातो च जिज्ञानं हेतु दस्सनं ॥१४॥  
 अथ को चरहि जानाति अस्मिं पुथ्विमण्डले ।  
 मुद्धं मुद्धाधिपातं च तं वे अक्खाहि देवते ॥१५॥  
 पुरा कपिलवत्थुम्हा निक्खन्तो लोकनायको ।  
 अपच्चो ओक्काकराजस्स सकयपुत्तो पभंकरो ॥१६॥  
 सो हि ब्राह्मण संबुद्धो सव्वधम्मान पारगू ।  
 सव्वाभिज्जावलपत्तो सव्वधम्मेषु चक्खुमा ।  
 सव्वधम्मक्खयं पत्तो विमुत्तो उपधिसंखये ॥१७॥  
 बुद्धो सो भगवा लोके धम्मं देसेति चक्खुमा ।  
 तं त्वं गत्वान पुच्छस्सु सो ते तं व्याकरिस्सति ॥१८॥  
 संबुद्धोऽति वचो सुत्वा उदग्गो बावरी अट्टु ।  
 सोकस्स तनुका आसि पीतिं च विपुलं लभि ॥१९॥  
 सो बावरी अत्तमनो उदग्गो, तं देवतं पुच्छति वेदजातौ ।  
 कतमम्हि गामे निगमम्हि वा पुन, कतमम्हि वा जनपदे लोकनाथो ।  
 यत्थ गन्त्वा नमस्सेमु संबुद्धं दिपदुत्तमं ॥२०॥  
 सावत्थियं कोसलमन्दिरे जिनो, पट्टपञ्जो वरभूरिमेधसो ।  
 सो सकयपुत्तो विधुरो अनासवो, मुद्धाधिपातस्स विदू नरासभो ॥२१॥  
 ततो आमन्तयी सिस्से ब्राह्मणे मन्तपारगे ।  
 एथ माणव अक्खिस्सं सुणोथ वचनं मम ॥२२॥

वह शोकरूपी तीर के लगने से अनाहारी हो सूखता था । इसलिए उनका मन ध्यान में नहीं लगता ॥ १० ॥

**बावारी** को त्रस्त, दुःखित देखकर एक हितैषी देवता ने उसके पास आकर यह बात कही ॥ ११ ॥

धनेच्छुक वह ढांगी 'सर' नहीं जानता; सर और सर भेदन का ज्ञान उसे नहीं है ॥ १२ ॥

**बावारी:—**

यदि आप जानते हों तो, मेरे पृछने पर, सर और भेदन के विषय में बतावें । ( हम ) आपकी बात सुनना चाहते हैं ॥ १३ ॥

**देवता:—**

मैं भी इसे नहीं जानता, इसका ज्ञान मुझे नहीं है । सर और सर भेदन बुद्धों का ही विषय है ॥ १४ ॥

**बावारी :—**

तब इस पृथ्वी मण्डल में कौन ( इसे ) जानता है ? हे देव ! सर और सर भेदन के विषय में मुझे अवश्य बतावें ॥ १५ ॥

**देवता:—**

( कुछ वर्ष हुए ) इक्ष्वाकुवंशज, शाक्यपुत्र, प्रभाकारी लोकनायक कपिलवस्तु से निकले थे ॥ १६ ॥

ब्राह्मण ! वे सम्बुद्ध सभी बातों में पारङ्गत हैं, सर्वाभिज्ञा बल प्राप्त हैं, सभी बातों में चक्षुमान् हैं, सभी बातों में क्षय को प्राप्त हैं और ( सभी ) अवस्थाओं से मुक्त हैं ॥ १७ ॥

चक्षुमान् वे भगवान् बुद्ध संसार में धर्म का उपदेश करते हैं । उनके पास जाकर तुम प्रश्न करो, वे तुम्हें बतावेंगे ॥ १८ ॥

बुद्ध-यह शब्द सुनकर बावारी प्रमुदित हुआ । उसका शोक कम हुआ और ( उसे ) बड़ा आनन्द हुआ ॥ १९ ॥

**बावारी:—**

किस गाँव में, निगम ( = कस्बे ) में या जनपद में लोकनायक हैं जहाँ जाकर ( हम ) मनुष्यों में श्रेष्ठ सम्बुद्ध को नमस्कार करें ? ॥ २० ॥

**देवता:—**

कोशल नगर-श्रावस्ती में महा प्रज्ञ, उत्तम प्रज्ञ, भारमुक्त, वासना रहित, सर भेदन के ज्ञाता, नर श्रेष्ठ वे शाक्यपुत्र जिन हैं ॥ २१ ॥

तब ( बावारी ) ने मंत्र पारङ्गत शिष्यों को सम्बोधित किया, 'भागवक ! आओ ( कुछ ) बताता हूँ, मेरी बात सुनो ॥ २२ ॥

यस्सेसो दुल्लभो लोके पातुभावो अभिण्हसो ।  
 स्वज्ज लोकम्हि उप्पन्नो संबुद्धो इति विस्सुतो ।  
 खिप्पं गंतवान् सावत्थिं पस्सव्हो दिपदुत्तमं ॥२१॥  
 कथं चरहि जानेमु दिस्वा बुद्धोऽति ब्राह्मण ।  
 अजानतं नो पब्रूहि यथा जानेमु तं मयं ॥२४॥  
 आगतानि हि मन्तेसु महापुरिसलक्खणा ।  
 द्वत्तिसा च व्याख्याता समत्ता अनुपुब्बसो ॥२५॥  
 यस्सेते होन्ति गत्तेसु महापुरिसलक्खणा ।  
 द्वेऽव तस्स गतियो ततिया हि न विज्जति ॥२६॥  
 सचे अगारं अज्झावसति विजेय्य पठविं इमं ।  
 अदण्डेन असत्थेन धम्मेनमनुसासति ॥२७॥  
 सचे च सो पब्बजति अगारा अनगारियं ।  
 विवत्तच्छदो संबुद्धो अरहा भवति अनुत्तरो ॥२८॥  
 जातिं गोत्तं च लक्खणं मन्ते सिस्से पुनापरे ।  
 मुद्धं मुद्धाधिपातं च मनसा येव पुच्छथ ॥२९॥  
 अनावरणदस्सावी यदि बुद्धो भविस्सति ।  
 मनसा पुच्छते पब्बहे वाचाय विस्सजेस्सति ॥३०॥  
 बावरिस्स वचो सुत्वा सिस्सा सोळ्ळस ब्राह्मणा ।  
 अजितो तिस्समेत्तेय्यो पुण्णको अथ मेत्तगू ॥३१॥  
 धोतको उपसीवो च नन्दो च अथ हेमको ।  
 तोदेय्यकप्पा दुभयो जातुकण्णी च पण्डितो ॥३२॥  
 भद्राबुधो उदयो च पोसालो चापि ब्राह्मणो ।  
 मोघराजा च मेधावी पिंगियो च महा इसि ॥३३॥  
 पञ्चेकगणिनो सव्वे सव्वलोकस्स विस्सुता ।  
 झायी झनरता धीरा पुब्बवासनवासिता ॥३४॥  
 बावरिं अभिवादेत्वा कत्वा च नं पदक्खिणं ।  
 जटाजिनधरा सव्वे पक्कामुं उत्तरामुखा ॥३५॥  
 अळकस्स पतिट्ठानं पुरिमं माहिस्सति तदा ।  
 उज्जेनि चापि गोणद्धं वेदिसं वनसव्हयं ॥३६॥  
 कोसंबिं चापि साकेतं सावत्थिं च पुरुत्तमं ।  
 सेतव्यं कपिलवत्थुं कुसिनारं च मन्दिरं ॥३७॥  
 पावं च भोगनगरं वोसलिं मागधं पुरं ।  
 पासाणकं चेतियं च रमणीयं मनोरमं ॥३८॥

संसार में जिनका प्रादुर्भाव प्रायः दुर्लभ है, सम्बुद्ध नाम से विख्यात वे इस समय संसार में उत्पन्न हैं। शीघ्र श्रावस्ती जाकर नरश्रेष्ठ का दर्शन करो ॥२३॥

**शिष्यः—**

ब्राह्मण ( उनको ) देखकर कैसे जानें कि ( ये ) बुद्ध हैं ? न जाननेवाले हमें बतावें जिससे कि हम उनको जान सकें ॥ २४ ॥

**बावारीः—**

शास्त्रों में महापुरुष लक्षणों का उल्लेख आया है। क्रमशः पूरे बत्तीस लक्षणों का वर्णन है ॥ २५ ॥

जिसके शरीर में ये महापुरुष लक्षण हैं उसके लिए दो ही गतियां हैं, तीसरी नहीं ॥ २६ ॥

यदि (वह) घर में रहा तो बिना दण्ड के, बिना शास्त्र के इस पृथ्वी को जीतकर धर्म से शासन करेगा ॥ २७ ॥

यदि वह घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ तो तृष्णा रहित, श्रेष्ठ अर्हत् सम्बुद्ध होगा ॥ २८ ॥

जाति, गोत्र, लक्षण, शिष्यों और फिर सर तथा सर भेदन के विषय में ( अपने ) मन में प्रश्न करो ॥ २९ ॥

यदि बुद्ध आवरण रहित दृष्टा हों तो मन में पूछे प्रश्न का वचन से उत्तर देंगे ॥ ३० ॥

बावारी की बात को सुनकर अजित, तिस्समेत्तेय्य, पुण्णक, मेत्तगू, धोतक, उपसीव, नन्द, हेमक, तोदेय्य-कप्प दोनों, तथा पण्डित जतुकण्णि, भद्रावुध, उदय, पोसाल ब्राह्मण, बुद्धिमान् मोघराज तथा महर्षि पिङ्गिय, प्रत्येक गणी, सारे संसार में विश्रुत, ध्यानी, ध्यानरत, पूर्व संस्कारों से संस्कृत ये सोलस ब्राह्मण शिष्य बावारी का अभिवादन कर, उसकी प्रदक्षिणा कर, जटा तथा मृगचर्म धारण कर उत्तर की ओर रवाना हुए ॥ ३१-३५ ॥

वे प्रथम अलक का प्रतिष्ठान और तत्र क्रमशः उज्जैन, गोनद्ध, विदिशा, वनसहय, कोशाम्बी, साकेत, श्रेष्ठ श्रावस्ती नगर, सेतव्य, कपिलवस्थु, कुशीनगर, पावा, भोगनगर, वैशाली ( होते हुए ) मगध राजधानी के रमणीय, मनोरम्य पाषाण चैत्य में पहुँचे ॥ ३६-३८ ॥

तसितो वुदकं सीतं महालाभंऽव वाणिजो ।  
 छायं घग्माभिततोऽव तुरिता पव्वतमारुहं ॥३९॥  
 भगवा च तम्हि समये भिक्खुसंघपुरक्खतो ।  
 भिक्खूनं धम्मं देसेति सीहोऽव नदती वने ॥४०॥  
 अजितो अद्दस संभुद्धं वीतरंसीऽव भानुमं ।  
 चन्दं यथा पन्नरसे पारिपुरिं उपागतं ॥४१॥  
 अथऽस्स गत्ते दिस्वान परिपूरं च व्यंजनं ।  
 एकमन्तं ठितो हट्ठो मनोपव्हे अपुच्छथ ॥४२॥  
 आदिस्स जम्मनं ब्रूहि गोत्तं ब्रूहि सलक्खणं ।  
 मन्तेसु पारमिं ब्रूहि कति वाचेति ब्राह्मणो ॥४३॥  
 वीसं वस्ससतं आयु सो च गोत्तेन वावरि ।  
 तीणस्स लक्खणा गत्ते तिण्णं वेदान पारगू ॥४४॥  
 लक्खणे इतिहासे च सनिघण्डुसकेटुभे ।  
 पञ्च सतानि वाचेति सधम्मो पारमि गतो ॥४५॥  
 लक्खणानं पविचयं वावरिस्स नरुत्तम ।  
 तण्हच्छिद पकासेहि मा नो कंखायितं अहू ॥४६॥  
 मुखं जिब्हाय छादेति उण्णस्स भमुकन्तरे ।  
 कोसोहितं वत्थुगुह्यं एवं जानाहि माणव ॥ ४७ ॥  
 पुच्छं हि किञ्चि असुणन्तो सुत्वा पव्हे वियाकते ।  
 विचिन्तेति जनो सब्बो वेदजातो कतञ्जलि ॥ ४८ ॥  
 को नु देवो व ब्रह्मा वा इन्दो वाऽपि मुजंपति ।  
 मनसा पुच्छिते पव्हे कमेतं पटिभासति ॥ ४९ ॥  
 मुद्धं मुद्धाधिपातं च वावरी परिपुच्छति ।  
 तं व्याकरोहि भगवा कंखं विनय नो इसे ॥ ५० ॥  
 अविज्जा मुद्धाऽति जानाहि विज्जा मुद्धाधिपातिनी ।  
 सद्धासतिसमाधीहि छन्दविरियेन संयुता ॥ ५१ ॥

जैसे पिपासित मनुष्य शीतल जल की, वणिक महा लाभ की और गर्मी से पीड़ित ( जन ) छाया की इच्छा करते हैं वैसे ही वे शीघ्र पर्वत पर चढ़ गये ॥ ३९ ॥

उस समय भगवान् भिक्षुसंघ के बीच भिक्षुओं को वैसे ही धर्मोपदेश देते थे जैसे कि सिंह वन में गर्जता है ॥ ४० ॥

अजित ने (प्रवर) रश्मी रहित सूर्य तथा पूर्णिमा के दिन पूर्णता को प्राप्त चन्द्रमा जैसे सम्बुद्ध को देखा ॥ ४१ ॥

तब उनके शरीर में परिपूर्ण लक्षणों को देखकर, हर्षित हो, एक ओर ग्वड़े हो ( वह ) मन में प्रश्न करने लगा ॥ ४२ ॥

मेरे आचार्य की आयु बतावें, जाति बतावें, गोत्र बतावें, लक्षण बतावें, मन्त्रों की योग्यता बतावें ( और बतावे कि ) ब्राह्मण कितने ( मन्त्रों ) का पाठ करता है ॥ ४३ ॥

बुद्धः—

( उस की ) आयु एक सौ वर्ष की है और वह गोत्र से बावारी है । उसके शरीर में तान लक्षण हैं और वह त्रिवेद परगत है ॥ ४४ ॥

लक्षण ( शास्त्र ) में, इतिहास में तथा निघंटु सहित कैटुम में पांच सौ ( मन्त्रों ) का पाठ करता है और वह अपने धर्म में पारङ्गत है ॥ ४५ ॥

अजितः—

हे नरश्रेष्ठ ! तृष्णा का छेदन करनेवाले ( आप ) बावारी के लक्षणों का वर्णन करें ( जिससे कि ) हमारे लिए कोई शंका न रहे ॥ ४६ ॥

बुद्धः—

वह जीम से मुख को ढक देता है, भौंहों के बीच ऊर्ध्व रोम हैं, लिंग कोप में छिपा है माणवक इस प्रकार जानो ॥ ४७ ॥

किसी प्रश्न को विना सुने ही प्रश्नों का उत्तर देते सुन कर सभी लोग प्रमुदित हो, अञ्जलिबद्ध हो सोचने लगे ॥ ४८ ॥

किस देव, ब्रह्म, इन्द्र या सुजंगति द्वारा मन में किये गये प्रश्नों के उत्तर ये देते हैं ? ॥ ४९ ॥

सर और सरमेदन ( के विषय में ) बावारी पृथक्ता है । भगवान् उसका उत्तर दं, ऋषि हमारी शंका दूर करें ॥ ५० ॥

बुद्धः—

अविद्या क सर जानो और श्रद्धा, स्मृति समाधि, छन्द तथा वीर्य से युक्त

ततो वेदेन महता संथंभित्वान माणवो ।  
 एकंसं अजिनं कत्वा पादसु सिरसा पति ॥ ५२ ॥  
 बावरी ब्राह्मणो भोतो सह सिस्सेहि मारिस ।  
 उदगाचित्तो सुमनो पादे वन्दति चक्खुम ॥ ५३ ॥  
 सुखितो बावरी होतु सह सिस्सेहि ब्राह्मणो ।  
 त्वं चापि सुखितो होहि चिरं जीवाहि माणव ॥ ५४ ॥  
 बावारिस्स च तुय्हं वा सब्वेसं सब्वसंसयं ।  
 कतावकासा पुच्छव्हो यं किञ्चि मनसिच्छथ ॥ ५५ ॥  
 संबुद्धेन कतोकासो निसीदित्वान पञ्जलि ।  
 अजितो पठमं पव्हं तत्थ पुच्छि तथागतं ॥ ५६ ॥  
 वत्थुगाथा निष्ठिता ।

### ५६—अजितमाणवपुच्छा

केनऽस्सु निवुतो लोको ( इच्चायस्मा अजितो ) केनस्सु नप्पकासति ।  
 किस्साभिलेपनं ब्रूसि किं सु तस्स महव्वभयं ॥ १ ॥  
 अविज्जायं निवुतो लोको ( अजिताति भगवा ) वेविच्छापमादा नप्पकासति ।  
 जप्पाभिलेपनं ब्रूमि दुक्खं अस्स महव्वभयं ॥ २ ॥  
 सवन्ति सब्वधो सोता ( इच्चायस्मा अजितो ) सोतानं किं निवारणं ।  
 सोतानं संवरं ब्रूहि केन सोता पिथिय्यरे ॥ ३ ॥  
 यानि सोतानि लोकस्मिं ( अजिताति भगवा ) सति तेसं निवारणं ।  
 सोतानं संवरं ब्रूमि पञ्जायेते पिथिय्यरे ॥ ४ ॥  
 पञ्जा चेव सती च ( इच्चायस्मा अजितो ) नामरूपं च मारिस ।  
 एतं मे पुट्ठो पब्रूहि कत्थेतं उपरुज्झति ॥ ५ ॥  
 यं एतं पव्हं अपुच्छि अजित तं वदामि ते ।  
 यत्थ नामं च रूपं च असेसं उपरुज्झति ।  
 विज्जाणस्स निरोधेन एत्थेतं उपरुज्झति ॥ ६ ॥

तब माणवक बड़े आनन्द से ( अपने को ) संभाल कर, एक कच्चे पर मृग चर्म रख कर ( भगवान् के ) पादों में नतमस्तक हो कहने लगा ॥ ५२ ॥

हे महान् ! शिष्य सहित बावारी ब्राह्मण हर्षित हो, प्रसन्न हो चक्षुमान् आप के चरणों की वन्दना करता है ॥ ५३ ॥

बुद्धः—

शिष्य सहित बावारी ब्राह्मण सुखी हो । माणवक । तुम भी सुखी हो, चिरंजीवी हो ॥ ५४ ॥

बावारी तथा तुम सबों की सभी शंकाओं के विषय में पूछने के लिए अवकाश दिया जाता है । जो चाहो सो पूछो ॥ ५५ ॥

सम्बुद्ध के अवकाश देने पर बैठ कर अञ्जलि-वद्ध हो अजित ने वहां तथागत से पहला प्रश्न किया ॥ ५६ ॥

वत्थुगाथा समाप्त ।

५६—अजितमाणव पुच्छा

अजितः—

संसार किससे आच्छादित है ? किस कारण वह अप्रकाशित है ? मुझे इस का मल बतावें, इस का महा भय क्या है ? ॥ १ ॥

बुद्धः—

संसार अविद्या से आच्छादित है, लोभ-तथा प्रमाद के कारण वह अप्रकाशित है । तृष्णा को मैं मल बताता हूँ, दुःख इस का महा भय है ॥ २ ॥

अजितः—

सर्वत्र ( तृष्णा की ) धाराएँ बहती हैं । धाराओं का क्या निवारण है ? धाराओं के आवरण को बतावें । धाराओं को कैसे बन्द किया जाता है ॥ ३ ॥

बुद्धः—

संसार में जितनी धाराएँ हैं स्मृति उन का निवारण है, ( इसे ) धाराओं का आवरण बताता हूँ । प्रज्ञा से ये बन्द की जाती हैं ॥ ४ ॥

अजितः—

हे महान् ! प्रज्ञा स्मृति और नामरूप—इन का अन्त कहां होता है ! पृच्छने पर मुझे यह बतावें ॥ ५ ॥

बुद्धः—

अजिता जो प्रश्न ( तुम ने ) किया है मैं तुम्हें उसे बताता हूँ । जहां विज्ञान का निरोध होता है वहां नामरूप का निःशेष अन्त होता है ॥ ६ ॥

ये च संखतधम्मासे ये च सेखा पुथू इध ।  
 तेसं मे निपको इरियं पुट्ठो पब्रूहि मारिस ॥ ७ ॥  
 कामेसु नाभिगिज्जेय्य मनसाऽनाविलो सिया ।  
 कुसलो सब्बधम्मानं सतो भिक्खु परिव्वजेऽति ॥ ८ ॥  
 अजितमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

### ५७—तिस्समेत्तेय्यमाणवपुच्छा

कोऽध सन्तुसितो लोके ( इच्छायस्मा तिस्सो मेत्तेयो )  
 कस्स नो सन्ति इज्झिता ।  
 को उभऽन्तमभिज्जाय मज्झे मन्ता न लिप्पति ।  
 कं ब्रूसि महापुरिसोऽति को इध सिव्वनिमच्चगा ॥ १ ॥  
 कामेसु ब्रह्मचरियवा ( मेत्तेय्याति भगवा ) वीततण्हो सदा सतो ।  
 संखाय निव्वुतो भिक्खु तस्स नो सन्ति इज्झिता ॥ २ ॥  
 सो उभन्तमभिज्जाय मज्झे मन्ता न लिप्पति ।  
 तं ब्रूसि महापुरिसोऽति सो इध सिव्वनिमच्चगाऽति ॥ ३ ॥  
 तिस्समेत्तेय्यमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

### ५८—पुण्णकमाणवपुच्छा

अनेजं मूलदस्साविं ( इच्छायस्मा पुण्णको ) अत्थि पव्वहेन आगमं ।  
 किंनिसिता इसयो मनुजा खत्तिया ब्राह्मणा देवतानं  
 यव्वमकप्पयिंसु पुथू इध लोके ।  
 पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं ॥ १ ॥  
 ये केचिऽमे इसयो मनुजा ( पुण्णकाति भगवा ), खत्तिया ब्राह्मणा  
 देवतानं यव्वमकप्पयिंसु पुथू इध लोके ।  
 आसिंसमाना पुण्णक इत्थभावं, जरं सिता यव्वमकप्पयिंसु ॥ २ ॥  
 ये केचिऽमे इसयो मनुजा ( इच्छायस्मा पुण्णको )  
 खत्तिया...पे० इध लोके ।  
 कच्चिं सु ते भगवा यव्वपथे अप्पमत्ता,  
 अतारु जातिं च जरं च मारिस ।  
 पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं ॥ ३ ॥

**अजितः—**

जो सभी बातों को जान गये हैं, जो शैक्ष हैं, और जो साधारण जन हैं, हे महान् ! पृछने पर, ज्ञानी आप उन की चर्या को बतावें ॥ ७ ॥

**बुद्धः—**

कामों की लालसा न करे, मन को शान्त रखे । स्मृतिमान् भिक्षु सभी बातों में कुशल हो विचरण करे ॥ ८ ॥

**अजितमाणव प्रश्न समाप्त ।**

**५७—तिस्समेत्तेयमाणव पुच्छा**

**तिस्समेत्तेयः—**इस संसार में कौन सन्तुष्ट है ? किसे चञ्चलताएं नहीं हैं ? कौन ज्ञानी दोनों अन्तों को जान कर बीच में लिप्त नहीं होता ? महापुरुष किसे कहते हैं ? यहां कौन तृष्ण के परे है ? ॥ १ ॥

**बुद्धः—**

जो कामों को त्याग ब्रह्मचारी है, वीततृष्ण है, स्मृतिमान् है और जो भिक्षु ज्ञान द्वारा मुक्त है उसे चञ्चलताएं नहीं हैं ॥ २ ॥

वह ज्ञानी दोनों अन्तों को जान कर बीच में लिप्त नहीं होता । मैं उसे महापुरुष बताता हूँ जो कि तृष्णा के परे हो गया है ॥ ३ ॥

**तिस्समेत्तेयमाणव प्रश्न समाप्त ।**

**५८—पुण्णकमाणव पुच्छा**

**पुण्णकः—**

तृष्णा रहित, ( पाप के ) मूल को देखने वाले आप के पास प्रश्न करने आया हूँ । किस कारण ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने देवताओं के नाम इस संसार में बहुत यज्ञ किये थे ! भगवान् ! आप से यह पृछता हूँ, आप इसे बतावें ॥ १ ॥

**बुद्धः—**

**पुण्णक !** जरा को प्राप्त होने पर जीवन की कामना करते हुए इस संसार में ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों ने देवताओं के नाम बहुत से यज्ञ किये थे ॥ २ ॥

**पुण्णकः—**

इस संसार में जिन ऋषियों, मनुष्यों, क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों ने देवताओं के नाम बहुत यज्ञ किये थे, भगवान् ! क्या वे यज्ञ पथ में अप्रमत्त हो जन्म और जरा के पार हो गये ? हे महान् ! मैं यह पृछता हूँ, भगवान् ! आप इसे बतावें ॥ ३ ॥

आसिंसन्ति थोमयन्ति अभिजप्पन्ति जुहन्ति ( पुण्णकाति भगवा )  
कामाभिजप्पन्ति पटिच्च लाभं ।

ते याजयोगा भवरागरत्ता, नातरिंसु जातिजरंऽतिब्रूमि ॥ ४ ॥

ते चे नातरिंसु याजयोगा ( इच्चायस्मा पुण्णको ),

यञ्जे हि जातिं च जरं च मारिस ।

अथ को चरहि देवमनुस्स लोके, अतारि जातिं च जरं च मारिस ।

पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं ॥ ५ ॥

संखाय लोकस्मिं परोवरानि ( पुण्णकाति भगवा ),

यस्सिञ्चितं नत्थि कुहिंचि लोके ।

सन्तो विधूमो अनिघो निरासो, अतारि सो जातिजरंऽति ब्रूमीति ॥ ६ ॥

पुण्णकमाणवपुच्छा निद्धिता ।

### ५९—मेत्तगूमाणवपुच्छा

पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मेतं ( इच्चायस्मा मेत्तगू ),

मञ्जामि तं वेदगुं भावितत्तं

कुतो नु दुक्खा समुदागता इमे, ये केचि लोकस्मिं अनेकरूपा ॥ १ ॥

दुक्खस्स वे मं पभवं अपुच्छसि, ( मेत्तगूति भगवा ) ।

तं ते पवक्खामि यथा पजानं ।

उपधीनिदाना पभवन्ति दुक्खा, ये केचि लोकस्मिं अनेकरूपा ॥ २ ॥

यो वे अविद्धा उपधिं करोति, पुनप्पुनं दुक्खमुपेति मन्दो ।

तस्मा हि जानं उपधिं न कायरा, दुक्खस्स जातिप्पभवानुपस्सी ॥ ३ ॥

यं तं अपुच्छिह्व अकित्तयी नो, अञ्जं तं पुच्छामि तदिघ ब्रूहि ।

कथं नु धीरा वितरन्ति ओघं, जातिजरं सोकपरिद्वं चे ।

तं मे मुनी साधु वियाकरोहि, तथा हि ते विदितो एस धम्मो ॥ ४ ॥

**बुद्धः—**

हे पुण्णक ! लाभ के कारण ( वे देवताओं के ) गुण गाते हैं, प्रशंसा करते हैं, चर्चा करते हैं, यज्ञ करते हैं और कामों की इच्छा करते हैं । मैं बताता हूँ कि यज्ञ में आसक्त, भव तृष्णा में रत वे जन्म तथा जरा के पार नहीं गये हैं ॥ ४ ॥

**पुण्णकः—**

हे महान् ! दान में रत लोग यज्ञों द्वारा जन्म तथा जरा के पार नहीं गये तो फिर महान् ! देव-मनुष्य लोक में कौन जन्म तथा जरा के पार गया है ? मैं यह पूछता हूँ, भगवान् ! मुझे यह बतावें ॥ ५ ॥

**बुद्धः—**

जो संसार के आर-पार को जान गया है, जिसमें संसार के प्रति कहीं भी तृष्णा नहीं है, शान्त, वासना रहित, पाप रहित, आसक्ति रहित, वह जन्म तथा जरा के पार गया है—ऐसा मैं बताता हूँ ॥ ६ ॥

**पुण्णकमाणव प्रश्न समाप्त ।**

## ५९—मेत्तगू माणव पुच्छा

**मेत्तगूः—**

भगवान् ! आप से पूछता हूँ, मुझे बतावें । ( मैं ) आप को ज्ञानी तथा संयमी मानता हूँ । संसार में जो अनेक प्रकार के दुःख हैं वे कहां से उत्पन्न हुए हैं ? ॥ १ ॥

**बुद्धः—**

**मेत्तगू !** तुम मुझसे दुःख का कारण पूछते हो; ज्ञान के अनुसार मैं तुम्हें बताता हूँ । संसार में जो अनेक प्रकार के दुःख हैं वे स्थितियों से उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

जो अविद्या के कारण स्थितियों को उत्पन्न करता है वह मूर्ख बारम्बार दुःख को प्राप्त होता है । इसलिए ( इसे ) दुःख की उत्पत्ति और प्रभव जानकर ज्ञानी स्थितियों को उत्पन्न न करें ॥ ३ ॥

**मेत्तगूः—**

जो कुछ मैंने पूछा है सो आपने मुझे बताया है । मैं आप से दूसरी ( बात ) पूछता हूँ, कृपया बतावें । जन्म, जरा, शोक तथा विलाप रूपी बाढ़ को कैसे पार करते हैं ? मुनि ! इस बात को जैसे आप जानते हैं वैसे सम्यक् रूप से मुझे बतावें ॥ ४ ॥

किञ्चित्तिस्सामि ते धम्मं ( मेत्तगूति भगवा ) दिट्ठे धग्गे अनीतिहं ।

यं विदित्वा सतो चरं तरे लोके विसत्तिकं ॥ ५ ॥

तं चाहं अभिनन्दामि महेसी धम्ममुत्तमं ।

यं विदित्वा सतो चरं तरे लोके विसत्तिकं ॥ ६ ॥

यं किञ्चि संपजानासि ( मेत्तगूति भगवा ),

उद्धं अधो तिरियं चापि मज्झे ।

एतेसु नन्दिं च निवेसनं च, पनुज्ज विज्ज्वाणं भवे न तिट्ठे ॥ ७ ॥

एवं विहारी सतो अप्पमत्तो, भिक्खु चरं हित्वा ममायितानि ।

जातिजरं सोकपरिद्वं च, इधेव विट्ठा पजहेय्य दुक्खं ॥ ८ ॥

एताभिनन्दामि वचो महेसिनो, सुंकित्तितं गोतमऽनूपधीकं ।

अट्ठा हि भगवा पहासि दुक्खं, तथा हि ते विदितो एक धम्मो ॥ ९ ॥

ते चापि नून पजहेय्यु दुक्खं, ये त्वं मुनि अट्ठितं ओवदेय्य ।

तं तं नमस्सामि समेच्च नाग,

अप्पेव मं भगवा अट्ठितं ओवदेय्य ॥ १० ॥

यं ब्राह्मणं वेदगुं आभिजज्जा अकिञ्चनं कामभवे असत्तं ।

अट्ठा हि सो ओघमिमं अतारि तिण्णो च पारं अखिलो अकंखो ॥ ११ ॥

विट्ठा च सो वेदगू नरो इध, भवाभवे संगमिमं विसज्जा ।

सो वीततण्हो अनिघो निरासो, अतारि सो जातिजरंऽति ब्रूमीति ॥ १२ ॥

मेत्तगूमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

## ६०—धोतकमाणवपुच्छा

पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं ( इच्छायस्मा धोतको ),

वाचाभिकंखामि महेसि तुय्हं ।

तव सुत्वान निग्घोसं सिक्खे निब्बाणमत्तनो ॥ १ ॥

**बुद्धः—**

मेत्तगू ! मैं तुम्हें वह धर्म बताऊँगा जिसे इसी जन्म में साक्षात् कर जानकर स्मृतिमान् हो विचरनेवाला संसार में तृष्णा को पार करता है ॥ ५ ॥

**मेत्तगूः—**

महर्षि ! मैं उस उत्तम धर्म का अभिनन्दन करता हूँ जिसे जान कर स्मृतिमान् हो विचरनेवाला संसार में तृष्णा को पार करता है ॥ ६ ॥

**बुद्धः—**

ऊपर, नीचे, तिर्यक तथा बीच में जो भी जानते हो उनमें तृष्णा तथा आसक्ति को त्याग कर मन को भव में न लगने दे ॥ ७ ॥

इस प्रकार विहरनेवाला, स्मृतिमान्, अप्रमत्त भिक्षु कामनाओं, जन्म, जरा, शोक, तथा विलाप को छोड़कर शान्ति हो यहीं दुःख को दूर करे ॥ ८ ॥

**मेत्तगूः—**

महर्षि की इस बात का अभिनन्द करता हूँ । गौतम ! (आप द्वारा) निर्वाण सुन्दर रूप से वर्णित है । अवश्य भगवान् ने दुःख को दूर किया है; क्योंकि आपने इस धर्म को जान लिया है ॥ ९ ॥

वे भी अवश्य दुःख दूर करेंगे जिन्हें आप मुनि निरन्तर उपदेश देते हैं । हे महापुरुष ! पास आकर मैं आप को नमस्कार करता हूँ । भगवान् ! कृपया मुझे निरन्तर उपदेश दें ॥ १० ॥

**बुद्धः—**

जिस ब्राह्मण को मैं शान्ति, अकिञ्चन और काम भव में अनासक्त समझता हूँ वह अवश्य इस बात को तर गया है, (इसके) पार गया है और वह मल रहित है, शंका रहित है ॥ ११ ॥

विज्ञ, शान्ति वह मनुष्य पुनर्जन्म की आसक्ति को छोड़ कर तृष्णा रहित हो, पाप रहित हो, कामना रहित हो जन्म तथा जरा के परे हो गया है—ऐसा मैं कहता हूँ ॥ १२ ॥

**मेत्तगूमाणव प्रश्न समाप्त ।**

६०—धोतकमाणव पुच्छा

**धोतकः—**

भगवान् ! आप से मैं यह बात पूछता हूँ, मुझे बतावें । महर्षि ! आप की बात की आकांक्षा करता हूँ । आप के उपदेश को सुन कर (मनुष्य) अपनी विमुक्ति सीखे ॥ १ ॥

तेन हातप्यं करोहि ( धोतकाति भगवा ) इधेव निपको सतो ।

उतो सुत्वान निग्घोसं सिकखे निब्बाणमत्तनो ॥ २ ॥

पस्सामहं देवमनुस्सलोके, अकिञ्चनं ब्राह्मणं इरियमानं ।

तं तं नमस्सामि समन्तचक्खु, पमुञ्च मं सक्क कथंकथाहि ॥ ३ ॥

नाहं गमिस्सामि पमोचनाय, कथंकथि धोतक कञ्चि लोके ।

धम्मं चे सेसं आजानमानो, एवं तुवं ओघमिमं तरेसि ॥ ४ ॥

अनुसास ब्रह्मे करुणायमानो, विवेकधम्मं यमहं विजब्बं ।

यथाहं आकासोऽव अव्यापज्जमानो, इधेव सन्तो असितो चरेय्यं ॥ ५ ॥

कित्तयिस्सामि ते सन्ति ( धोतकाति भगवा ) दिट्ठे धम्मे अनीतिहं

यं विदित्वा सतो चरं तरे लोके विसत्तिकं ॥ ६ ॥

तं चाहं अभिवन्दामि महेसि सन्तिमुत्तमं ।

यं विदित्वा सतो चरं तरे लोके विसत्तिकं ॥ ७ ॥

यं किञ्च संपजानासि ( धोतकाति भगवा ), उद्धं अधो तिरियं चापि मज्झे ।

एतं विदित्वा संगोऽति लोके, भवाभवाय माऽकासि तण्हंऽति । ८ ॥

धोतकमाणवपुच्छा निद्रिता ।

## ६१ — उपसीवमाणवपुच्छा

एको अहं सक्क महन्तमोघं ( इच्छायस्मा उपसीवो ),

अनिस्सितो नो विसहामि तारितुं ।

आरम्मणं ब्रूहि समन्तचक्खु, यं निस्सितो ओघमिमं तरेय्य ॥ १ ॥

आकिञ्चब्बं पेक्खमानो सतीमा ( उपसीवाति भगवा ),

नत्थीति निस्साय तरस्सु ओघं ।

कामे पहाय विरतो कथाहि, तण्हक्खयं रत्तमहाभिपस्स ॥ २ ॥

**बुद्ध :—**

प्रज्ञावान् , स्मृतिमान् यहीं प्रयत्न करे । मेरा उपदेश सुन कर अपनी मुक्ति को सीखे ॥ २ ॥

**धोतक :—**

मैं देव-मनुष्य लोक में विचरने वाले अकिञ्चन ब्राह्मण को देखता हूँ । हे सर्वदर्शी ! मैं आप को नमस्कार करता हूँ । हे श्रेष्ठ ! मुझे संशयों से मुक्त कर दें ॥ ३ ॥

**बुद्ध :—**

धोतक ! मैं संसार में किसी संशयी को मुक्त करने नहीं जाऊँगा । जब तुम श्रेष्ठ धर्म को जानोगे तो इस बाढ़ के पार होगे ॥ ४ ॥

**धोतक :—**

हे श्रेष्ठ ! अनुकम्पा पूर्वक मुझे उपदेश करें जिस से कि मैं विवेकी धर्म को जान लूँ और आकाश की तरह निर्मल हो यहीं शान्त हो, अनासक्त हो विचरण करूँ ॥ ५ ॥

**बुद्ध :—**

मैं तुम्हें शान्ति बताऊँगा जिसे इसी जन्म में साक्षात् कर, जान कर स्मृतिमान् हो विचरण करोगे और संसार में तृष्णा को पार करोगे ॥ ६ ॥

**धोतक :—**

महर्षि ! मैं उस उत्तम शान्ति को भी अम्बिवादन करता हूँ जिसे जान कर ( मनुष्य ) स्मृतिमान् हो विचरण करे और संसार में तृष्णा को पार करे ॥ ७ ॥

**बुद्ध :—**

ऊपर, नीचे, तिरछा तथा बीच में जो कुछ भी जानते हो इसे संसार में आसक्ति जान कर पुनर्जन्म के लिए तृष्णा न करे ॥ ८ ॥

**धोतकमाणव प्रश्न समाप्त ।**

## ६१—उपसीवमाणव पुच्छा

**उपसीव :—**

हे श्रेष्ठ ! मैं अकेला, बिना सहायता के, इस विशाल प्रवाह को पार नहीं कर सकता । सर्वदर्शी ! कोई आलम्बन बतावें जिस की सहायता से मैं इस प्रवाह को पार करूँ ॥ १ ॥

**बुद्ध :—**

अकिञ्चनत्व को देखते हुए, स्मृतिमान् हो 'शून्यता' की सहायता से प्रवाह को पार करे । कामों को त्याग कर, संशयों से विरत हो रात दिन तृष्णा-क्षय पर मनन करे ॥ २ ॥

सब्बेसु कामेसु यो वीतरागो (इच्छायस्मा उपसीवो ),  
आकिञ्चञ्ज निस्सितो हित्वमञ्जं ।

सञ्जाविमोक्खे परमे विमुत्तो,  
तिट्ठे नु सो तत्थ अनानुयायी ॥ ३ ॥

सब्बेसु कामेसु यो वीतरागो ( उपसीवाति भगवा ),  
आकिञ्चञ्जं निस्सितो हित्वमञ्जं  
सञ्जाविमोक्खे परमे विमुत्तो, तिट्ठेय्य सो तत्थ अनानुयायी ॥ ४ ॥

तिट्ठे चे सो तत्थ अनानुयायी, पूगंऽपि वस्सानं समन्तचक्खु ।  
तत्थेव सो सीति सिया विमुत्तो, भवेथ विञ्जाणं तथाविधस्स ॥ ५ ॥

अञ्ची यथा वातवेगेन खित्तो ( उपसीवाति भगवा ),  
अत्थं पलेति न उपेति संखं ।

एवं मुत्ती नामकाया विमुत्तो अत्थं पलेति न उपेति संखं ॥ ६ ॥

अत्थं गतो सो उद्वा सो नत्थि, उदाहु वे सस्सतिया अरोगो ।  
तं मे मुनि साधु वियाकरोहि, तथा हि ते विदितो एस धम्मो ॥ ७ ॥

अत्थं गतस्स न पमाणमत्थि ( उपसीवाति भगवा ),  
येन नं वज्जु तं तस्स नत्थि ।

सब्बेसु धम्मेसु समूहतेसु समूहता वादपथाऽपि सब्बेऽति ॥ ८ ॥

उपसीवमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

## ६२--नन्दमाणव पुच्छा

सन्ति लोके मुनयो (इच्छायस्मा नन्दो), जना वदन्ति तयिदं कथं सु ।

बाणूपपन्नं नो मुनिं वदन्ति, उदाहु वे जीवितेनूपपन्नं ॥ १ ॥

न दिट्ठिया न सुतिया न बाणेन, मुनीध नन्द कुसला वदन्ति ।

विसेनिकत्वा अनिघा निरासा, चरन्ति ये ते मुनयोऽति ब्रूमि ॥ २ ॥

**उपसीव :—**

जो सभी कामों से विरत है, अकिञ्चनत्व द्वारा और सब को त्याग दिया है, क्या धारणा रहित उत्तम रूप से विमुक्त वह आगे बढ़े बिना वहाँ स्थिर रहेगा ? ॥ ३ ॥

**बुद्ध :—**

जो सभी कामों से विरत है, अकिञ्चनत्व द्वारा और सब को त्याग दिया है, धारणा रहित, उत्तम रूप से विमुक्त वह आगे बढ़े बिना वहाँ स्थिर रहेगा ॥ ४ ॥

**उपसीव :—**

हे सर्वदर्शी ! आगे बढ़े बिना बहुत वर्षों तक स्थिर हो शांत और विमुक्त होगा तो उसका विज्ञान क्या होगा ? ॥ ५ ॥

**बुद्ध :—**

जिस प्रकार हवा की तेजी से बुझी हुई अग्नि दिखा अस्त को प्राप्त होती है, फिर दिखाई नहीं देती इसी प्रकार नाम काय से विमुक्त मुनि अस्त को प्राप्त होता है, फिर दिखाई नहीं देता ॥ ६ ॥

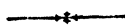
**उपसीव :—**

अस्त को प्राप्त वह अविद्यमान् हो गया है अथवा अपरिवर्तनशील हो शाश्वत हो गया है ? हे मुनि ! यह मुझे अच्छी तरह बतावें, यह बात आप को विदित है ॥ ७ ॥

**बुद्ध :—**

जो अस्त को प्राप्त होता है उस का परिमाण नहीं होता जिस से कि उस के विषय में चर्चा हो सके । सभी धर्मों के शान्त होने पर सभी वादपथ भी शान्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥

**उपसीवमाणव प्रश्न समाप्त ।**



**६२—नन्दमाणव पुच्छा**

**नन्द :—**

लोग कहते हैं कि संसार में मुनि है, सो किस प्रकार ? ज्ञान के कारण ( किसी को ) मुनि कहते हैं अथवा चर्या के कारण ? ॥ १ ॥

**बुद्ध :—**

नन्द ! पण्डित जन न दृष्टि के कारण, न श्रुति के कारण और न ज्ञान के कारण यहाँ ( किसी को ) मुनि बताते हैं । जो शोक रहित हों, पाप रहित हों, तृष्णा रहित हों विचरते हैं मैं उन्हीं को मुनि बताता हूँ ॥ २ ॥

ये केचिमे समणब्राह्मणासे ( इच्छायस्मा नन्दो ),  
 दिट्ठे सुतेनाऽपि वदन्ति सुद्धि ।  
 सीलव्वतेनापि वदन्ति सुद्धि, अनेकरूपेण वदन्ति सुद्धि ।  
 कच्चिंसु ते भगवा तत्थ यता चरन्ता, अतारु जातिं च जरं च मारिस ।  
 पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं ॥ ३ ॥  
 ये केचिमे समणब्राह्मणासे (नन्दातिभगवा), दिट्ठे सुतेनापि वदन्ति सुद्धि ।  
 सीलव्वतेनापि वदन्ति सुद्धि, अनेकरूपेण वदन्ति सुद्धि ।  
 किञ्चापि ते तत्थ यता चरन्ति, नातरिंसु जातिजरंऽति ब्रूमि ॥ ४ ॥  
 ये केचिमे समणब्राह्मणासे ( इच्छायस्मा नन्दो ), दिट्ठे  
 सुतेनापि वदन्ति सुद्धि ।  
 सीलव्वतेनापि वदन्ति सुद्धि, अनेकरूपेण वदन्ति सुद्धि ।  
 सचे मुनि ब्रूसि अनोघतिण्णे, अथ को चरहि देवमनुस्सलोके ।  
 अतारि जातिं च जरं च मारिस, पुच्छामि तं भगवा ब्रूहि मे तं ॥ ५ ॥  
 नाहं सब्बे समणब्राह्मणासे ( नन्दाति भगवा ), जातिजराय  
 निवुताऽति ब्रूमि ।  
 येसीध दिट्ठंऽव सुतं सुतं वा, सीलव्वतं वाति पहाय सब्बं ।  
 अनेकरूपंऽपि पहाय सब्बं, तण्हं परिञ्जाय अनासवासे ।  
 ते वे नरा ओघतिण्णाति ब्रूमि ॥ ६ ॥  
 एताभिनन्दामि वचो महेसिनो सुकित्तितं गोतमऽनूपधीकं ।  
 ये सीध दिट्ठंऽव... पे०... अनासवासे ।  
 अहंऽपि ते ओघतिण्णाऽति ब्रूमीति ॥ ७ ॥  
 नन्दमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

### ६३—हेमकमाणवपुच्छा

ये मे पुब्बे वियाकंसु ( इच्छायस्मा हेमको )  
 हुरं गोतमसासना इच्छासि इति भयस्सिति ।  
 सब्बं तं इतिहीतिहं । सब्बं तं तक्कवडढनं ॥ १ ॥  
 नाहं तत्थ अभिरमिं  
 त्वं च मे धम्ममक्खाहि तण्हानिग्घातनं मुनि ।  
 यं विदित्वा सतो चरं तरे लोके विसत्तिकं ॥ २ ॥

**नन्द :—**

जितने भी श्रमण ब्राह्मण हैं वे दृष्टि और श्रुति से भी शुद्धि बताते हैं, शील-व्रत से भी शुद्धि बताते हैं और अनेक रूप से शुद्धि बताते हैं । हे भगवान् ! हे महान् ! क्या इस प्रकार के आचरणवाले वे जन्म तथा जरा को पार कर गये हैं ? भगवान् ! मैं आप से पूछता हूँ, यह बात मुझे बतावें ॥ ३ ॥

**बुद्ध :—**

जितने भी श्रमण ब्राह्मण हैं जो कि दृष्टि और श्रुति से भी शुद्धि बताते हैं, शीलव्रत से भी शुद्धि बताते हैं और अनेक रूप से शुद्धि बताते हैं, वैसा आचरण करने पर भी वे जन्म तथा जरा के पार नहीं गये—ऐसा मैं बताता हूँ ॥ ४ ॥

**नन्द :—**

जितने भी श्रमणब्राह्मण हैं वे दृष्टि और श्रुति से भी शुद्धि बताते हैं, शील-व्रत से भी शुद्धि बताते हैं और अनेक रूप से शुद्धि बताते हैं ॥ ५ ॥

**बुद्ध :—**

मैं सभी श्रमण ब्राह्मणों को जन्म और जरा से आच्छादित नहीं बताता । जो यहाँ सब दृष्टि, श्रुति, धारणा, शीलव्रत को दूर कर, अनेक प्रकार के और सब को दूर कर, तृष्णा को जान कर वासना रहित हो गये हैं वे मनुष्य अवश्य प्रवाह के परे हो गये हैं—ऐसा मैं बताता हूँ ॥ ६ ॥

**नन्द :—**

महर्षि की इस बात का अभिनन्दन करता हूँ । गौतम ने मुक्ति को अच्छी तरह बताया है । जो यहाँ सब दृष्टि, श्रुति, धारणा, शीलव्रत को दूर कर, अनेक प्रकार के और सब को दूर कर, तृष्णा को जान कर वासना रहित हो गये हैं वे मनुष्य अवश्य प्रवाह के परे हो गये हैं—ऐसा मैं भी बताता हूँ ॥ ७ ॥

**नन्दमाणव प्रश्न समाप्त ।**

**६३—हेमकमाणव पुच्छा**

**हेमक :—**

गौतम के अनुशासन के पहले जो लोग मुझे शिक्षा देते थे वे बताते थे कि 'ऐसा है और ऐसा होगा ।' वह सब सुनी सुनाई बात थी, वह सब संशय को बढ़ाने वाली थी ॥ १ ॥

मेरा मन उस में नहीं लगता था । हे मुनि ! आप मुझे तृष्णा नाश करने का धर्म बतावें जिसे जान कर स्मृतिमान् हो विचरने वाला संसार में तृष्णा को पार करे ॥ २ ॥

इध दिट्ठसुतमुतविब्बातेसु पियरूपेसु हेमक ।  
छन्दराग विनोदनं निब्बाणपदमच्चुतं ॥ ३ ॥  
एतदब्बाय ये सता दिट्ठधम्माभिनिब्बुता ।  
उपसन्ता च ते सदा तिण्णा लोके विसत्तिकं ॥ ४ ॥

हेमकमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

### ६४—तोदेय्यमाणवपुच्छा

यस्मिं कामा न वसन्ति (इच्चायस्मा तोदेय्यो) तण्हा यस्स न विज्जति ।  
कथंकथा च यो तिण्णो विमोक्खो तस्स कीदिसो ॥ १ ॥  
यस्मिं कामा न वसन्ति (तोदेय्याति भगवा) तण्हा यस्स न विज्जति ।  
कथंकथा च यो तिण्णो विमोक्खो तस्स नापरो ॥ २ ॥  
निरासयो सो उद आससानो, पब्बाणवा सो उद पब्बकप्पी ।  
मुनिं अहं सक्क यथा विजब्बं, तं मे वियाचिक्ख समन्तचक्खु ॥ ३ ॥  
निरासयो सो न सो आससानो, पब्बाणवा सो न च पब्बकप्पी ।  
एवंऽपि तोदेय्य मुनिं विजान, अकिञ्चनं कामभवे असत्तंऽति ॥ ४ ॥

तोदेय्यमाणवपुच्छा निट्ठिता

### ६५—कप्पमाणवपुच्छा

मज्झे सरस्मिं तिट्ठतं (इच्चायस्मा कप्पो) ओघे जाते महब्भये ।  
जरामच्चुपरेतानं दीपं पब्रूहि मारिस ।  
त्वं च मे दीपमक्खाहि यथयिदं नापरं सिया ॥ १ ॥  
मज्झे सरस्मिं तिट्ठतं (कप्पाति भगवा) ओघे जाते महब्भये ।  
जरामच्चुपरेतानं दीपं पब्रूमि कप्प ते ॥ २ ॥  
अकिंचनं अनादानं एतं दीपं अनापरं ।  
निब्बाणं इति नं ब्रूमि जरामच्चुपरिक्खयं ॥ ३ ॥  
एतदब्बाय ये सता दिट्ठधम्माभिनिब्बुता ।  
न ते मारवसानुगा न ते मारस्स पट्ठगूऽति ॥ ४ ॥

कप्पमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

**बुद्ध :—**

**हेमक !** यहाँ दृष्ट, श्रुत, ज्ञात, विज्ञात प्रिय रूपों के प्रति दृढ़ आसक्ति का जो दूर करना है वह अच्युत निर्वाण पद है ॥ ३ ॥

जो स्मृतिमान् यह जान कर इसी जन्म में निवृत्त हैं, सदा उपशान्त वे संसार में तृष्णा के पार गये हैं ॥ ४ ॥

**हेमकमाणव प्रश्न समाप्त ।**

## ६४—तोदेय्यमाणव पुच्छा

**तोदेय्यः—**

जिसमें कामनाएँ नहीं हैं, जिसमें तृष्णा नहीं है और जो शंका के परे हैं उसकी मुक्ति किस प्रकार की है ? ॥ १ ॥

**बुद्धः—**

जिसमें कामनाएँ नहीं हैं, जिसमें तृष्णा नहीं है और जो संसार के परे है उसके लिए दूसरी मुक्ति नहीं है ॥ २ ॥

**तोदेय्यः—**

वह तृष्णा रहित है या तृष्णा युक्त है ? वह प्रज्ञावान् है या प्रज्ञा की प्राप्ति में है ? उत्तम सर्वदर्शा आप बतावें जिससे कि मैं मुनि को जान सकूँ ॥ ३ ॥

**बुद्धः—**

वह तृष्णा रहित है न कि तृष्णा युक्त है, वह प्रज्ञावान् है न कि प्रज्ञा की प्राप्ति में है । तोदेय्य ! अकिञ्चन, कामभव मं अनासक्त मुनि को इस प्रकार भी जानो ॥ ४ ॥

**तोदेय्यमाणव प्रश्न समाप्त ।**

## ६५—कप्पमाणव पुच्छा

**कप्पः—**

हे महान् ! अतीव भयावह प्रवाह के बीच रहनेवाले, जरा तथा मृत्यु के वशीभूत ( प्राणियों के लिए सुरक्षित ) द्वीप बतावें आप ऐसा द्वीप बतावें जहाँ यह ( दुःख ) फिर न आ सके ॥ १ ॥

**बुद्धः—**

कप्प ! अतीव भयावह प्रवाह के बीच रहनेवाले, जरा तथा मृत्यु के वशीभूत ( प्राणियों के लिए सुरक्षित ) द्वीप तुम्हें बताता हूँ ॥ २ ॥

द्वीप अकिञ्चनत्व तथा अनासक्ति है, दूसरा नहीं । जरा और मृत्यु के अन्त को निर्वाण बताता हूँ ॥ ३ ॥

यह जानकर जो स्मृतिमान् इसी जन्म में निवृत्त हुए हैं वे मार के वशीभूत नहीं होते, मार के अनुयायी नहीं होते ॥ ४ ॥

**कप्पमाणव प्रश्न समाप्त ।**

### ६६—जतुकणिमाणवपुच्छा

सुत्वानऽहं वीरमकामकामिं ( इच्छायस्मा जतुकणी ),

ओघातिगं पुट्टुमकाममागमं ।

सन्तिपदं ब्रूहि सहाजनेत्त, यथातच्छं भगवा ब्रूहि मे तं ॥ १ ॥

भगवा हि कामे अभिभुय्य इरियति, आदिच्चोऽव पठविं तेजि तेजसा ।

परित्तपब्बस्स मे भूरिपब्ब, आचिक्ख धम्मं यमहं विजब्बं ।

जातिजराय इध विप्पहानं ॥ २ ॥

कामेसु विनय गेधं (जतुकणीति भगवा) नेक्खम्मं दट्ठु खेमतो ।

उग्गहीतं निरत्तं वा मा ते विज्जित्थ किञ्चनं ॥ ३ ॥

यं पुब्बे तं विसोसेहि पच्छा ते माऽहु किञ्चनं ।

मज्झे चे नो गहेस्ससि उपसन्तो चरिस्ससि ॥ ४ ॥

सब्बतो नामरूपस्मिं वीतगेधस्स ब्राह्मण ।

आसवाऽस्स न विज्जन्ति येहि मच्चुवसं वजेऽति ॥ ५ ॥

जतुकणिमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

### ६७—भद्रावुधमाणवपुच्छा

ओक्कंजहं तण्हच्छिदं अनेजं ( इच्छायस्मा भद्रावुधो ),

नन्दिजहं ओघतिण्णं विमुत्तं ।

कप्पंजहं अभियाचे सुमेधं,

सुत्वान नागस्स अपनमिस्सन्ति इतो ॥ १ ॥

नाना जना जनपदेहि संगता, तव वीर वाक्यं अभिकंखमाना ।

तेसं तुवं साधु वियाकरोहि, तथा हि ते विदितो एस धम्मो ॥ २ ॥

आदानतण्हं विनयेथ सब्बं ( भद्रावुधाति भगवा ),

उद्धं अधो तिरियं चापि मज्झे ।

यं यं हि लोकस्मिं उपादियन्ति,

तेनेव मारो अन्वेति जन्तुं ॥ ३ ॥

तस्मा पजानं न उपादियेथ, भिक्खु सतो किञ्चनं सब्बलोके ।

आदानसत्ते इति पेक्खमानो, पजं इमं मच्चुवेय्ये विसत्तंऽति ॥ ४ ॥

भद्रावुधमाणपुच्छा निट्ठिता ।

## ६६—जतुकणिमाणव पुच्छा

**जतुकणिः—**

निष्काम, प्रवाह के पार गये वीर के विषय में सुनकर मैं प्रश्न करने आया हूँ । जन्मसिद्ध ( ज्ञान ) चक्षु ! शान्ति पद को बतावें, यथार्थ रूप से भगवान् मुझे यह बतावें ॥ १ ॥

भगवान् कामों पर विजयी हो उसी प्रकार ( प्रकाशमान हो ) विचरते हैं जिस प्रकार सूर्य अपने तेज से पृथ्वी को ( प्रकाशित करता है ) । महाप्रज्ञ ! अल्पप्रज्ञ मुझे धर्म बतावें जिससे कि मैं यहाँ जन्म और जरा को दूर करना जान लूँ ॥ २ ॥

**बुद्धः—**

निष्कामता को क्षेम देखते हुए कामों की तृष्णा को दूर करो । तुम्हें अपनाने या त्यागने के लिए कुछ न रहे ॥ ३ ॥

जो सामने है उसका अन्त करो, बाद को कुछ न अपनाओ । यदि बीच में भी ग्रहण न करोगे तो उपशान्त हो विचरोगे ॥ ४ ॥

ब्राह्मण ! जो सर्वप्रकार से नामरूप के प्रति तृष्णा रहित है उसे वासनाएँ नहीं रहती जिनसे कि ( वह ) मृत्यु के वश में आवे ॥ ५ ॥

**जतुकणिमाणव प्रश्न समाप्त ।**

## ६७—भद्राबुधमाणव पुच्छा

**भद्राबुधः—**

घर त्यक्त, तृष्णा रहित, चञ्चलता रहित, आसक्ति त्यक्त, प्रवाह के पार गये, विमुक्त, संस्कार त्यक्त ज्ञानी से मैं याचना करता हूँ । श्रेष्ठ का ( उपदेश ) सुनकर ( लोग ) यहाँ से हटेंगे ॥ १ ॥

हे वीर ! आप के वचन की आकांक्षा करते हुए जनपदों से अनेक प्रकार के लोग एकत्रित हुए हैं । आप उनको अच्छी तरह उपदेश करें, क्योंकि यह धर्म आप को विदित है ॥ २ ॥

**बुद्धः—**

ऊपर, नीचे, तिर्यक और बीच में सर्वत्र आसक्ति रूपी तृष्णा को शान्त करो । ( लोग ) संसार में जो जो अपनाते हैं उसी के कारण मार मनुष्य के पीछे पड़ जाता है ॥ ३ ॥

इसलिए तृष्णा में आसक्त, मृत्यु राज्य में लीन इस प्रजा को देखते हुए स्मृतिमान् भिक्षु सारे संसार में किसी के प्रति आसक्ति न करे ॥ ४ ॥

**भद्राबुधमाणव प्रश्न समाप्त ।**

### ६८—उदयमाणवपुच्छा

झायिं विरजमासीनं ( इच्छायस्मा उदयो ) कतकिञ्च अनासवं ।  
 पारगुं सब्रधम्मानं अत्थि पञ्हेन आगमं ।  
 अञ्जाविमोक्खं पन्नूहि अविज्जाय पभेदनं ॥ १ ॥  
 पहानं कामच्छन्दानं ( उदयाति भगवा ) दोमनस्सान चूभयं ।  
 थीनस्स च पनूदनं कुक्कुच्चानं निवारणं ॥ २ ॥  
 उपेक्खा सतिसंसुद्धं धम्मतक्कपुरेजवं ।  
 अञ्जाविमोक्खं पन्नूमि अविज्जाय पभेदनं ॥ ३ ॥  
 किं सु संयोजनो लोको किं सु तस्य विचारणं ।  
 किस्सऽस्स विप्पहानेन निब्बाणं इति वुच्चति ॥ ४ ॥  
 नन्दीसंयोजनो लोको वितक्कस्स विचारणा ।  
 तण्हाय विप्पहानेन निब्बाणं इति वुच्चति ॥ ५ ॥  
 कथं सतस्स चरतो विज्जाणं उपरुज्झति ।  
 भगवन्तं पुट्ठुमागम्म तं सुणोम वचो तव ॥ ६ ॥  
 अज्झतं च बहिद्धा च वेदनं नाभिनन्दतो ।  
 एवं सतस्स चरतो विज्जाणं उपरुज्झतीति ॥ ७ ॥

उदयमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

### ६९—पोसालमाणवपुच्छा

यो अतीतं आदिसति ( इच्छायस्मा पोसालो ) अनेजो छिन्नसंसयो ।  
 पारगुं सब्रधम्मानं अत्थि पञ्हेन आगमं ॥ १ ॥  
 विभूतरूपसंविज्जस्स सब्रकायप्पहायिनो ।  
 अज्झतं च बहिद्धा च नत्थि किञ्चीति पस्सतो ।  
 वाणं सक्कानुपुच्छामि कथं नेय्यो तथाविधो ॥ २ ॥  
 विज्जाणट्ठितियो सब्बा ( पोसालाति भगवा ) अभिजानं तथागतो ।  
 तिट्ठन्तमेनं जानाति विमुत्तं तप्परायणं ॥ ३ ॥  
 आकिञ्चञ्जासंभवं अत्वा नन्दी संयोजनं इति ।  
 एवमेवमभिज्जाय ततो तत्थ विपस्सति ।  
 एतं वाणं तथं तस्स ब्राह्मणस्स वुसीमतोऽति ॥ ४ ॥

पोसालमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

### ६८—उदयमाणव पुच्छ ।

**उदयः—**

ध्यानावस्थित, रज रहित, कृतकृत्य, वासना रहित, सभी धर्मों से पारङ्गत ( आपके पास ) प्रश्न करने आया हूँ । प्रश्न द्वारा मुक्ति की प्राप्ति और अविद्या का भेदन बतावें ॥ १ ॥

**बुद्धः—**

काम की इच्छा तथा विमनता दोनों को त्यागना, आलस्य को दूर करना तथा अस्थिरता का निवारण ( कर ) उपेक्षा, शुद्ध स्मृति और धार्मिक विचार से उत्पन्न ज्ञान (द्वारा) विमोक्ष की प्राप्ति और अविद्या का भेदन बताता हूँ ॥२-३॥

**उदयः—**

संसार बन्धन क्या है ? उसकी गति किसमें है ? किसका त्याग निर्वाण कहलाता है ? ॥ ४ ॥

**बुद्धः—**

आसक्ति संसार का बन्धन है । वितर्क में उसकी गति है । तृष्णा का त्याग निर्वाण कहलाता है ॥ ५ ॥

**उदयः—**

स्मृतिमान् हो विचरनेवाले के विज्ञान का निरोध किस प्रकार होता है हम भगवान् से पूछने आये हैं, हम आपका वचन सुनना चाहते हैं ॥ ६ ॥

**बुद्धः—**

अन्दर और बाहर की वेदना का अभिनन्दन न करते हुए जो स्मृतिमान् हो विचरता है उसके विज्ञान का निरोध होता है ॥ ७ ॥

उदयमाणव प्रश्न समाप्त ।

### ६९—पोसालमाणव पुच्छ

**पोसालः—**

अतीत दर्शी, तृष्णा रहित, संशय नष्ट, सब धर्मों में पारङ्गत आपके पास ( हम ) प्रश्न पूछने आये हैं ॥ १ ॥

हे महान् ! रूप संज्ञाओं से रहित, सभी अरूप संज्ञाओं से मुक्त, अन्दर और बाहर 'अकिञ्चनत्व' को देखनेवाले के ज्ञान के विषय में पूछता हूँ । वैसा व्यक्ति किस प्रकार आगे बढ़ सकता है ? ॥ २ ॥

**बुद्धः—**

विज्ञान की सभी स्थितियों के ज्ञाता तथागत, स्थिर, विमुक्त, ( मुक्ति ) परायण ( व्यक्ति ) को जानते हैं ॥ ३ ॥

'अकिञ्चनत्व' को कर्मक्षय जानकर, आसक्ति को बन्धन समझकर वह निर्वाणदर्शी होता है । पूर्णता को प्राप्त उस ब्राह्मण का यह ज्ञान यथार्थ है ॥४॥

पोसालमाणव प्रश्न समाप्त ।

### ७०—मोघराजमाणवपुच्छा

द्वाहं सक्रं अपुच्छिस्सं (इच्छायस्मा मोघराजा) न मे व्याकासि चक्खुमा ।  
याव ततियं च देविसि व्याकरोतीति मे सुतं ॥ १ ॥  
अयं लोको परो लोको ब्रह्मलोको सदेवको ।  
दिट्ठिं ते नाभिजानामि गोतमस्स यसस्सिनो ॥ २ ॥  
एवं अभिक्कन्तदस्साविं अत्थि पच्छेन आगमं ।  
कथं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सति ॥ ३ ॥  
सुब्बतो लोकं अवेक्खस्सु मोघराज सदा सतो ।  
अत्तानुदिट्ठिं ऊहच्च एवं मच्चुतरो सिया ।  
एवं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सतीति ॥ ४ ॥  
मोघराजमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

### ७१—पिंगियमाणवपुच्छा

जिण्णोऽहमस्मि अबलो वीतवण्णो ( इच्छायस्मा पिंगियो ) ।  
नेत्ता न सुद्धा सवनं न फासु ।  
माहं नस्सं मोमुहो अन्तराय ।  
आचिक्ख धम्मं यमहं विजज्जं ।  
जातिजराय इध विप्पहानं ॥ १ ॥  
दिस्वान रूपेसु विहज्जमाने ( पिंगियाति भगवा ),  
रुप्पन्ति रूपेसु जना पमत्ता ।  
तस्मा तुवं पिंगिय अप्पमत्तो,  
जहस्सु रूपं अपुनब्भवाय ॥ २ ॥  
दिसा चतस्सो विदिसा चतस्सो, उट्ठं अधो दस दिसता इमायो ।  
न तुय्हं अदिट्ठं असुतं मुतं वा,  
अथो अविज्जातं किञ्च नमत्थिलोके ।  
आचिक्ख धम्मं यमहं विजज्जं,  
जातिजराय इध विप्पहानं ॥ ३ ॥  
तण्हाधिपन्ने मनुजे पेक्खमानो ( पिंगियाति भगवा ),  
सन्ताप जाते जरसा परेते ।  
तस्मा तुवं पिंगियो अप्पमत्तो,  
जहस्सु तण्हं अपुनब्भवायाति ॥ ४ ॥  
पिंगियमाणवपुच्छा निट्ठिता ।

७०—मोघराजमाणव पुच्छा

मोघराजः—

हे महान् ! मैंने दो बार आपसे प्रश्न किया । चक्षुमान् ! आपने मुझे उत्तर नहीं दिया । मैंने सुना है कि तीसरी बार देवर्षि आप उत्तर देते हैं ॥१॥

यह लोक, परलोक तथा देव सहित ब्रह्मलोक हैं । आप यशस्वी गौतम की दृष्टि को मैं नहीं जानता ॥ २ ॥

इस प्रकार विशुद्धदर्शी आपके पास प्रश्न पूछने आया हूँ । संसार को किस रूप में देखनेवाले को मृत्युराज नहीं देख पाता ? ॥ ३ ॥

बुद्धः—

मोघराज ! सदा स्मृतिमान् हो संसार को शून्यता के रूप में देखो । इस प्रकार आत्मदृष्टि का नाश कर मृत्यु के परे होंगे । इस रूप में संसार को देखने वाले को मृत्युराज नहीं देख पाता ॥ ४ ॥

मोघराजमाणव प्रश्न समाप्त ।

७१—पिंगियमाणव पुच्छा

पिंगियः—

मैं जीर्ण हूँ, दुर्बल हूँ और विवर्ण हूँ । ( मेरे ) नेत्र साफ नहीं, कान ठीक नहीं । मुझे धर्म का उपदेश करें जिसे जानकर यहाँ जन्म-जरा का अन्त करूँ और ब्रीच में मोह सहित न मरूँ ॥ १ ॥

बुद्धः—

रूपों के कारण परेशान, रूपों के कारण नाश को प्राप्त होनेवाली प्रमत्त जनता को देखकर पिंगिय अप्रमत्त बनो और रूप का अन्त करो जिससे कि आवागमन बन्द हो ॥ २ ॥

पिंगियः—

चार दिशाएँ, चार अनुदिशाएँ, ऊपर, नीचे—ये दश दिशाएँ हैं; इस सारे संसार में कोई ऐसी परिस्थिति नहीं है जिसे आपने न देखा हो, न सुना हो, जिसके विषय में विचार न किया हो और जिसे न समझा हो । ( मुझे ) धर्म का उपदेश करें जिसे जानकर यहाँ जन्म-जरा का अन्त करूँ ॥३॥

बुद्धः—

तृष्णा के वशीभूत, सन्तप्त, जराभिभूत मनुष्यों को देखकर पिंगिय तुम अप्रमत्त बनो और तृष्णा का अन्त करो जिससे कि आवागमन बन्द हो ॥ ४ ॥

पिंगियमाणव प्रश्न समाप्त ।

## ७२—पारायणसुत्तं

इदमवोच भगवा मगधेसु विहरन्तो पासाणके चेतिये, परिचारक  
सोळसानं ब्राह्मणानं अज्झिट्ठो पुट्ठो पुट्ठो पञ्हे व्याकासि । एकमेकस्स  
चेऽपि पञ्हस्स अत्थं अञ्जाय धम्मं अञ्जाय धम्मानुधम्मं पटिपज्जेय्य,  
गच्छेय्येव, जरामरणस्स पारं । पारंगमनीया इमे धम्माऽति तस्मा इमस्स  
धम्मपरियायस्स पारायणं त्वेव अधिवचनं ।

अजितो तिस्समेत्तेय्यो पुण्णको अथ मेत्तगू ।

धोतको उपसीवो च नन्दो च अथ हेमको ॥ १ ॥

तोदेय्यकप्पा दुभयो जातुकण्णी च पण्डितो ।

भद्रावुधो उदयो च पोसालो चापि ब्राह्मणो ।

मोघराजा च मेधावी पिंगियो च महा इसि ॥ २ ॥

एते बुद्धं उपागच्छुं संपन्नचरणं इसि ।

पुच्छन्ता निपुणे पञ्हे बुद्धसेट्ठं उपागमुं ॥ ३ ॥

तेसं बुद्धो व्याकासि पञ्हे पुट्ठो यथातथं ।

पञ्हानं वेय्याकरणेन तोसेसि ब्राह्मणे मुनि ॥ ४ ॥

ते तोसिता चक्खुमता बुद्धेनादिच्चबन्धुना ।

ब्रह्मचरियमचरिंसु वरपञ्जस्स सन्तिके ॥ ५ ॥

एकमेकस्स पञ्हस्स यथा बुद्धेन देसितं ।

तथा यो पटिपज्जेय्य गच्छे पारं अपारतो ॥ ६ ॥

अपारा पारं गच्छेय्य भावेन्तो मगमुत्तमं ।

मगो सो पारं गमनाय तस्मा पारायणं इति ॥ ७ ॥

पारायणमनुगायिस्सं ( इच्छायस्मा पिंगियो )

यथा अहक्खि तथा अक्खासि विमलो भूरिमेधसो ।

निक्कामो निब्बनो नाथो किस्स हेतु मुसा भणे ॥ ८ ॥

पहीनमलमोहस्स मानमक्खप्पहायिनो ।

हन्दाहं कित्तयिस्सामि गिरं वण्णूपसंहितं ॥ ९ ॥

तमोनुदो बुद्धो समन्तचक्खु, लोकन्तगू सब्बभवातिवत्तो ।

अनासवो सब्बदुक्खप्पहीनो, सब्बह्यो ब्रह्मे उपासितो मे ॥ १० ॥

दिजो यथा कुब्बनकं पहाय, बहुप्फलं काननं आवसेय्य ।

एवंऽपहं अप्पदस्से पहाय, महोदधिं हंसरिवऽज्झपत्तो ॥ ११ ॥

ये ऽमे पुब्बे वियाकंसुहुरं गोतमसासना “इच्छासि, इति भविस्सति” ।

सब्बं तं इतिहीतिहं सब्बं तं तक्कवड्ढनं ॥ १२ ॥

## ७२—पारायण सुत्त

यह उपदेश भगवान् ने मगध में पाषाणक चैत्य में दिया था । ( बावारी के ) अनुयायी सोलह ब्राह्मणों के अनुरोध से ( भगवान् ) उनके प्रश्नों के उत्तर दिये । जो एक एक प्रश्न का अर्थ जानकर, धार्मिक तात्पर्य जानकर धर्मानुधर्म का आचरण करेगा वह जरामरण के पार होगा । ये धर्म पार ले जानेवाले हैं । इसलिए इस धर्म का नाम पारायण ही है ।

अजित, तिस्समेत्तेय्य, पुण्णक और मेत्तगू, धोतक और उपसीव, नन्द और हेमक, तोदेय्य, कप्प दोनों और पण्डित जातुकण्णी, भद्रावुध, उदय और पोसाल ब्राह्मण, बुद्धिमान् मोघराजा और महर्षि पिंगिय—ये आचारवान् ऋषि बुद्ध के पास पहुँचे, निपुण प्रश्न पूछते हुए श्रेष्ठ बुद्ध के पास गये ॥ १-३ ॥

बुद्ध ने उन के पूछे प्रश्नों के यथार्थ रूप से उत्तर दिये । प्रश्नों के उत्तर देकर मुनि ने ब्राह्मणों को प्रसन्न किया ॥ ४ ॥

चक्षुमान्, आदित्यबन्धु बुद्ध से प्रसन्न उन्होंने उत्तम प्राज्ञ के पास ब्रह्मचर्य का पालन किया ॥ ५ ॥

एक एक प्रश्न के उत्तर के रूप में भगवान् ने जो उपदेश दिया है उसका अनुयायी इस पार से उस पार पहुँचेगा ॥ ६ ॥

उत्तम मार्ग का अभ्यास करनेवाला इस पार से उस पार पहुँचेगा । यह मार्ग पार जाने के लिए है । इसलिए इस का नाम पारायण है ॥ ७ ॥

**पिंगिय :-**

मैं पारायण का वर्णन करूँगा ( जिसे ) निर्मल महाप्रज्ञ ने जैसा देखा वैसा बताया । नाथ निष्काम हैं, वितृष्ण हैं । वे असत्य क्यों बोलें ॥ ८ ॥

मोह मल रहित, मान और शटता रहित भगवान् के मधुरस्वर का वर्णन मैं अवश्य करूँगा ॥ ९ ॥

अन्धकार को दूर करने वाले बुद्ध सर्वदर्शी हैं, सारे संसार के ज्ञाता हैं, सारे भव के पार हो गये हैं, वासना रहित हैं, सभी दुःख रहित हैं । ब्राह्मण ! वे यथार्थ में बुद्ध कहलाते हैं और मैं उनके पास गया था ॥ १० ॥

जिस प्रकार पक्षी छोटे वन को छोड़ कर फल बहुल उद्यान में जा बसता है उसी प्रकार मैं भी अल्प दर्शियों को छोड़ कर महा जलाशय में जानेवाले हंस की तरह बुद्ध के पास पहुँचा ॥ ११ ॥

पहले गौतम के अनुशासन के बाहर ( धर्म के विषय में ) जो लोग सुनाते थे कि “ऐसा था, ऐसा होगा” वह सब परम्परा कथा थी और शंका बढ़ानेवाली थी ॥ १२ ॥

एको तमनुदासीनो जातिमा सो पभं करो ।  
 गोतमो भूरिपञ्चाणो गोतमो भूरिमेधसो ॥ १३ ॥  
 यो मे धम्ममदेसेसि सन्दिट्टिकमकालिकं ।  
 तण्हक्खयमनीतिकं यस्स नत्थि उपमा क्वचि ॥ १४ ॥  
 किं नु तम्हा विप्पवसऽसि मुहुत्तमपि पिंगिय ।  
 गोतमा भूरिपञ्चाणा गोतमा भूरिमेधसा ॥ १५ ॥  
 यो ते धम्ममदेसेसि सन्दिट्टिकमकालिकं ।  
 तण्हक्खयमनीतिकं यस्स नत्थि उपमा क्वचि ॥ १६ ॥  
 नाहं तम्हा विप्पवसामि मुहुत्तमपि ब्राह्मण ।  
 गोतमा भूरिपञ्चाणा गोतमा भूरिमेधसा ॥ १७ ॥  
 यो मे धम्ममदेसेसि सिन्दिट्टिकमकालिकं ।  
 तण्हक्खयमनीतिकं यस्स नत्थि उपमा क्वचि ॥ १८ ॥  
 पस्सामि नं मनसा चक्खुनाऽब रत्तिदिवं ब्राह्मण अप्पमत्तो ।  
 नमस्समानो विवसेमि रत्तिं, तेनेव मञ्चामि अविप्पवासं ॥ १९ ॥  
 सद्धा च पीती च मनो सती च, नापेन्ति मे गोतमसासनम्हा ।  
 यं यं दिसं वजति भूरिपञ्चो, स तेन तेनेव नतोऽहमस्मि ॥ २० ॥  
 जिण्णस्स मे दुब्बलथामकस्स, तेनेव कायो न पलेति तत्थ ।  
 संकप्पयत्ताय वजामि निच्चं, मनो हि मे ब्राह्मण तेन युत्तो ॥ २१ ॥  
 पंके सयानो परिफन्दमानो दीपा दीपं उपप्लविं ।  
 अथऽइसासिं संबुद्धं ओघतिण्णमनासवं ॥ २२ ॥  
 यथा अहू वक्कलि मुत्तसद्धो,  
 भद्रावुधो आलविगोतमो च ।  
 एवमेव त्वंऽपि पमुच्चस्सु सद्धं,  
 गमिस्ससि त्वं पिंगियमच्चुधेय्यपारं ॥ २३ ॥  
 एस भिय्यो पसीदामि सुत्वान मुनिनो वचो ।  
 विवत्तच्छद्दो संबुद्धो अखिलो पटिभानवा ॥ २४ ॥  
 अधिदेवे अभिञ्जाय सब्बं वेदि परोवरं ।  
 पञ्चानन्तकरो सत्था कंखीनं पटिजानतं ॥ २५ ॥  
 असंहीरं असंकुप्पं यस्स नत्थि उपमा क्वचि ।  
 अद्धा गमिस्सामि न मेऽत्थ कंखा,  
 एवं मं धारेहि अधिमुत्तचित्तं ॥ २६ ॥  
 पारायणवग्गो निट्ठितो । निट्ठितो सुत्तनिपातो  
 अट्ठभाणवारपरिमाणाय पाळिया ।

अंधकार को दूर करनेवाले एक ही वे श्रेष्ठ हैं, प्रकाश देनेवाले हैं । गौतम महाप्रज्ञ हैं, गौतम महाविज्ञ हैं ॥ १३ ॥

यहाँ तत्क्षण फल देनेवाले, तृष्णा को नाश करनेवाले और दुःख को दूर करने वाले धर्म का जिन्होंने (मुझे) उपदेश दिया है उनकी उपमा नहीं हो सकती ॥१४॥  
बावारी :—

यहाँ तत्क्षण फल देनेवाले, तृष्णा को नाश करनेवाले और दुःख को दूर करनेवाले धर्म का जिन्होंने तुम्हें उपदेश दिया है और जिन की उपमा नहीं हो सकती, क्या पिंगिय ! मुहूर्त भर भी तुम उन महाप्रज्ञ गौतम से, महाविज्ञ गौतम से अलग रह सकते हो ? ॥ १५-१६ ॥

पिंगिय :—

यहाँ तत्क्षण फल देनेवाले, तृष्णा को नाश करनेवाले और दुःख को दूर करनेवाले धर्म का जिन्होंने मुझे उपदेश दिया है और जिन की उपमा नहीं हो सकती, ब्राह्मण ! मैं, मुहूर्त भर भी, उन महाप्रज्ञ गौतम से, महाविज्ञ गौतम से अलग नहीं रह सकता ॥ १७-१८ ॥

ब्राह्मण ! रात दिन अप्रमत्त हो आँख की तरह मन से मैं उनको देखता हूँ । रात में मैं उनको प्रणाम करता रहता हूँ । इसलिए मानता हूँ कि मैं उनसे अलग नहीं रहता ॥ १९ ॥

मेरी श्रद्धा, प्रीति, मन और स्मृति गौतम की शिधा से नहीं हटती । जहाँ जहाँ महाप्रज्ञ जाते हैं वहाँ वहाँ मैं नतमस्तक हूँ ॥ २० ॥

जीर्ण, बलहीन मेरा शरीर वहाँ नहीं जा सकता । मैं नित्य मन से जाता हूँ । ब्राह्मण ! मेरा मन उनके साथ है ॥ २१ ॥

मैं (वासना रूपी) क्रीचड़ में पड़कर तड़पता हुआ एक द्वीप से दूसरे द्वीप में जाता था । अन्तमें मैंने भवसागर उत्तीर्ण, वासना रहित सम्बुद्धका दर्शन पाया ॥२२॥  
बुद्ध :—

जिस प्रकार वक्कलि, भद्रावुध और आलविगोतम श्रद्धा द्वारा मुक्त हुए उसी प्रकार तुम भी श्रद्धाको पेश करो । पिंगिय ! तुम मृत्युराजके परे हो जाओगे ॥२३॥  
पिंगिय :—

मुनि के वचन को सुन कर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ । ( आप ) वितृष्ण हैं, सम्बुद्ध हैं, वासना रहित हैं और ज्ञानी हैं ॥ २४ ॥

आप अधिदेवत्व को जान कर आर पार का सब कुछ जान गये । शास्ता संशयी, समझदार लोगों के प्रश्नों का अन्त करने वाले हैं ॥ २५ ॥

( निर्वाण ) अजेय है, अटल है जिसकी कोई उपमा नहीं हो सकती । मैं अवश्य उसे प्राप्त करूँगा, उसके विषय में मुझे कोई शंका नहीं है । पूर्ण रूप से मुक्तचित्त मुझे इस प्रकार धारण करें ॥ २६ ॥

समाप्त ॥



पाँच वर्गों, आठ भाणवारों तथा बहत्तर सूत्रोंमें  
संग्रहीत खुदकनिकायान्तर्गत  
सुत्तनिपात  
समाप्त

## बोधिनी

**अनागामित्व**—मुक्ति के मार्ग में पाँचवीं तथा छठीं अवस्थाएँ । १५७

**अन्यतीर्थक**—दूसरे सम्प्रदाय के साधु । ११५

**अर्हन्त**—परमपद प्राप्त जीवन-मुक्त । ५७, ११३, ११५

**आठ व्यक्ति तथा चार युग्म**—मुक्ति के मार्ग में आठ अवस्थाएँ होती हैं—स्रोतापत्ति मार्ग तथा फल, सकृदागामि मार्ग तथा फल, अनागामि मार्ग तथा फल, अर्हत् मार्ग तथा फल । मार्ग तथा फल एक ही अवस्था के दो क्षण हैं । इस हिसाब से आठ व्यक्ति तथा चार युग्म होते हैं ।

स्रोतापन्न व्यक्ति अधिक से अधिक सात जन्मों के भीतर ही अर्हत् पद को प्राप्त होता है । उसके लिए आठवाँ जन्म सम्भव नहीं । सकृदागामि व्यक्ति अधिक से अधिक एक ही बार इस लोक में जन्म लेता है और अर्हत्-पद को प्राप्त होता है । अनागामि व्यक्ति यहाँ से मर कर ब्रह्मलोक में पैदा होता है और वहीं अर्हत् हो जाता है । अर्हत्व ही परम पद है । अर्हन्त के लिए आवागमन नहीं । ९७, ११३, ११५

**आर्य**—त्रिपिटक में यह शब्द मुक्ति-मार्ग की आठ अवस्थाओं को प्राप्त सन्तों के लिए प्रयुक्त हुआ है जिन्हें अष्टार्यपुद्गल कहते हैं । २३, ६५,

**अर्य-सत्य**—आर्य-सत्य चार हैं—दुःख, दुःख का कारण, दुःख का निरोध और दुःख-निरोध का मार्ग । चार आर्य-सत्य ही बुद्ध-धर्म का सारांश है । ४५

**इन्द्रखील**—शत्रु के आक्रमण को रोकने के लिए नगर-द्वार पर स्थित दृढ़, विशाल प्रस्तर या लौह स्तम्भ । ४५

**उपसम्पदा**—भिक्षु-संघ में पूर्ण-दीक्षा । भिक्षु-जीवन की दो अवस्थाएँ हैं—श्रामणेर अवस्था तथा उपसम्पन्न अवस्था । श्रामणेर अवस्था में केवल दस नियमों का पालन करना पड़ता है । उपसम्पन्न भिक्षु को प्रातिमोक्ष के अन्तर्गत दो सौ सत्ताईस नियमों का पालन करना पड़ता है । बीस वर्ष की आयु के बाद ही कोई उपसम्पन्न हो सकता है । ९७, ११५

**उदान**—चित्तोल्लास के फल स्वरूप सन्तों के मुँह से निकले प्रीति-वाक्य । उदान खुद्दक निकाय का एक ग्रंथ भी है, जिसमें भगवान् बुद्ध के उदान संग्रहीत हैं । थेरगाथा तथा थेरीगाथा में परमपद-प्राप्त भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के उदान हैं । ५

**क्षीणाश्रव—**जिनमें वासनाएँ क्षीण हों, यह अर्हन्त अर्थात् जीवनमुक्त के लिए आया है । ५७

**चार दुर्गति—**नरक, पशुयोनि, प्रेतयोनि तथा असुरयोनि । ४७

**छः घोर पाप—**माता की हत्या, पिता की हत्या, अर्हन्त की हत्या, बुद्ध को चोट पहुँचाना, संघ में फूट डालना, शास्ता में अविश्वास रखना । ४७

**जिन्होंने दर्शन कर लिया—**यह स्रोतापन्न अवस्था का वर्णन है । स्रोतापन्न व्यक्ति अधिक से अधिक सात जन्मों के भीतर ही अर्हत् पद को प्राप्त होता है । उनके लिए आठवाँ जन्म सम्भव नहीं । ४५

**त्रिविद्या—**पुण्यनिवासानुस्सति जाग ( पूर्व जन्मों को जानने की शक्ति ), चुत्तपपात जाग (= मृत्यु तथा जन्म को जानने की शक्ति ), आसवक्खय जाग (= वासनाओं के क्षय को जानने की शक्ति) । १४१

**नाम-रूप—**बौद्ध दर्शन के अनुसार हमारा व्यक्तित्व नाम तथा रूप का बना है । नाम में चार स्कन्ध हैं—वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान । रूप पाँचवाँ स्कन्ध है । इस प्रकार पाँच स्कन्धों को ही नाम-रूप कहते हैं । ७१, १११

**नीवरण—**समाधि लाभ के मार्ग में पाँच बाधाएँ—काम, क्रोध, आलस्य, चंचलता और संशय । ५

**पुथुज्जन—**साधारण-जन, जो कि आर्य-अवस्था को प्राप्त न हुआ हो । ७१

**परिवास—**परीक्षा अर्थात् प्रोवेशन में रहना । भिक्षु-संघ में दीक्षा चाहनेवाले अन्य तीर्थकों अर्थात् साधुओं को चार मास का परिवास करना पड़ता था । ११५

**प्रातिमोक्ष—**प्रातिमोक्ष दो हैं—भिक्षुप्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणीप्रातिमोक्ष । एक में २२७ नियम हैं और दूसरे में ३११ नियम हैं । ६७

**लोकधर्म—**लोकधर्म आठ हैं—लाभ, अलाभ, यश, अयश, निन्दा, प्रशंसा, सुख, दुःख । साधारण मनुष्य का चित्त इन बातों से विचलित होता रहता है । लेकिन अर्हन्त (= जीवन मुक्त ) का चित्त स्थिर रहता है ।

**वितर्क—**काम, क्रोध तथा लोभ विषयक बुरे संकल्प । ३

**शैक्ष—**मुक्ति मार्ग की आखिरी अवस्था (= अर्हत् फल ) को छोड़ शेष सात अवस्थाओं में से किसी एक अवस्था को प्राप्त व्यक्ति । मुक्ति की शिक्षा अभी और बाकी रहने के कारण ये शैक्ष कहलाते हैं । २१९

**सामयिक विमुक्ति—**लौकिक समाधि, जिससे कुछ समय के लिए मन को शान्ति मिले । ११

# परिशिष्ट

## १-उपमा-सूची

|                        |                      |
|------------------------|----------------------|
| आग                     | १३                   |
| आरे की नोक पर सरसों    | १३७                  |
| उपद्रव                 | ११                   |
| औषधि                   | ३                    |
| कमल                    | १३७                  |
| कमल तोड़ना             | ३                    |
| कमल पत्र पर जल बिन्दु  | ७७                   |
| कैचुली                 | ३                    |
| खड्ग विषाण ( = गेंडा ) | ९, ११, १३, १५        |
| गजराज पदुमी            | ११                   |
| गूलर का फूल            | ३                    |
| चन्द्रमा               | २१५                  |
| छाया                   | २१५                  |
| जलते कोयले का गड्ढा    | ७९                   |
| पद्म                   | १३, ४३               |
| पूर्णचन्द्र            | १३३                  |
| फल बहुल उद्यान         | २२९                  |
| फोड़ा                  | ११                   |
| बन्धन                  | १३                   |
| भय                     | ११                   |
| मछली                   | १३                   |
| मृग स्वच्छन्द          | ९                    |
| मृग की जंघा            | ३३                   |
| राजा                   | ९                    |
| रोग                    | ११                   |
| वायु                   | १३, ४३               |
| विपत्ति                | ११                   |
| विष                    | ११                   |
| सरिता                  | ११                   |
| सिंह                   | १३, ३३, ४३, १२३, १९५ |
| सूर्य                  | १२३, २१५, २३३        |

## २-नामानुक्रमणी

|                              |                 |
|------------------------------|-----------------|
| अगालव ( चैत्य )              | ६९              |
| अग्रिक भारद्वाज ( ब्राह्मण ) | २५              |
| अङ्गुत्तराप ( जनपद )         | ११५, ११९        |
| अजित ( माणवक )               | २१५, २१७, २३९   |
| अजित केशकम्बली ( तीर्थंकर )  | १०५             |
| अट्ट ( नरक )                 | १४५             |
| अनाथपिण्डिक ( सेठ )          | २१, ५१, ७५, १४१ |
| अवव ( नरक )                  | १४५             |
| अव्वुद ( नरक )               | १४५             |
| अरति ( मार कन्या )           | १८३             |
| अलक ( स्थान )                | २०९, २१३        |
| अस्सक ( राजा )               | २०९             |
| असित ( ऋषि )                 | १४९, १५१, १५३   |
| अदह ( नरक )                  | १४५             |
| आपण ( कस्बा )                | ११५, ११७, ११९   |
| आमगन्ध ( ब्राह्मण )          | ४७              |
| आलवक ( यक्ष )                | ३५, ३७          |
| आलवी ( स्थान )               | ३५, ३९, ६९      |
| इक्ष्वाकु ( राजा )           | ६१              |
| इक्ष्वाकुवंशज ( बुद्ध )      | २११             |
| इच्छानङ्गल ( स्थान )         | १३१             |
| उज्जैन ( अवन्ति की राजधानी ) | २१३, २३९        |
| उदय ( माणवक )                | २३५             |
| उप्पल ( नरक )                | १४५             |
| उपसीव ( माणवक )              | २१३, २३९        |
| ऋषिवन ( ऋषिपतन )             | १४९             |
| एकनाला ( ब्राह्मण ग्राम )    | १५              |
| ऐरावण ( हाथी )               | ७५              |
| कप्प ( माणवक )               | २३१             |
| कप्पायन ( भिक्षु )           | ७१              |

|                                             |                                                                                                                  |
|---------------------------------------------|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| कपिलवस्तु ( शाक्यों की राजधानी )            | २११, २१३                                                                                                         |
| कश्यप ( बुद्ध )                             | ४७, ४९                                                                                                           |
| कसीभारद्वाज ( ब्राह्मण )                    | १५, १७, १९                                                                                                       |
| कुमुद ( नरक )                               | १४५                                                                                                              |
| कुशीनगर ( भगवान् बुद्ध की परिनिर्वाण-भूमि ) | ११३                                                                                                              |
| केगिय ( जटिल )                              | ११५, ११७, ११९, १२५                                                                                               |
| कोकालिय ( भिक्षु )                          | १४१, १४५                                                                                                         |
| कोविलार ( वृक्ष )                           | ९                                                                                                                |
| कोशल ( देश )                                | ५७, ८३, १४३, १८३                                                                                                 |
| कोशाम्ब्री ( नगर )                          | २१३                                                                                                              |
| खर ( यक्ष )                                 | ५३                                                                                                               |
| गया ( नगर )                                 | ५३                                                                                                               |
| गिरिव्रज ( राजगृह )                         | ८१                                                                                                               |
| गृद्धकूट ( राजगृह में )                     | ९७                                                                                                               |
| गोदावरी ( नदी )                             | २०९                                                                                                              |
| गोनद्ध ( स्थान )                            | २१३                                                                                                              |
| गौतम ( बुद्ध )                              | २५, ३१, ३३, ४५, ५७, ५९, ६३, ७५, ८३, ९१, ९९, १०३, १०५, ११३, ११५, ११७, ११९, १२१, १३१, १३३, १४१, १५३, २२३, २२९, २३९ |
| चंकी ( ब्राह्मण )                           | १३१                                                                                                              |
| चुन्द ( लोहार )                             | १९                                                                                                               |
| जतुकणि ( माणवक )                            | २१३, २३९                                                                                                         |
| जम्बुद्वीप ( भारत )                         | १२१                                                                                                              |
| जानुस्सोणि ( ब्राह्मण )                     | १३१                                                                                                              |
| जैतवनाराम ( श्रावस्ती में )                 | २१, १४३                                                                                                          |
| टंकित मञ्च ( गया में )                      | ५३                                                                                                               |
| तण्हा ( मार कन्या )                         | १८३                                                                                                              |
| तारुक्ख ( ब्राह्मण )                        | १३१                                                                                                              |
| तिष्ठ ( तपस्वी )                            | ४७                                                                                                               |
| तिस्स मेत्तेय्य ( माणवक )                   | २१३, २३९                                                                                                         |
| त्रिवेद                                     | २१५                                                                                                              |

|                                |                   |
|--------------------------------|-------------------|
| तुसित ( देवलोक )               | १४९               |
| तोदेय्य कप्प ( माणवक )         | ६९, २१३, २३१, २३९ |
| दक्षिणागिरि ( जनपद )           | १५                |
| धनिय ( ग्वाला )                | ५                 |
| धम्मिक ( उपासक )               | ७५                |
| धोतक ( माणवक )                 | २१३, २३९          |
| नन्द ( माणवक )                 | २१३               |
| नारद ( देवता )                 | ११३               |
| नालक ( असित का भांजा )         | १५३               |
| निर्ग्रन्थनात पुत्र ( महावीर ) | १०५               |
| निग्रोधकप्प ( भिक्षु )         | ७१                |
| निरब्बुद ( नरक )               | १४५               |
| नेरञ्जरा ( नदी )               | ८३                |
| पण्डव ( पर्वत )                | ८१                |
| पदुम ( नरक )                   | १४३, १४५          |
| पदुमी ( हाथी )                 | ११                |
| पर्वत ( देवता )                | ११३               |
| पावा ( कुशीनगर के पास )        | २१३               |
| पिंगिय ( माणवक )               | २१३, २३७          |
| पुण्णक ( माणवक )               | २१३, २२१, २३९     |
| पुण्डरीक ( नरक )               | १४५               |
| पूर्णकश्यप ( तीर्थंकर )        | १०५               |
| पूर्वोराम ( श्रावस्ती में )    | १५७               |
| पोक्खरसात्ति ( ब्राह्मण )      | १३१               |
| पोसाल ( माणवक )                | २१३, २३९          |
| प्रकुध कात्यायन ( तीर्थंकर )   | १०५               |
| प्रतिष्ठान ( स्थान )           | २१३               |
| बावरी ( तपस्वी )               | २०९, २११, २१५     |
| बिम्बिसार ( राजा )             | ८१                |
| भद्राबुध ( माणवक )             | २१३, २३९          |
| भारद्वाज ( ब्राह्मण )          | ८९, १३१, १३३      |
| भोगनगर ( स्थान )               | २१३               |

|                                        |                         |
|----------------------------------------|-------------------------|
| मक्खलि गोशाल ( तीर्थंकर )              | १०५                     |
| मगध ( देश )                            | १५, ८१, २१३             |
| मही ( नदी )                            | ५                       |
| मागन्धिय ( ब्राह्मण )                  | १८३                     |
| माघ ( माणवक )                          | ९७                      |
| मातंग ( ऋषि )                          | २७                      |
| मिगारमाता ( विशाखा )                   | १५७                     |
| मेत्तगू ( माणवक )                      | २१३, २२१, २३९           |
| मेरु ( पर्वत )                         | १४९                     |
| मोग्गल्लान ( अर्हन्त )                 | १४३                     |
| मोघराज ( माणवक )                       | २१३, २३७, २३९           |
| रगा ( मार कन्या )                      | १८३                     |
| राजगृह ( राजगिर )                      | ८१, ९७, १०५, १०७        |
| राहुल ( सिद्धार्थ का पुत्र )           | ६७, ६९                  |
| लुम्बिनी ( भगवान् बुद्ध का जन्मस्थान ) | १४९                     |
| वनसह्य ( स्थान )                       | २१३                     |
| वंगीस ( भिक्षु )                       | ६९                      |
| वासेट्ट ( ब्राह्मण )                   | १३१                     |
| विदिशा ( स्थान )                       | २१३                     |
| वेलुवन ( कलन्दक निवाप )                | १०५, १०७                |
| वैशाली ( नगर )                         | ४५, २१३                 |
| वैश्रवण ( कुबेर )                      | ७७                      |
| शक ( इन्द्र )                          | ६९                      |
| शाक्य सर्वदर्शी ( बुद्ध )              | ६९                      |
| शाक्य ( कुल )                          | ८३, ११९, १३१            |
| शाक्य ( जनपद )                         | १४९                     |
| शाक्य पुत्र ( बुद्ध )                  | ११५, २११                |
| शाक्य मुनि ( बुद्ध )                   | ४५                      |
| शुद्धोदन ( राजा )                      | १५१                     |
| शूचिलोम ( यक्ष )                       | ५३                      |
| श्रावस्ती ( नगर )                      | २१, २५, ५१, ५७, ७५, १४१ |
| सभिय ( परिव्राजक )                     | १०५, १०७, १०९, ११३, ११५ |

|                                  |               |
|----------------------------------|---------------|
| सहम्पती ( ब्रह्मा )              | १४३           |
| संजयबेल्हट्टि पुत्र ( तीर्थंकर ) | १०५           |
| साकेत ( नगर )                    | २१३           |
| सातागिरि ( यक्ष )                | ३१            |
| सारिपुत्त ( अर्हन्त )            | १४३           |
| सिद्धार्थ ( कुमार )              | ८१            |
| सुन्दरिका ( नदी )                | ८९            |
| सुन्दरिक भारद्वाज ( ब्राह्मण )   | ९७            |
| सेतव्य ( नगर )                   | २१३           |
| सेनिय त्रिम्बिसार ( मगध राज )    | ११९           |
| सेल ( ब्राह्मण )                 | ११९, १२३, १२५ |
| सोगन्धिक ( नरक )                 | १४५           |
| सोपाक ( चाण्डाल )                | २७            |
| हिमालय                           | ८३            |
| हेमक ( माणवक )                   | २१३           |
| हेमवत ( यक्ष )                   | ३१, ३३        |

### ३-शब्दानुक्रमणी

|                                        |                                                 |
|----------------------------------------|-------------------------------------------------|
| अग्निहोत्र                             | ८९, १२५                                         |
| अण्डज                                  | २५                                              |
| अन्यतीर्थक ( अन्य सम्प्रदायवाले साधु ) | ११५                                             |
| अनिमित्त ( निर्वाण )                   | ६९                                              |
| अनुविदित                               | १११                                             |
| अनुविश                                 | १११                                             |
| अप्रमत्त ( तत्पर )                     | ४३                                              |
| अप्रमाद ( तत्परता )                    | ३६                                              |
| अमृत ( निर्वाण )                       | ४५                                              |
| अमृत फल ( निर्वाण )                    | १७                                              |
| अमृत शांति ( निर्वाण )                 | ४५                                              |
| अरहन्त ( जीवन मुक्त )                  | १९, २७, ३६, ९७, ११३, ११५, १२१, १२७<br>१३९, २११, |
| अविद्या                                | ५७, १५९                                         |

|                             |                            |
|-----------------------------|----------------------------|
| अशुभ भावना                  | ६९                         |
| अश्वमेध ( यज्ञ )            | ६१                         |
| अष्टाङ्गिक उपोसथ            | ७९                         |
| असुर                        | ६१, २४९                    |
| आचारवान्                    | १११                        |
| आजानीय                      | १११                        |
| आजीवक ( एक साधु सम्प्रदाय ) | ७७                         |
| आजीविका                     | ११                         |
| आत्मदृष्टि                  | ५५                         |
| आदित्यव्रन्धु ( बुद्ध )     | ११, ११३                    |
| आमगन्ध ( आमिष या पाप )      | ४९                         |
| आर्य                        | २३, ६५, १११, १४१, १६५, १६७ |
| आर्य-धर्म                   | ७१, १७१                    |
| आर्य-श्रावक                 | १९                         |
| आर्य-सत्य                   | ५३, ७५                     |
| आरम्भण ( विषय )             | १०३                        |
| आश्रवक्षीण                  | ९५                         |
| इतिहास                      | २१५                        |
| इन्दुखील                    | ४५                         |
| इन्द्र                      | ६१, ६३, ७७, २१५            |
| उदान ( सन्तों का उद्गार )   | ५                          |
| उपशम ( निर्वाण )            | १६१                        |
| उपसम्पदा                    | १७, १९, ९७, ११५, १२५       |
| उपादान ( आसक्ति )           | ३३                         |
| उपाध्याय                    | ६९                         |
| उपासक                       | २९, ७७                     |
| उपेक्षा                     | १३                         |
| उपोसथ ( व्रत दिवस )         | ३१, ७७                     |
| ऋद्धि ( योग-सिद्धि )        | १२१                        |
| ऋद्धिमान्                   | ३५                         |
| ऋषि                         | ९१, १५३                    |
| कमण्डल                      | ८९                         |

|                        |                                   |
|------------------------|-----------------------------------|
| करुणा                  | १३                                |
| कंकणि                  | ११                                |
| कामगुण ( विषय वासना )  | ११                                |
| काषायवस्त्रधारी        | १३                                |
| कुल                    | १३                                |
| कुलपुत्र               | १९                                |
| केवली                  | १७, ९५, ९९, १०९, १८१              |
| कैटुभ                  | ११९, २१५                          |
| कोप                    | ३                                 |
| क्षत्रिय               | २३, २९, ६३, ८१, ९१                |
| क्षीणाश्रव ( अर्हन्त ) | १७, ११३                           |
| खीर                    | १७                                |
| गन्धर्व                | १३९                               |
| गणाचार्य               | १०५                               |
| गणी                    | १०५                               |
| गूथकूप                 | ५७                                |
| गोत्र                  | २३                                |
| गोत्ररक्षक             | ६३                                |
| स्रक्षुष्मान्          | ७                                 |
| चण्डाल                 | २७                                |
| चन्द्र                 | ९३                                |
| चारिका ( विचरण करना )  | ९                                 |
| चिगुलक ( धान्य विशेष ) | ४७                                |
| चीनक ( धान्य विशेष )   | ४७                                |
| चीवर ( भिक्षु-वस्त्र ) | ९७, १२७                           |
| जटिल ( जटाधारी साधु )  | १२५                               |
| जनपद                   | ५९                                |
| जाति                   | २१, २७, ९३                        |
| जातिवाद                | ६३                                |
| जिन                    | ७५, १५१                           |
| डंस मक्खी              | ११                                |
| तथागत ( बुद्ध )        | १७, ४७, ६९, ९२, ९३, १२३, २१७, २३५ |

|                             |                                                         |
|-----------------------------|---------------------------------------------------------|
| तत्सर                       | ४३, ९३, १०१                                             |
| तीर्थक ( अन्य मतावलम्बी )   | ७७                                                      |
| तीर्थकर ( संप्रदाय स्थापक ) | १०५                                                     |
| त्रिविद्या                  | १४१                                                     |
| तृष्णा                      | ५                                                       |
| तैर्थिक ( तीर्थक )          | १९३                                                     |
| दक्षिणापथ                   | २०५                                                     |
| दायक                        | ९७                                                      |
| दावाग्नि                    | १५३                                                     |
| द्विपद                      | १९                                                      |
| दृष्टि                      | ११                                                      |
| देव                         | ५, ७, १९, ३७, ५५, ६१, ६७, ७५, १०९, ११५, ११७, १६५        |
| देवता                       | ६३, ७७, १०५, १३९                                        |
| धर्मचक्र                    | १२३, १४९, १५१, १५३                                      |
| धर्मधर                      | ११                                                      |
| धर्म-विनय                   | ११५                                                     |
| धर्मस्वामी                  | १९                                                      |
| ध्यान                       | ३१                                                      |
| नरक                         | ५७, १११                                                 |
| नाम-रूप                     | ७१, १११, १६७, २०३, २१७, २३३                             |
| नास्तिक दृष्टि ( भौतिकवाद ) | ४९                                                      |
| निर्ग्रन्थ ( जैन मुनि )     | ७७                                                      |
| निघण्टु                     | ११९                                                     |
| निरर्गल ( यज्ञ )            | ६१                                                      |
| निरुक्ति                    | ११९                                                     |
| निर्वाण                     | १९, ४१, ४७, ५३, ६९, ८३, ८५, ८९, ११३, १६७, २२३, २३१, २३५ |
| निर्वाणदर्शी                | ४७                                                      |
| निर्वाणरति                  | १५                                                      |
| नीवरण                       | ५, ११३                                                  |
| परमपद द्रष्टा               | ४७                                                      |
| परमार्थ                     | १३, १९, ३५                                              |
| परमार्थदर्शी                | ४३                                                      |

|                        |                                   |
|------------------------|-----------------------------------|
| परलोक                  | ३७, ४९                            |
| परिवास                 | ११५                               |
| परिव्राजक              | २७, १११                           |
| पारलौकिक               | ३९                                |
| पितर                   | ६१                                |
| पुण्डरीक               | ११३                               |
| पुथुज्जन               | ७१                                |
| पुनर्भव                | ३३                                |
| पुरुषमेध ( यज्ञ )      | ६१                                |
| पुरोहित                | ६३                                |
| प्रत्ययभूत ( हेतुभूत ) | ५                                 |
| प्रपञ्च                | ३                                 |
| प्रमत्तबन्धु ( मार )   | ८५                                |
| प्रमाद                 | ३१, ६७                            |
| प्रव्रज्या ( संन्यास ) | १७, १९, ५३, ८१, ९७, १०५, ११५, १२५ |
| प्रव्रजित ( संन्यासी ) | ९, ४३, ५५, ८३, १२५, १३७           |
| प्रहाण ( दूर करना )    | १३, १५                            |
| प्रातिमोक्ष            | ६७                                |
| बहुश्रुत               | ११                                |
| बोधिसत्त्व             | १४९                               |
| ब्रह्म                 | ३७, ५५, ९५, १०९, ११७, १६७, २१५    |
| ब्रह्मचर्य             | १९                                |
| ब्रह्मभूत              | १२३, १२५                          |
| ब्रह्मलोक              | २९, १०३                           |
| ब्राह्मण               | ६३, ९१                            |
| भव                     | १३, ७३                            |
| भव-तृष्णा              | ३५                                |
| भव-सागर                | ५, ३५, ११३                        |
| भव-स्रोत               | १५५                               |
| भिक्षाटन               | १३                                |
| भिक्षु-संघ             | ६३, १५७                           |
| मन्त्र                 | ६१, १११                           |

|                      |                                                    |
|----------------------|----------------------------------------------------|
| मन्त्र-बन्धु         | २९                                                 |
| मयूर                 | ४३                                                 |
| महर्षि               | १७, ३५, ४१, ९५                                     |
| महापुरुष             | २१९                                                |
| महापुरुष लक्षण       | १२१                                                |
| महामुनि              | ७                                                  |
| महावीर               | ११३                                                |
| मार्गजिन             | १९                                                 |
| मार्गजीवी            | १९                                                 |
| मार्गदूषक            | १९                                                 |
| मार्गदेशक            | १९                                                 |
| माणवक ( विद्यार्थी ) | ९७, ९९, ११९, १२१, १३१, २१७                         |
| मार ( कामदेव )       | ७, ३७, ५५, ८३, ८५, ११७, १६५, १६७, २०५,<br>२३१, २३३ |
| मालुवा ( लता )       | ५५                                                 |
| मुञ्ज ( वृण )        | ८५                                                 |
| मुण्डक               | २५                                                 |
| मुदिता               | १३                                                 |
| मुनि                 | ३३, ४१, ४३, ७३, ८१, १५३, १५७                       |
| मैत्री               | १३, ४५, १०३                                        |
| यक्ष                 | ३१                                                 |
| यज्ञ                 | ५९, ९१, ९३, ९७, ११९, २१९                           |
| योनिज                | २५                                                 |
| राक्षस               | ६१                                                 |
| राष्ट्र              | ५९                                                 |
| राहु                 | ९३                                                 |
| लक्षणशास्त्र         | २१५                                                |
| लोकधर्म              | ५३                                                 |
| लोकायतशास्त्र        | ११९                                                |
| वसन्त ऋतु            | ४७                                                 |
| वाजपेय ( यज्ञ )      | ६१                                                 |
| वितर्क               | ३                                                  |

|                                   |                                                                                     |
|-----------------------------------|-------------------------------------------------------------------------------------|
| वृषल                              | ७, २५, २७, २९                                                                       |
| वेद                               | ११९, १५१                                                                            |
| वेदज्ञ                            | १११                                                                                 |
| वेदपारङ्गत                        | ४९                                                                                  |
| वैदिक                             | २९                                                                                  |
| वैश्य                             | ९१                                                                                  |
| शास्ता ( गुरु )                   | ३१, ६५, ११३, १२७, २०३                                                               |
| शील                               | ३५                                                                                  |
| श्रद्धा                           | ३७                                                                                  |
| श्रमण                             | १५, १९, २१, २५, २७, ३७, ५३, ५५, १०७, १११,<br>१३१, १५५, १५७, १६५, १६७, १८१, १९३, १९९ |
| श्रमण-ब्राह्मण                    | ५५, ८५                                                                              |
| श्रावक ( शिष्य )                  | २७, ७५, ८७, १२३, १५५                                                                |
| सत्कायदृष्टि ( आत्म दृष्टि )      | ४७                                                                                  |
| समाधि                             | ३२, ४५                                                                              |
| सम्मापास ( यज्ञ )                 | ६१                                                                                  |
| सम्बुद्ध                          | ३५, ३९, ८७, १०९, ११३, १३३, २१३, २१७                                                 |
| सम्बोधि ( परम ज्ञान )             | ९५, १०३, १०५, १५१, १५७                                                              |
| सम्बोधि पद ( परमज्ञान की अवस्था ) | १६७                                                                                 |
| सम्यक् दर्शक                      | १७                                                                                  |
| सम्यक् सम्बुद्ध                   | ११७, १२१, १२५                                                                       |
| संघ                               | २६, ४५, ४७, १२५                                                                     |
| संसार ( आवागमन )                  | ३                                                                                   |
| संस्कार                           | ५                                                                                   |
| सागर                              | १२१                                                                                 |
| सात रत्न                          | ११९                                                                                 |
| सामयिक विमुक्ति                   | ११                                                                                  |
| सारथि                             | १९                                                                                  |
| सावित्रि ( मंत्र )                | ६१, १२५                                                                             |
| सौँवा                             | ४७                                                                                  |
| सुगत ( बुद्ध )                    | १३९                                                                                 |
| सुजम्पति                          | २१५                                                                                 |

|           |            |
|-----------|------------|
| सुवर्णकार | ११         |
| सूर्यवंशी | ८३         |
| स्नातक    | १०९        |
| स्वर्ण    | ४५         |
| स्वाध्याय | ५९         |
| हवन       | २५         |
| हव्य      | ९१, ९३, ९५ |
| हाथी      | ७          |
| हंस       | ४३         |



# शुद्धि-पत्र

## अनुवाद

| अशुद्ध     | शुद्ध        | पंक्ति | पृष्ठ |
|------------|--------------|--------|-------|
| संसा       | संसार        | २५     | ३     |
| यज्ञः      | यक्ष         | १७     | ३३    |
| भ          | भी           | ३१     | ३५    |
| प्रतीप     | प्रदीप       | १५     | ४७    |
| का         | को           | ३०     | ४७    |
| अपने       | अनेक         | १२     | ५९    |
| भार        | मार          | २५     | ७१    |
| अनुमती     | अनुमति       | १०     | ७९    |
| पण्डव      | पण्डव        | २५     | ८१    |
| धार्मिक    | अधार्मिक     | २३     | ८७    |
| जैसी       | जैसे         | २८     | १०५   |
| वहो        | नहीं         | १६     | १०७   |
| ज्योतिमान् | ज्योतिष्मान् | ४      | ११३   |
| मूर्तिमान् | मतिमान्      | ४      | ११३   |
| बेकार      | बेघर         | १५     | ११५   |
| बंटावे     | बटावें       | ३२     | ११७   |
| ये         | ये           | ३०     | ११९   |
| की         | का           | १७     | १२३   |
| बिछ        | बिछे         | २१     | १२५   |
| तो         | तो           | २      | १३१   |
| न और       | और           | १३     | १३१   |
| प्राणियों  | प्राणियों    | ४      | १३५   |
| उपयोग      | उपभोग        | २०     | १३५   |
| भन्ते      | भन्ते        | २६     | १४१   |
| वष         | वर्ष         | २९     | १४३   |
| के         | को           | ७      | १५३   |

|         |         |    |     |
|---------|---------|----|-----|
| विलिप्त | विचलित  | ६  | १७५ |
| प्रथा   | प्रकार  | ४  | १७९ |
| बनाते   | बताते   | १० | १९३ |
| न हो    | हो      | १६ | १९३ |
| इस      | इन      | ४  | १९५ |
| मुख     | मुख     | २२ | २१५ |
| अजिता   | अजित    | ३० | २१७ |
| तृष्ण   | तृष्णा  | ११ | २१९ |
| प्रज्ञ  | प्रज्ञा | ४  | २३५ |
| पिगिय   | पिगिय   | ३१ | २३७ |

### मूल-पालि

|                |                |        |       |
|----------------|----------------|--------|-------|
| अशुद्ध         | शुद्ध          | पंक्ति | पृष्ठ |
| उप्पन्नजानो    | उप्पन्नजाणो    | १८     | १०    |
| त              | तं             | २१     | १८    |
| पुट्टमागम्म    | पुट्टुमागम्म   | ८      | २०    |
| उद्धमातो       | उद्धुमातो      | २८     | ३८    |
| अयेगियसच्चानि  | ये अगियसच्चानि | २५     | ४४    |
| हिरिसुत्त      | हिरिसुत्त      | १७     | ५१    |
| पापचार         | पापाचार        | ८      | ५६    |
| तनुसङ्कमिंसु   | तेनुपसङ्कमिंसु | १९     | ५६    |
| अञ्जे          | मञ्जे          | २८     | ६०    |
| अनसन           | अनसनं          | १      | ६२    |
| संघञ्च         | संघञ्च         | १३     | ६२    |
| अगालावे        | अगालावे        | २०     | ६८    |
| धोतं           | धोनं           | ९      | ७०    |
| इतिससत्तम      | इतिसत्तम       | २०     | ७०    |
| मन्ति          | वन्दन्ति       | १६     | ७२    |
| पराभोजनं       | परभोजनं        | १७     | ७२    |
| अकलचारि        | अकालचारिं      | १४     | ७६    |
| उपवुत्थुपासेथो | उपवुत्थुपोसथो  | २१     | ७८    |
| जीवमनपुच्छसि   | जीवमनुपुच्छसि  | ८      | ८४    |

|                |               |    |     |
|----------------|---------------|----|-----|
| अध्यामस्त      | अकामस्त       | ४  | ८६  |
| वायसेन्तो      | वायसेत्तो     | ९  | ८६  |
| दुक्खस्सन्ता   | दुक्खस्सन्त   | १२ | ८८  |
| पुञ्ञपेक्खस    | पुञ्ञपेक्खस्स | २१ | ९४  |
| वदञ्ज          | वदञ्जू        | ८  | ९८  |
| परिब्बजाकस्स   | परिब्बाजकस्स  | १२ | १०४ |
| उट्ठायासाना    | उट्ठायासना    | २७ | ११० |
| माणवक्खतानि    | माणवक्खतानि   | ८  | ११८ |
| तेनुसङ्कमि     | तेनुपसङ्कमि   | ११ | ११८ |
| लक्खणानि       | लक्खणानि      | १५ | १२० |
| ब्राह्मण       | ब्राह्मण      | २६ | १२२ |
| इच्छानङ्गल     | इच्छानङ्गले   | २  | १३० |
| मेधाविं        | मेधाविं       | ७  | १३६ |
| ब्रूमि         | ब्रूमि        | २  | १३८ |
| रथास्साणीव     | रथस्साणीव     | ३२ | १३८ |
| रुक्खमूलस्मिं  | रुक्खमूलस्मिं | ४  | १५४ |
| विञ्ञाणापच्चया | विञ्ञाणपच्चया | ३० | १५८ |
| कथञ्च          | कथञ्च         | २४ | १६४ |
| वितरे          | विचरे         | २१ | २०० |
| नमस्सेमु       | नमस्सेमु      | २४ | २१० |
| झनरता          | झानरता        | २५ | २१२ |
| वेसाविं        | वेसालिं       | ३२ | २१२ |
| पारिपुरिं      | पारिपूरिं     | ६  | २१४ |
| एक             | एस            | ११ | २२२ |
| केचिमे         | केचिमे        | १  | २२८ |
| माघराज         | मोघराज        | १  | २३६ |















## महाबोधि सभा के अन्य प्रकाशन

|                             |     |     |
|-----------------------------|-----|-----|
| १. दीघनिकाय                 | ... | ६)  |
| २. मज्झिमनिकाय              | ... | ८)  |
| ३. विनय पिटक                | ... | ८)  |
| ४. धम्मपद                   | ... | १॥) |
| ५. पालि महाव्याकरण          | ... | ६)  |
| ६. खुदक पाठ                 | ... | १)  |
| ७. अम्बट्ट सुत्त            | ... | १)  |
| ८. बुद्ध चित्रावली          | ... | २)  |
| ९. बुद्धकीर्तन              | ... | १)  |
| १०. सरल पालि शिक्षा         | ... | ११) |
| ११. भगवान् बुद्ध            | ... | २)  |
| १२. भगवान् बुद्ध की शिक्षा  | ... | १-) |
| १३. भगवान् हमारे गौतम बुद्ध | ... | १-) |
| १४. बौद्ध शिशुबोध           | ... | १)  |
| १५. जातिभेद और बुद्ध        | ... | ११) |
| १६. बुद्ध-वचन               | ... | ११) |
| १७. सारनाथ दिग्दर्शन        | ... | १)  |
| १८. तेल कटाह गाथा           | ... | १)  |
| १९. पालि पाठमाला            | ... | १)  |

पता—

महाबोधि पुस्तक भण्डार

सारनाथ, बनारस